2720

'मास्टर' मणिमालाषाः १५७ संख्यको मणिः (पर्मशास्त्रविभागे २)

क्षेत्र भी। क्ष

शान्तिमयूखः

रचियता— श्रीनीलकग्रुटमहः

सम्पादक — स्व॰ पं॰ श्रीवायुनन्दनमिश्रः

मकाशकः— मास्टर खेलाड़ीलाल ऐग्ड सन्स संस्कृत नुकडियो, कचौड़ीगळी, बनारससिटी।

मूल्यं सार्वेरूप्यकद्वयम्

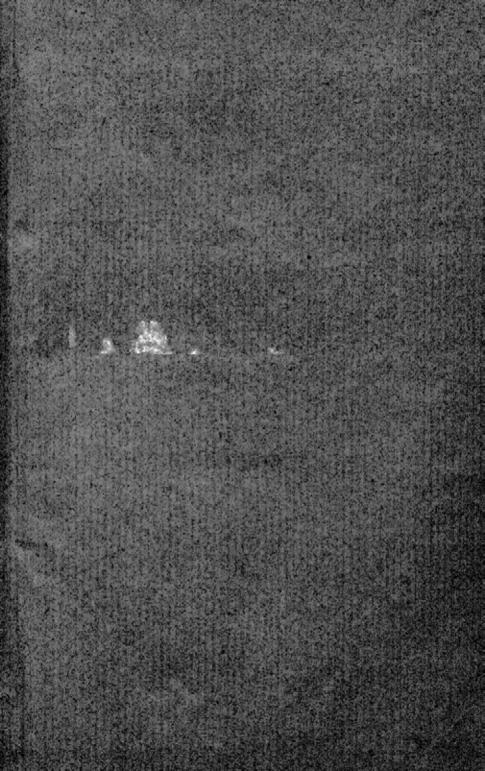
在海海海南海南海南海海海海海

GOVERNMENT OF INDIA DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

CALL No. S Sa3S I NILLMM

D.G.A. 79.





'मास्टर' मणिमालायाः १५० संख्यको मणिः (धर्मशास्त्रविभागे २) * श्रीः * Santimayū Kha श्रीः विद्याद्याः । रचिताः अविकासकारभद्रः । श्रीनीलकराउभद्रः ।

Sa35/ PULT 10.19

सम्पादकः---

ख॰ पण्डितश्रीवायुनन्दनमिश्रः।

श्रीमञ्चालाल अभिमन्यु एम॰ ए०

Sai3S Manuelal illinings

/ मास्टर खेलाड़ीलाल ऐग्रड सन्स,

संस्कृत बुकडियो,

कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

प्रथमं संस्करणम्

मुख्यं रूप्यकद्वयम् [सन् १९४३ ई०

श्रधिकारः सर्वथा सुरद्गितः।

MUNSHI RAM MANOHAR LAL BANSKRIT & HINDI BOOK SELLERS NAI SARAK, DEL HI-L

प्रकाशकः —

जे॰ एन॰ यादव प्रोप्राइटर मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगळी, बनारस सिटी।

Date Sa3S/ Nil/M.M.



मुदकः— श्रीमन्नालालं अभिमन्यु एम० ए० मास्टर प्रिण्टिङ्ग वृक्स्, बुलानाला, बनारस सिटी। मयूल प्रन्थों के रचियता का नाम संस्कृत-साहित्य-मकरन्द लोलुपों की जिह्वा पर विराजमान है। मीमांसक मह श्रीनीलकण्ठ ने अपने द्वादेश मयूलों से धर्मशास्त्रान्तरिक्ष को प्रदीस कर अपनी विलक्षण प्रतिमा का प्रदर्शन किया है। इन्होंने न केवल अपने नाम को ही, बिल्क अपने आश्रयदाता सेंगर- क्षित्रियवंशावतंस श्रीभगवन्तभास्कर की कीतिं-वैजयन्ती को भी दिक् विदिक् में स्थापित किया है। इन्होंने अपने राजा की वशावली 'शान्तिमयूल्व' के आरम्भ में यों बतलायी है— कार्यका का वशावली 'शान्तिमयूल्व' के आरम्भ में यों बतलायी है—

ब्रह्मा-करुपप-विभागडक श्रृङ्कित्तर कर्णदेव विशोकदेव स्पर्देव वैराटराज वीढ राज नरब्रद्धदेव मन्युदेव-चन्द्रपाछदेव शिवगणदेव रोछिचन्द्रदेव - कर्मसेत्रदेव नर-हरिदेव पशोदेव-ताराचन्द्रदेव चक्रसेनदेव राजसिंह भूपतिसाहिदेव भगवन्तदेव ।

महाराज भगवन्तदेव के विषय में अन्त में वे लिखते हैं — किंग्से में वे लिखते हैं — किंग्से में विकास किंग्से मध्यदेशे। स्थाता भरेहनगरी किल तत्र राजा राजीवलीचनरतो भगवन्तदेव:॥

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि चर्मणवती (चम्बल) और तरिण्जा (यमुना) के सङ्गम पर स्थित भरेह नगर (जिला हटावा) में महाराज भगवन्त देव शासन करते थे और राजाश्रय प्राप्त कर इन्होंने उसी नगर में प्रन्यप्रणयन किया। 'आज्ञासस्तेन राजा' से भी यही ध्वनि निकलती है। जिस समय इन्होंने प्रन्थारम्भ किया उस समय भारतवर्ष में मुगल सम्राट् जहाँगीर का शासन काल था और जिस समय ये प्रन्थ लिखे जा चुके थे उस समय जगरमसिद्ध ताज्महल निर्माता शाहजहाँ का राज्यकाल था। इस तरह इनका प्रादुर्भाव काल सन् १६१०-१६५० ई० माना जाता है।

भट्ट श्रीनीलकण्ड ने इन मयूख प्रन्थों को बनाया—

श्रांस्कार मयूख—इसमें गर्भाधान आदि संस्कारों का उल्लेख है।

२ आचार मयुख-इसमें आचार सम्बन्धी वर्णन है। 🗀 🦰 🤫 🔻

द्वास्य मयूख इसमें प्रत्येक मास की तिथियों एवं बतों का निर्णय है । अग्रद्ध मयूख इसमें अष्ठका अन्वष्टका एकोदिए श्राद्धों की विधि है। अति मयूख इसमें राजनीति के प्रत्येक अङ्गों पर सूक्ष्म विश्लेषण है। ६ व्यवहार मयूख इसमें हिन्दू कानून सम्यक् रूप से वर्षित है। अतः गुजरात, बम्बई, उत्तरी कोंकण आदि में इसके अनुसार व्यवस्था है। बम्बई हाईकोर्ट ने 'हिन्दू छा' का इसे प्रामाणिक प्रन्थ माना है। श्रीपण्डरङ्ग वामन काणे, एमं ए०, एळ-एळ० एमं० ने History of Dharma

sastra Literature में भी यही बात स्वीकार की है।

MIS.

x ews Dellis on 4/ 12/12

७ दानमयूख—इसमें विविध दानों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। द उत्सर्ग मयूख-इसमें बलाशय-तडाग वापी-कूप-आरामआदि उत्सर्ग हैं। ६ प्रतिष्ठा मयूख—इसमें अनेकविध प्रतिष्ठा का कम बतलाया गया है। १० प्रायश्चित्त मयूख—इसमें प्रायश्चित्त प्रकरण है। ११ शुद्धि मयूख—इसमें शुद्धि का परिपूर्ण रीति से वर्णन है। १२ शान्ति मयूख—यह पुस्तक आपके कर-कमलों में ही है।

भव दो शब्द इस प्रन्थ के सम्पादक श्रीवायुनन्दनामश्र कर्मकाएडी के सम्बन्ध में कहना अप्रासिङ्गक न होगा। आपने कर्मकाण्ड के प्रन्थों में एक अभिनव, किन्तु श्राकर्षक, शैली रूपी उष्णरहिम को जन्म देकर भारतीय विद्वहुर्य के विक्त-चकीर को हठात् अपनी ओर खींच लिया। आपकी बनायी हुई कुछ पुस्तकों की तालिका इसके अन्तिम आवरण पृष्ट पर है। इनके अतिरिक्त आपने अन्त्येष्टि सहित कर्मकागुड समुच्चय, त्रयोदश संस्कार रत, विब्सुप्रांतष्ठा (बौधायनोक), लिङ्ग प्रतिष्ठा, काली प्रतिष्ठा, आदि का प्रश्यन तथा गोपदा त्रत कथा, वामन द्वादशी कथा, ऋषि पञ्चमी कथा, अनन्त चतुर्दशी वत कथा, महालद्मी पूजा भादि की टीका लिखी है। ये सब कागज की महर्घता एवं दुष्पाप्य होने से इसके बाद उन्होंने वर्तमान प्रन्थ 'शान्ति मयूख' के सम्पादन में हाथ लगाया और ७२ प्रष्ठ तक हो छपे थे कि सम्बद १९९६ मार्गशीर्ष शुक्ल २ मङ्गलवार को, रात्रि में दो बजे, ६४ वर्ष की भाय में, अपनी ऐहिक छीला का संवरण कर, सम्भवतः शतास्वमेधकर्ता हुन्त्र के महामख में प्रधान ऋरिवज का आसन महण करने के लिए, अमर-लोइ चले गये। आपके निधन से कर्मकाण्ड-संतार की अपूरणीय क्षति हुई। कई अनिवार्य कारणों से लगभग दो वर्षों तक यह यों ही पड़ा रहा। सन् १९४२ ई॰ में मैंने पुज्यपाद पण्डितजी की हस्तिकिखित प्रति का समाध्य क्रेकर इसका संशोधन करना आरम्भ कर दिया और एक वर्ष में अवशिष्ट अंशों का यथामति संशोधन किया। पण्डितजी की हस्तिखिल प्रति के अतिरिक्त मेरे पथ प्रदर्शन के छिए कोई दूसरी प्रति नहीं थी अतः इस पुस्तक में जो भी ब्रुटि रह गयी हो उसका उत्तरदायित्व मेरे जवर है। इसके छिए मैं विद्वदुवृत्द से क्षमा प्रार्थी हूँ तथा प्रार्थना करता हूँ कि वे उन बुदियों की ओर मेरा ध्यान दिला देंगे जिसमें दूसरे संस्करण में उनका सुधार किया जा सके।

काशी १८-१--१९४३ ई० विद्वजनचरणच्यचरीक—ः मन्नालाल श्रभिमन्युः

🗯 त्रथ शान्तिमयूखस्य विषयसूची 🏀

प्रकरणम्	ão.	पं०	प्रकरणम् पृ०	पं •
मङ्ग लाचरणम्	9	9	होमः ८४	94
कविवंशकथनम्	. 9	Ŗ	बिलदानम् ८६	२३
शान्तिलक्षणम्	3	, ų ,	पूर्णांहुतिः ८६	31
परिभाषा	Ę	33	अभिषेकः ८७	ં રૂર્ષ
अथ विनायकस्नपनम्	ø	२६	आचार्यादिपूजनम् ८८	93
प्रयोगः	92	18	अथ ब्रहयोगशान्तिः ८९	·: i
भथ प्रहयज्ञः	30	٩	प्रहस्नानानि ९१	9 ६
अयुतादिहोमं प्रकृत्यवशिष्ट	196	२२	आदित्यशान्तिः ९२	94
प्रहादीनां लक्षणानि	३९	ঙ	चन्द्रशान्तिः ९३	90
अधिदेवता-प्रत्यधि- 🚶	80	,	मङ्गलशान्तिः ९४	4
देवतास्रक्षणानि (बुधशान्तिः ५४	98
विनायकादिलक्षणानि	83	२०	गुरोः शान्तिः 🥕 ९५	
छोकपाङ्खपाखि	85	34	गुरुपूजा ९५	7 2 2
भथ लक्षहोमः	४३	9	शुक्रशान्तिः ५८	9
भय कोटिहोमः	४५	14	प्रतिशुकादिशान्तिः ' ९८	94
शतसुखकोटिहोमः	49	3	शन्यादिशान्तिः ९९	14
भथ प्रहमखप्रयोगः	५६	۵	शनिवतम् १००	
मण्डवकरणम्	પદ્	18	शनिस्तोत्रम् १०१	: : : (4
गणेशपूजादि-	40	હ	अर्कविवाहः १०३	:
वास्तुकर्म	46	. 9	प्रयोगः १०६	液
द्वारपूजा	६ ३	3	ऋतुशान्तिः १०८	ેં
सोरणपूजा	€8	9		. 10
अग्निस्थापनम्	७२	રપ	उपरागे रजोदर्शनविशेषः ११६	3.8
मण्डलदेवतास्थापनम्	७३	9.	गोमुखप्रसवविधिः ११७	. 4
ब्रहादिस्थापनं पूजनं च	હદ્	94	प्रयोगः ११९	4
कलशस्थापनम्	43	98	सदन्तोत्पत्तिशान्तिः ११९	**
वितानबन्धमम्	48	18	कृष्णचतुर्दशीजनमशान्तिः १२१	

प्रकरणम्	ď۰	पं०	प्रकरणम्	६०	ď o
सिनीवालीकुहूशानितः	१२३	9	नक्षत्रशान्तयः	108	14
प्रयोगः	૧૨૪	२३	तिथिवारश्रेषु साधारणः	969	૨૧
दर्शजननशान्तिः	१२६	3	प्रयोगः (
प्रयोगः	१२८	4	प्रहण्शान्तिः	863	6
ज्येष्ठाशान्तिः	378	२६	जलाशयवैकृतशान्तिः	804	18
प्रयोगः	939	. 98	वृष्टिचैकृतशान्तिः	308	इ
मूळशान्तिः	132	18	अग्निवेक्तत्शान्तिः	920	. 3
सूळाइळेषाशान्त्योः प्रयोगः		3	प्रतिमादिवैकृतशान्तिः	"	35
मूकारकपारान्त्याः प्रयागः वैष्टतिब्यतीपात-	.,,,	•	आकस्मिकप्रासाद- (968	9
संक्रांतिशान्तयः	388	4	पतन्शान्तिः }	•	,
प्रयोगः	986	24	बृक्षविकारशान्तिः	380	35
पुकनक्षत्रजनमशान्तिः	188	26	उत्पातशा दि तः	393	9
6	٠.,		पह्णीसस्टशान्तिः	195	80
प्रयोगः	340	२०	ब्रामार्ख्यादिशान्तिः	368	×
प्रहृणोत्पत्ती शान्तिः	343	ફ :	कपोतशान्तिः	194	90
विषघटिकाशान्तिः	૧૫૩	1	काकवैकृतशान्तिः	194	9 &
भगगढान्तशान्तिः	148	33	काकमैधुनदर्शनशान्तिः	190	२२
दिनक्षयादिशान्तिः	3 1414	30	काकस्पर्शशान्तिः	396	2.5
त्रिकशान्तिः	944	93	सिंहादौ गवादिप्रसूतिशा		15
प्रसववैकृतशान्तिः	940	94	मुसलाद्याकस्मिक- ∤	7	3.
.यमलशान्तिः	946	9	स्फुटने शान्तिः	२०४	3
महीगृहीतबालकविधिः	949	98	विद्युत्पातादिशान्तिः	२०५	20
बालप्रहस्तवः	350	96	मग्याचैकदेशभेदे शान्तिः	805	9
यूतनाविधानम्	184	ų	अश्वशा न्तः	200	9
		24	गजशान्तिः	230	18
ज्वरागुटप्रती शान्तयः	300		ग्राह्मान्तः महाशान्तिः	- 555	ાં ૅ
वारशास्त्रयः	१७२	33	सङ्ग्रामन्त्रः	538	. 1

इति सूचीपत्रम् ।

working to the

त्र्रथ शान्तिमयूखः।

🏶 प्रारभ्यते 🏶

महोमयमुदाराभं लोकत्रयनमस्कृतम् ।
तमहं भास्करं वन्दे सतां सर्वार्थसिद्धिदम् ॥१॥
यज्ञे पितामहतनोः खल्ज कश्यपो यस्तस्मादजायत मुनिस्तु विभागडकारूयः ।
तं पुत्रिणां धुरमरोपयदृश्यशृङ्गस्तस्मान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥२॥
तिस्मन्वंशे महति वितते सेंगरारूये नृपाणां
राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरिश्मः ।
कीर्त्या यस्य प्रथिततर्या श्रोत्रजातेऽभि पूर्णे

कर्णस्याऽपि प्रविततकथा नावकाशं लभन्ते ॥३॥ विशोकाख्यदेवस्ततस्तत्स्रतोऽभूत्

विशोकी कृता येन सर्वा धरित्री । ततोऽप्यासराजास्तशत्रुस्ततोऽभूत्

रयाख्यो स्येखैव सर्वाहितझः ॥४॥ बभूवाऽथ वैराटराजस्ततोऽभू-

न्तृपो मेदिनीवल्लभो वीढराजः । नरब्रह्मदेवस्ततो मन्युदेव— स्ततोऽभून्तृपश्चन्द्रपालाभिधानः ।

शिवगुरा। रूपतृषः समजन्यथो

शिवगणारूयपुरं प्रचकार यः ।

शिवगणेन समः सकलैर्गुणैः

शिवशिवपथमो गणनामु यः ॥६॥
रोलिचन्द इति तत्तनयोऽभूत् कमसेननृपतिस्तमथानु ।
लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥७॥
यशादेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः ।
चक्रसेनस्ततो राजा राजसिंहनृपो यतः ॥८॥
ततोऽप्यभुद्भृपतिसाहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धः ।
श्रभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योद्यवान् ज्ञितीशः ॥६॥
यदानद्रविणाद्रिनिर्जितवपू रक्षाचलो लज्जया

द्रेस्तव्य इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः । किंच त्रस्पद्रातिवामनयनानेत्राम्बुभिविद्धित-

स्तेजोग्निर्वडवा ग्रुरूयोत्यहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत्।।१०॥ श्राज्ञप्तस्तेन राज्ञा विविधकुलमणिर्दिचणात्यावतंसो

भद्दश्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढ्मितर्जैभिनीये द्वितीयः । श्राज्ञामादाय मूर्ध्ना सविनयममुना तस्य सर्वाश्विवन्धान् दृष्ट्वा सम्यक् विविच्य मविततिकरणस्तन्यते भास्करोऽयम्॥११॥

पतारकैरादृतमन्त्रकिञ्चि-

न्मया तु निम्नु लतया तदुष्टिभतम् । जनोक्तितातो न हि तेन काचित् खपुष्पहीनाऽपचितिन हीयते ॥१२॥ 'संस्काराऽऽचा ैरकालाः 'सम्रचितरचनाः 'श्राद्ध 'नीती विवा 'दो 'दानो 'त्सर्ग-'प्रतिष्ठा जगात जयकराः सङ्गतार्थाऽनुबद्धाः॥

१ संस्कारमयूख २ आचारमयूख ४ समयमयूख ४ श्राद्धमयूख ५ नीति-मयूख । ६ विवादमयूख ७ दानमयूख = ३त्सर्ग मयूख ६ प्रतिष्ठामयूख

माय'श्चित्तं विशु'द्धिस्तदनु निगदिता शा'न्तिरेवं क्रमेरण रूपाता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुधजनसुरूदा द्वादशैते मयूखाः ॥१३॥ भगवन्तभास्करारूपे ग्रन्थेऽस्मिन् शिष्टसम्मते च ततः। शोन्तिविवेकमयुखः प्रतन्यते नीलकएठेन ॥१४॥

श्रस्पष्टपापनिदानकैहिकमात्रानिष्टनिवर्सकं पापाप्रयोजकं वैधं कर्मशान्तकम् । च्यादिहरदानादावित प्रसङ्गं वार्यितुं निदानका न्तम् ॥ श्रामुष्मकानिष्टनिवर्सके तं वार्यितुमैहिकेति । प्रायश्चित्तं वार्यितुं मात्रपदम् । प्रायश्चित्तं त्वामुष्मिकानिष्टनिवर्सकमपि, श्रमिचारप्रत्यमिचारादौ वार्यितुं पापाप्रयोजकमिति । तयोः फलतो हिंसात्वेन तदनुष्टानं प्रायश्चित्तोकेश्च पापप्रयोजकत्वात् । श्रनिष्टनिवर्सकत्वं च शान्तिकस्य तन्निदानपापनाशक्षपसामग्रीविघटत्वेन पृष्टिफलकं वैधं कर्म पौष्टिकम् ।

तत्र परिभाषा मार्कएडेयपुराखे-

शिरस्नात श्व कुर्वीत दैविष्ण्यमथाऽपि वा ।
प्राङ्ध 'खोदङ्गुखो वाऽपि समञ्जक्ष च कारयेत् ॥१॥
सत्रैव-देवार्चना 'दिकर्माणि तथा ग्रविभवादनम् ।
कुर्वीत सम्यगाचम्य मयतोऽपि सदा द्विजः ॥२॥
बृहन्मनुः-प्राणाना 'यम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः ।
मार्कण्डेयः-सङ्कल्प्य विधिवत्कुर्यात् स्नानदानव्रतादिकम् ॥३॥
देवलः-मास प्रतिथीनां च निभित्तानां च सर्वशः।
बल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फल्भाग्भवेत् ॥४॥

१ प्रायश्चित्तमञ्जूल । २ शुद्धिमञ्जूल । ३ शान्तिमञ्जूल एवं द्वादेशमञ्जूल । ४ दैविपित्रकर्म में शिर से स्नान करें। ५ इमश्रु कर्म पूर्व मुँह या उत्तर मुँह करावै । ६ देवता आदि का पूजन गुरु की बन्दना इत्यादि कर्म आचमन करके करें। ७ प्राणायाम करके। च सङ्करप युक्त स्नान करें। ९ मासपक्षतिथिवाद निमित्त बच्चारण करें।

मासपत्त्विययः प्रयोगाधिकरणभृताः सर्वेऽिष यत्तु अनेकदिन-साध्ये कर्मण्याद्यदिने सङ्कल्पकालीनां तिथिमधिकरण्य्वेनोल्लिख्य ज्योतिष्टोमेनाह यद्ये इत्यादिसंकल्पवाक्यं प्रयुक्षते यायजूकाः ॥ तत्तु पदानामन्वयायोगादनादर्जव्यम् ॥ यदिष केचित्तेन तेन रूपेण् प्रयोगाङ्गतया विहितानामे मासादीनामुल्लेख इति तदिष न माना-भावात् ॥ अविहितमासादिक आधानादौ मासपत्त्तिथोनां ज्योति-ष्टोम एकादशीव्रतादौ च मासपत्त्वयोदल्लेखामावप्रसंगाच ॥ अतो ज्योतिष्टोमादावेकादश्यादिपूर्णिमान्तानामुल्लेखः ॥ प्रवमन्यत्रापीति दिक् ॥ अत्र श्रद्भाणामण्यधिकारः ॥

श्रावयेचतुरो वर्णान्हत्वा ब्राह्मणमद्रतः—

इत्यादिवाक्येषु श्रावणस्य वृत्यर्थतया रागमाप्तत्वेन तद्विधौ वैयश्र्यापत्तेनिजिविवत्त्या श्रवणिविधानातेषां पुराणश्रवणेऽधिकारेण झानसद्भावात् ॥ वैदिकमन्त्रामावे कथं तद्वत्सु कर्मस्वधिकार इति चेत् ॥
श्रुणु धर्मेष्सवस्तु धर्मझाः सतां धर्ममनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्जे न दुष्यन्ति
प्रशंसां प्राप्तुवन्ति चेति मनुना मन्त्रवर्जनात् ॥ यत्तु—मेधातिधिर्मेन्
त्रवर्जिततेषुववासादिष्वधिकारार्थमिदं न तु समन्त्रकेषु मन्त्रपर्युदासेनाधिकारार्थमिति तन्त्र ॥ श्रमन्त्रकोपवासादिषु श्रवणविधिनैवाधिकारिषद्धावेतद्वाक्यानर्थक्यापतेः ॥ श्रत एव मोत्त्रधर्मेऽपि ॥
मन्त्रवर्जे न दुष्योन्त कुर्वाणाः पौष्टिकीं कियामिति ॥ श्रवेतद्वाक्यस्य
पौराण्यतेन तत्सामान्योपस्थितपौराणिकयोदेशेन मन्त्रवर्जनविधौ
पौष्टिकीमित्यस्योदेशायविशेषण्यत्वेनाविविज्ञितत्वम् ॥ एवं मनुवाक्यस्यतस्य चैकेव श्रुतिमूल्यत्वेन कल्प्यते ॥

गृह्यपरिशिष्टे-आदौ विनायकः पूज्य अन्ते तु कुलदेवताः। शौनकः—पुण्याह्वाचनविधि वक्ष्यामोऽथ यथाविधि ॥१॥ प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयसिद्धयेः। कर्मप्रदीपे-कर्मादेषु तु सर्वत्र मातरः सगणाधिपाः॥२॥ पूजनीयाः पयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः। प्रतिमासु च शुद्धासु लिखित्वा वा पटादिषु ॥३॥ अपि वाऽस्ततपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः। कुड्यलग्रावसोर्द्धाराः सप्तवारं घृतेन तु ।।४॥ कारयेत्पश्चधारा वा नातिनीचो न चोच्छिताः । श्रायुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥४॥ षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्रद्धदानमुपक्रमेदिति । षड्भ्य इति कातीयछन्दोगपरम् ॥

श्रन्येषां तु नव दैवत्यम्---

श्रन्वष्टकासु हद्धौ च गयायां च च्चयेहिन । श्रत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥६॥ इति वचनात् ॥

सर्वत्राचार्यो यजमानसमशास्त्रीय एव ॥ श्रन्यथाऽऽचार्यस्य यज-मानशाख्यध्यनाभावे तच्छासीयपदार्थानां निर्वाह एव न स्यात् ॥ स्वशास्त्रयैवानुष्ठाने तु वैगुरुयम् ॥ तथा च पराशरः—

यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत् । श्रममाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जतीति ॥१॥

ऋत्विजस्तु भिन्नशाखीया अपि .सर्वेष्याचार्य्ये ब्रह्मार्त्वजो मधु-पर्केण पूज्याः ॥ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेदित्याश्वलायनोक्तेः ॥

सम्पूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्मकारयेदिति ॥ विश्वामित्रोक्तेश्वरुँ॥

यो ऋत्विक् यच्छ।खीयं कर्म करोति तच्छ।खोक्तेन प्रकारेण काएडानुसमयेन मधुपर्क कुर्वन्ति यायजूकाः केचित् ॥ परे यजमान-शाखोक्तेन ॥ यजमानेन स्वशाखीया ऋत्विग्मिश्च स्वस्वशाखीयाः पदार्था अनेकेषु ऋत्विक् पदार्था न समयेनानुष्ठेया इति तु युक्तं तक्त-च्छाखाध्ययनजन्मझानस्याङ्गत्वादेकप्रयोगविधिपरिश्रहाच ॥

ऋत्विग्भ्यो देयमुक्तं लिङ्गपुराणे— वस्तयुग्मं तथाप्यूरं केयूरं कर्णभूषणम् । श्रङ्गुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ॥१॥ कण्टाभरणयुक्तानि प्रारम्भे धर्मकर्मणः । पुरोहिताय दत्वाऽथ ऋत्विग्भ्यश्राऽपि दापयेत् ॥२॥ ऋापः पूर्यन्तेऽस्मिन्नित्यप्यूरं जलपात्रम् ॥

मत्स्यपुराणे-यजमानः संपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः । पश्चिमद्वारमाश्चित्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१॥ संग्रहे-समन्ततश्च सिद्धार्थान् किरेद्रचोघ्नमन्त्रतः । प्रतिष्ठासारे-सर्वतः पश्चगव्येन पोच्चयेद्यागमण्डपम् ॥ श्चापो हि ष्ठा तृचेनैव ततः स्वस्त्ययनं जपेत् ॥२॥

श्रत्र हेमाद्रौ वास्तुपूजाप्युक्ता−

समरहर्षं पविश्याऽथ तोरखादि प्रपूज्य च । वास्तुयागं ततः कुर्यात् प्रासादे मरहपेऽथवा ॥३॥ वास्तुमरहरु च-नैऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माद्यांश्च समर्चयेत् इति शारदोक्तेः॥

वास्तुहोमस्तु भिन्नस्थिष्डिले कार्यः । मुख्यायतने वा ॥ तत्रा-प्यादी पृथक्ष्रयोगतया प्रधानसमतन्त्रतया वा ॥ शारदातिलके तु होम एव नोक्तः ॥ सर्वः च शान्तिकं पौष्टिकं महादानादिलीकिकाग्नी कार्यम् । श्रीतस्मार्त्तान्निप्राप्ती मानाभावात् ।

यत्तु मनुः-वैवाहकेऽग्नौ कुर्वीत गाह्यं कर्म यथाविधि ॥ पश्चयज्ञविधानं च पंक्तिवाध्नवाहिकी ग्रहीति ।

तत्स्पष्टं गृद्योक्तपरम् । वैवाहिक इति च दारदायाद्य कालिकयोः रप्युपलक्षकम् । तत्सजातीयसंस्कारस्यैव साधनतावच्छेदकत्वात् ॥ यदिप याज्ञवल्वयः-स्मार्ते कर्म विवाहाग्नौ कुर्वीत पत्यहं गृही । दायकालाहृते वापि श्रौतवैतानिकाग्निष्विति ॥१॥

तत्रापि सामान्यं स्मार्तपदं गार्छं उपसंहियते ॥ एतेनाहवनीया-दयो निरस्ताः ॥ यदाहवनीये जुह्नतीत्यादावश्व प्रतिष्रहेऽष्टी वैदिकः त्वसाम्न्येन वैदिकाश्वदानप्रतिग्रहोपस्थितिवत् वैदिकहोमोपस्थितेश्च।
यद्यप्यत्र गार्श्वस्मातं एव श्रीतं च नैतानिक एवेति नियमेन स्मृत्युकेऽपि कर्मणि श्रीतस्मार्त्तांग्न्योः प्राप्तिः सम्भाव्यते ॥ तथाऽपि न
साहवनीयावसथ्यत्वादिरूपेण ॥ किन्तु सौकिकसाधारण्डवलनत्वोनैव ॥ श्रवीधाद्यतिप्रद्येपे श्राहवनीयत्वादिविधातापत्तेश्च । श्रत एव
सर्वाधानिन श्रीपासनाभावाद्वैतानिप्राप्तेश्च तेन गार्ध्यं सौकिक
एव कार्य्यम् ॥ श्रमुमेव सर्वमर्थं समृत्यर्थसारक्षदिप संजन्नाह ॥

गार्ह्यभौपासने कुर्यात्सर्वाधानी तु लौकिके । स्मार्ते च लौकिके कुर्याच्छौतं वैतानिकाऽग्निष्वित ॥१॥

यत्तु नारायणवृतौ सर्वाधानिना सोमन्तोन्नयनादि गार्श्वकर्मार्थ स्मार्त्ताग्निरुत्पादनीय इति ॥ तत्र मूलमन्वेष्यम् ॥ यदपि विज्ञानेश्वरो इ.हयज्ञ श्रोपासन इत्यूचे ॥ तत्रापि मूलमन्वेष्यम् । कातीयपरं वा तत्स्त्रे तथास्नानात् ॥ श्रत एव विनायकशान्तौ लौकिकाग्निमेवाऽ-बोचत् । श्रतः स्मृत्युक्तं लौकिक एवेति ॥

कृत्यरत्नाकरे-श्रुभपात्रं तु कांस्यं स्यात्तेनाग्नि प्रण्येद्रबुधः ।
तस्याभावे शरावेण नवेनाभिग्रुखं च तम् ॥१॥
गोभिलीये-श्राहूय चैव होतव्यो यो यत्र विहितोऽनलः ।
तथा-लक्तहोमे च विहः स्यात्कोटिहोमे हुतासनः ।
पूर्णाहुत्या मृडो नाम शान्तिके वरदः सदा ॥१॥
श्रम्येषु लंस्कारादिकर्मस्वग्नेर्नाम विशेषाः श्रयोगरत्ने होयाः ॥
होमविशेषो गोभिलीये-न ग्रुक्तकेशो जुहुयास्नातिपातितजानुकः ।
उत्तानेनैव हस्तेन श्रङ्गष्टाग्रेण पीडितम् ॥१॥
संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्विरिति ।
वहुकर्त्वे होमे शत्याहुतित्यागाशकेहोंमारम्भ एव सर्वादेवताः
श्रवुश्यं तेनोहिश्य सर्वाणि द्रव्याणि त्यजेदिति हेमायाद्यः ॥

अथ विनायकस्नपनम्---

याज्ञवल्क्यः-विनायकः कर्मविष्नसिद्धचर्थे विनियोजितः।

गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥१॥ तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्तणानि निवोधत । स्वप्नेऽवगाह्यतेत्यर्थं जलं शुण्डांश्च पश्यति ॥२॥ काषायवाससश्चैव क्रव्यादाँश्चाधिरोहति । श्चन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्राऽवतिष्ठति ॥३॥ व्रजन्नपि तथाऽऽत्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ।

उपसृष्टः उपदुतः ॥ स्वप्ने स्रोतसाऽपह्नियते तत्र मञ्जति वान-त्वगाहनमात्रं विविद्यतं तस्य ग्रमसूचकत्वात् ॥ श्रन्त्यजैश्चाएडालैः ॥ प्रत्यदनलज्ञ्णान्याह—

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिभित्तकः।
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः॥१॥
कुमारी नैव भर्तारमपत्यं गभमङ्गना।
श्राचार्यत्वं श्रोत्रियश्चन शिष्योऽध्ययनं तथा॥२॥
विश्विक्लाभं च नाष्नोति कृषि चापि कृषीवलः।

संसीदित कारणं विना दीनमनस्को भवति ॥ एतदुपलक्षणं यस्य यदिष्टं स चेदिष्टसामग्री सत्वे तन्न प्रामोतितदा तदुपद्भुतो बोध्यः ॥ एतदुपद्मवपरिहारार्थं च कर्माह—

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुरुयेहि विधिषूर्वकम् ।

श्रित्र पुरुयेऽहोत्यविशेषेऽपि विशेषोऽपराकें भविष्ये—

शुक्रपत्ते चतुर्थ्यां च वारेण धिषणस्य च ।

तिष्ये च वारनत्त्रते तस्यैव पुरतो तृपेति ॥१॥

श्रित्रादौ देवतापूजोक्ता तत्रवन—

व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भामजं तथा ।

कृष्णस्य पितरं केतुं श्रिकेमारं सितं तथा ॥१॥

धिषणां क्लेदपुत्रं च कोणलक्ष्मं च भारत ।

विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारणमिति॥२॥

व्योमकेशः शिवः ॥ भामजो गर्गेशः ॥ आरो भीतः ॥ स्तितः शुक्रः ॥ धिषणो गुरुः ॥ क्लेदपुत्रो बुधः ॥ कोगः शनैश्चरः ॥ लदम तद्वांश्चन्द्रः ॥ बाहुलेयः स्कन्दः ॥ नन्दकधारी कृष्णः ॥

गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्वित्तिप्तशिरप्तस्तथा ॥१॥ भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजैः शुभाः । गौरसर्षपपिष्टेन गोघृतयुक्तेनोत्सादितस्योद्वर्त्तितस्य॥

सर्वोषधानि छन्दोगपरिशिष्टे---

कुष्ठं मांसी इरिद्रे द्वे ग्रुरा-शैल्टेय-चन्दनम् । वचा-कर्चूर-ग्रुस्ते च सर्वीपध्यः पकीर्तिताः ॥१॥

सर्व-गन्धेश्चन्दन-कुङ्कुमाऽगरु कस्तूरिका-जातीफलादिभिः । वेद्यां सितवस्त्रप्रच्छादितश्रीपर्णीपीठभद्रासनं स्वस्तिवाच्याः स्वस्तिवा-चनीयाः ॥ ब्राह्मसहारा स्वस्तिवाचनं कारयेदित्यर्थः ॥

अश्वस्थानाद्दगजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्दहदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलुं चाप्सु नित्तिपेत् ॥१॥ या आहृता एकवर्णैश्वतुर्भिः कलशैर्हदात् । चर्मएयानुदुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं ततः॥२॥

श्रानडुहं चर्म च वेद्यां प्राग्नीवमूर्ध्वलोम च स्थाप्यमिति विज्ञा-नेश्वरः॥ या श्रापः ते चत्वारोऽपि कलशा भद्रासनात्पूर्वादिचतुर्दिश्च स्थाप्या इति साम्प्रदायिकाः॥ पूर्वादिदिक्त्रयावस्थितकलशोदकेनाः भिषेकक्रमेण मन्त्रानाह—

सहस्राचं शतथारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिश्चामि पावमानीः पुनन्तु ते ॥१॥ भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो दृदुः॥२॥ यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच मूर्द्धनि । खलाटे केशयोरक्ष्णोरापस्तद्द्वन्तु ते सदा ॥३॥

सहस्राच्चं बहुशक्तिकं ॥ पावमानी इत्यनन्तरमाप इति शेषः॥ भगं कल्याग्ं॥ दीर्भाग्यमकल्याग्मम्। उद्दिगवस्थितेनाभिषेके पूर्वा-क्तास्त्रय एव मन्त्राः॥ सर्वेश्चतुर्थमिति विज्ञानेश्वरोक्तलिङ्गात्॥

किञ्च---

स्नातस्य सार्षपं तैलं सुवेखौदुम्बरेख तु । जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सब्येन परिग्रह्म च ॥१॥ सब्यपाणिगृहीतकुशां तर्हि ते सार्षपं तैलमुदुम्बरनिर्मितेन स्रुवेण यजमानमूर्द्धनि जुहुयादाचार्यः॥

भितश्च सम्भितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ । कृष्मारहो राजपुत्रश्चेत्यं ते स्वाहा समन्वितैः ॥१॥ नामभिर्वेलिमन्त्रेश्च नमस्कारसमन्वितैः ।

"नमः स्वस्ति स्वाहे"ित चतुर्थी । एतानि षट् विनायकनामानि इति विज्ञानेश्वरः ॥ श्रपरार्कस्तु शालकटंकट इत्येकवचनान्तं पपाठ ॥ तेन तन्मते पञ्चैवाहुतयो भवन्ति ॥ श्रत्र लौकिकाग्नी स्थालीपाकवि-धिना चर्च छत्वा तेभ्य पवाहुतिषट्कं हुत्वेन्द्रादिदशलोकपालेभ्य-स्तन्नाम्ना वर्लि दद्यात् । इति मिताच्चरायाम् ॥

तत्र चरहोमे इन्द्रादिभ्यो विलदाने च मूलं चिन्त्यम् । अन्ते स्वाहा समन्वितैर्नामभिजुँदुयात् । नमस्कारसमन्वितैश्चेत्यादिभ्य एव विलं दद्यादिति वद्यमार्णेन सम्बध्यत इति तु युक्तम् ।

दद्याच्चतुष्पथे सूर्ये क्रशानास्तीर्य सर्वशः। कृताकृतांस्तराडुलांश्च पलकौदनमेव च ॥१॥ मत्स्यान्पकांस्वथैवामान्मांसमेतावदेव तु । पुष्यं चित्रं सुगन्धि च सुरां च त्रिविधामपि ॥२॥ मूलकं पूरिकापूपास्तथैवोिषडरकस्रजः । दध्यन्नं पायसं चैव गुडिपष्टं समोदकम् ॥३॥ एतान्सर्वान्समाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः । कृताकृतान्सकृदवहतान् पललौदनः ॥४॥

तिलपिष्टमिष्ट श्रोदन इति मितास्रायाम् ॥ श्रपक्षमांसं मिश्र श्रोदन इति तु युक्तम् ॥ पललं कव्यमामिष' मिति कोशात् । श्रामान् पकान् मांसमेतावदेव तु । पक्षमपक्षमांसमन्यदित्यर्थः ॥ त्रिविधा सुरा गौडी पैष्टी माध्वी च । मूलकं कः दाकारो भक्यविशेष इति मितास्र रायाम् ॥ स्वरूपत एव श्राह्ममिति तु युक्तम् । उभवमिष श्राह्ममिति महार्णवे । श्रपूपाः स्रोहपका गोधूमविकारा इति विक्षानेश्वरः । उण्डेर् रकाः पिष्टविकारा नानाविधास्ते स्रज इत्युच्यन्ते । गुडिपष्टं गुडिमिश्रं शाल्यादिपिष्टं श्रत्र सुरामांसं च(ऽब्राह्मण्यिययम् ॥ ब्राह्मणैस्तु मांस-सुरास्थाने तु सलवणं पायसं दुग्धं च श्राह्मम् ।

पाँयसं लवणोपेतं मांसस्थाने मकल्पयेत्। दुग्धं लवणसंमिश्रं सुरास्थाने मकल्पयेत्॥१॥

स्मरणादिति महार्णवादिषु विनायकाम्बिकागायत्रीभ्यां विनायकमन्विकां च नमस्हत्य पूर्वोक्तद्रव्यजातं तयोरप्रत उपहृत्य तच्छेषं धूर्पे निधाय चतुष्पथे धूर्पे संस्थाप्य वर्लि दद्यादेतैर्मन्त्रैः।

विलं गृह्णन्त्वमं देवा श्रादित्या वसवस्तथा।
मस्तोऽथाश्विनौ स्द्राः सुपर्गाः पत्नगा ग्रहाः ॥१॥
श्रमुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः।
शाकिन्यो यत्तवेताला योगिन्यः पूतना शिवाः॥२॥
जम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्योधरा नगाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विद्यविनायकाः ॥३॥
जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः।
मा विद्यं मा च पापं मा संतु परिपंथिनः ॥४॥

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ।

दद्यादित्यापि देहलीदीपवदन्वेति । विनायकस्य जननीमुपति-ष्ठेत्ततोम्बिकाम् । दूर्वासर्पपपुष्पाणां दत्वार्घे पूर्णमञ्जलिम् । अनन्तरं विनायकमस्विकां च दूर्वाद्यञ्जलिमर्घे च दत्वोपतिष्ठेत ।

उपस्थानमन्त्रमाह-रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि घनं देहि सर्वान्कामाँश्च देहि मे ॥१॥

भगवित्तत्त्रत्व्ह्य विनायकमण्डुपतिष्ठेतेति विद्यानेश्वरः। स्रत्र मदनः। विनायकोपस्थानं कृत्वाऽभ्विकोपस्थानं कार्य्यमित्याह । किञ्च---

ततः शुक्काम्बरधरः शुक्कमाल्यानुलेपनः । ब्राह्मसान्भोजयेद्दद्याद्वस्तयुग्मं गुरोरपि ॥१॥ गुरोराचार्याय । श्रापि शब्दाद्वत्तिसामपि ॥ पर्वविधं कर्म कुर्वतः। एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः। कर्मसां फलमाभोति श्रियमाभोत्यनुत्तमाम् ॥१॥ ॰

श्चस्याः कर्माङ्गत्वेन पौष्टिकत्वेन च वर्णचतुष्टयस्याप्यत्राधिकारः॥ श्चद्रस्य तु मन्त्रवर्ज्ञ तान्प्रक्रस्य ॥

मन्त्रवर्जन दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियामिति मोच्छर्म-श्रवणादिति वदन्ति॥ महार्णवोऽपि॥यजमानस्तु श्रद्धश्चेदिति वदन् तस्याधिकारमभिमेति॥ इति विनायकशान्तिनिर्णयः समाप्तः॥

श्रथ प्रयोगः ॥

कर्ता देशकाली सङ्गीत्यांऽमुककर्मणो निर्विद्यतासिद्धवर्थमुपसर्ग-निवृत्यर्थं वा विनायकस्नपनं कारण्य इति सङ्करपयेत् ॥ ततः पुण्याह-वाचननान्दीश्राद्धान्तं यथोक्तं कुर्यात् । श्रपरे पुण्याहवाचनं नेच्छन्ति॥ श्रश्ने तस्य कर्त्तव्यत्वात् ॥ श्रथाचार्य्यं ऋत्विक् चतुष्टयं वृणुयात् ॥ ऋत्विजो न सन्तीति केचित् । तदाचार्यं एव बद्ध्यमाणमभिषेकं कुर्यात् ॥ यजमानः प्रतिमास्वज्ञतपुञ्जेषु वा । शिवं, पार्वेतीं, गणेशं, वसुदेवं केतुं, श्रक्तं, भीमं, श्रुकं, गुरुं, बुधं, शिनं, चन्द्रं, राहुं, स्कन्दं, रुष्यां,

चावाहा पूजयेत् ॥ तथाऽऽचार्यः पञ्चवर्णैः पूर्वादिचतुर्दिन् चत्वारि-मध्यस्थवेद्यां चैकमिति स्वस्तिकपञ्चकमालिख्य मध्यस्थस्वस्तिकोः परि त्रानडुहं रक्तं चर्म प्राचीनब्रीवसूर्ध्वलोम संस्थाप्य तस्योपरि श्रीपर्णींपीठं संस्थाप्य सितेन वाससा संद्वादयेत्॥ पतज्जद्वासन-मिति । श्रथ चतुर्षु स्वस्तिकेषु पूर्वादिदिच्च चत्वारोऽपि ऋत्विजः कलशान्संस्थापयेयुः ॥ श्राचार्यो वा ॥ तत्राऽयं प्रकारः ॥ ॐ महीद्यौः पृथिवी चुनेति भूमि स्पृशन् ॥ सम्प्रार्थ्य ॐश्रोषधयः समिति यवान् चित्तवा ॐ त्राजिञ्जकलशेष्वितितेषु कलशं संस्थाप्य ॥ॐवरुण्स्योत्त-म्भनमसीति उदकेनापूर्यं ॥ त्वां गन्धर्वेति गन्धं चिपेत् (केचिचु चन्दनागरकस्त्री-कर्पर-गोरोचनादीन गुग्गुलं च निहिपन्ति) ॐ या श्रोपधीरिति सर्वोषधीः चिपेत् ॥ ॐ कार्रडात्काडादिति दुर्वाः ॥ ॐ ब्रश्वत्थेव इति पञ्चपल्लवान् ॥ **ब्रों स्योना पृथिवीत्यनेन मृ**त्तिकां चिपेत्॥ (श्रथवा उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतवाहुना॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतमित्यनेन भन्त्रेण पञ्च मृदः चिपेत्) याः फलिनीरिति फलम् । ॐ परिवाजयतीति पब्चरह्नानि चिपेत् ॥ श्रों हिरण्यगर्भेति हिरण्यं चिपेत्॥ श्रो युवा सुवासेति वस्त्रयुग्मेन वेष्ट्येत् ॥ ॐ पूर्णा दर्वी परेति कलशोपरि धान्यपूर्णं पूर्णपात्रं निद-ध्यात् ॥ अत्र वरुणावाहने पूजने ऽपि केचिदाहुः ॥ ततः कलशे सर्वे समुद्रा इति गङ्गायाबाहनम् । ततः कुम्भाभिमन्त्रणम् ॥ शस्य मुखे विष्णुरित्थादिना इति ॥ ततः कुम्भप्रार्थना ॥ देवदानव-संवादे ... सर्वदेति ॥ ततो ऋत्विज आनो भद्रेति शान्तिस्कं पठेयु-रिति केचित् ॥ आनो भद्रेति शान्तिस्तिस्य राहुगणो विश्वेदेवास्त्रि-ष्ट्रप् श्राचा सप्तमी च जगत्यः पष्ठी विराट् शेषास्त्रिष्टुभःशान्तिस्कजपे विनियोगः॥ ॐ श्रानो भद्राः १२ मंत्राः॥ शन्नो ब्वातः पत्रतामित्या-दिकां वा ३ मंत्राः ॥ तस्मिन्नेव समये श्राचार्यो भद्रासनस्योत्तरः ईशान्यां वा वस्त्राच्छादितपीठादौ विनायकप्रतिमामम्बिकाप्रतिमां चाग्न्युत्तारणपूर्वकं प्रतिष्ठाच्य षोडशोपचारैः पूजयेदिति निवन्ध-रुतः ॥ तत्र त्रिनायकमन्त्रः ॥ ॐ गणानान्त्वा० ॥ ॐ तत्पुरुवाय विद्यहे वकतुगडाय धीमहि ॥ तन्नो दन्तिः प्रचोदयादिति वा॥ गौर्यास्तु । ॐ श्रायं गौः । श्रम्बेऽश्रम्बिके० वा ॥ सुभगायै विद्यहे काममालिन्यै धीमहि ॥ तन्नो गौरी प्रचोदयादिति ॥ अत्र मिताचरायां

चरुहोमोप्युकः॥ शिष्टाश्च कुर्वन्ति तस्मिन्पचे आचार्यो गृह्योकिबि-धिना कु॰डे स्थिएडले बाऽरिन प्रतिष्टाव्य प्रादेशमात्रं समिद्द्वयमा-दायास्मिन्होमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्य इति सङ्करूप्य चचुषी श्राज्येनेत्यन्तमुत्क्वा श्रत्र प्रधानं मितं सम्मितं शालंकटं कूष्मां इं राजपुत्रमेताः प्रधानदेवता एकैकया चर्वाहुत्वा यद्दये ॥ शेषेण स्त्रिष्टकृतमित्याद्युत्कवाग्नावाद्ध्यात् ॥ अपरार्कमते तु पञ्चैवाहुतयस्त-न्मते त्वाधाने होमद्वये च तथैवानुसन्धेयम् ॥ ततः परिसमूहनादि-चरुश्रपणान्तं कृत्वा गोवृतलोलीकृतेन गौरसर्षपकरकेनोद्वत्तिताङ्गं सर्वौषधिचूर्णैः कस्तूरिकागरु-चन्दनादिभिविलिप्तशिरसं यजमान-माचार्यो भद्रासने उपवेशयेत् ॥ ततो यजमानः स्वस्तिवाचनं कुर्यात् ॥ अनन्तरं रूप्गुणशालिनोभिः सुवासिनीभिनीराजनं कारयेत्। ततो भद्रासनात्पूर्वदेशावस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः।

मन्त्रश्च-सहस्रात्तं शतं शारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिश्चामि पावमानीः पुनन्तु ते॥१॥

ततो दक्तिणदेशावस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः ।

मन्त्रः-भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः। भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥२॥

ततः पश्चिमदिगवस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः ।

मन्त्र:- यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे केशवो रक्ष्णोरापस्तं घ्रन्तु ते पदा ॥३॥

तत उदकदेशावस्थितकलशमादाय पूर्वोक्तेस्त्रिभिर्मन्त्रैरभिषि-श्चे त् ॥ बृहत्पराशरे**णाऽन्येऽपि मन्त्रा उक्ताः** ।

मन्त्र:- पतद्वे पावनं स्नानं सहस्रात्तमृषिसमृतम्। तेन त्वा शतधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥१॥ शकादिदशदिवपाला ब्रह्माद्या केशवाद्यः। श्चापस्तं घ्रन्तु दौर्भाग्यं शान्ति यच्छन्तु सर्वदा॥२॥

वेदमन्त्रः-ॐ सुमित्रिया नऽ श्रापऽ श्रोषधयः सन्तु ।

दुर्मित्र । स्तस्मै सन्तु योस्मान्द्रेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
मन्त्रः-समुद्रा गिरयो नद्यो म्रनयश्च पतित्रताः ।
दौर्भाग्यं चन्तु ते सर्वे शान्ति यच्छन्तु सर्वदा ॥४॥
पादग्रन्फोरुजङ्वादौ नितम्बोदरनाभिष्ठ ।
स्तनोरुबाहुहस्ताग्रग्रीवा द्यंसाधिसन्धिषु ॥४॥
नासाललाटकर्णभूकेशान्तेषु च यत्स्थितम् ।
तदापो चन्तु दौर्भाग्यं शान्ति यच्छन्तु सर्वदा ॥६॥

इत्यैतैरप्यभिषिञ्चेदिति केचित् । चतुर्थकलशाभिषेचन पवैते पठनीयाः ॥ अथाचार्यो यजमानस्य पश्चिमत तिष्ठन् सन्यपाणिगृहीत-कुशां तर्हि ते यजमानशिरसि श्रीदुम्बरेण् स्नुवेण् सार्षपतैलं जुहुयात् ।

मन्त्रा:-ॐ भिताय स्वाहा । यजमानः-इदं मिताय न मम ॥१॥
ॐ सम्मिताय स्वाहा । इदं सम्मिताय न मम ॥२॥
ॐ शालाय स्वाहा । इदं शालाय न मम ॥२॥
ॐ कटंकटाय स्वाहा । इदं कटंकटाय न मम ॥४॥
ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा । इदं कूष्माण्डाय न मम ॥४॥
ॐ राजपुत्राय स्वाहा । इदं राजपुत्राय न मम ॥६॥

श्रथाचार्योग्यर्चनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा चरुणा मिता-दिभ्य एव जुढुयाद्यजमानस्तु पूर्ववत्यजेत् ॥ श्राचार्य्यः स्विष्टकृदादिप्रणीताविमोकान्तं कर्मशेषं समापयेत् ॥ यजमा-नस्तु श्रभिषेकशालायामिन्द्रादिदशदिक्पालेभ्या नाम्ना दित्त् विदित्त् च वलीन् दद्यात् ॥ एतानि श्रग्निस्थापन-चरुहोम-दिक्पाल-विल्दानानि मितात्त्ररामनुरुध्योक्तानि ॥ ततो मिताय एप विलर्न ममेति पायसेन माषभक्तेन वा विलं दत्वा विनायकाम्विकयो-रग्नतः सद्धदबहततगुडुलानां मांसेन तिलिपिष्टेन वा मिश्रमोदनमत्स्य-मांस पन्वमपन्वं गौडी पैष्टी माध्वीति त्रिविधां सुरां च ॥ ब्राह्मणस्य मांसस्थाने सलवणं पायसं सुरास्थाने सलवणं दुग्धं चित्र पुष्पं सुगन्धिद्रस्यं मूलकं पूरिकाः श्रपूपाः उंडेरकसृजः ॥ दृश्यम्नं पायसं गुडमिश्रतगडुलादिपिष्टं मोदकांश्च पात्रे संस्थाप्य तत्पुरुषाय विद्याहेति मन्त्रेण विनायकाय ॥ सुभगाय विद्याहेति मन्त्रेण चाम्बिकायै निवेद-येत् । श्रथाचार्यो नृतनशूर्पं सर्वमुपहारशेषं संस्थाप्य चतुष्पथं गत्वा तत्र गोमयेनोपलिप्य कुशानास्तीर्यं तत्र शूर्पं प्राङ्मुंखं संस्थापयेत् ॥ यजमानस्त्वेतैर्मन्त्रैर्वंलं द्यात् ॥

मन्त्रः — विलं गृह्णन्त्वमं देवा श्रादित्या वसवस्तथा।

मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पत्रगा ग्रहाः ॥१॥

श्रासुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः।

शाकिन्यो यत्तवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः॥२॥

जुम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्याधरा नगाः।

दिक्पालाः लोकंपालाश्च ये व विद्यविनायकाः॥३॥

जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः।

मा विद्यं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥४॥

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतभेताः सुखावहाः॥इति॥

श्रनेन बिलदानेन देवादित्य-वसु-मस्दिश्व-सद्र-सुपर्ण-पन्नग-ग्रहा-सुर-यातुधान-पिशाच-मानुरग-शािकनी-यद्म-वेताल-योगिनी-पूतमा-शिवजुम्भकसिद्ध-गन्धर्ग-नाग-विद्याधर-नग-दिक्पाल-लोकपाल-विध्न-विनायक-जगच्छािन्तकर्त् ब्रह्मादिमहर्षि-भूत-प्रेतेभ्य इदं न ममेति त्यागः॥ ततः शिरसा भूमिं गत्वा पुष्पयुतमर्घे तत्पुरुषायेति मन्त्रेण विनायकाय सुभगाये इत्यम्बिकाये च दद्यात् ॥ ततो दूर्वासर्षपपु-ष्पाणां पूर्वोक्तविनायकमन्त्रेण गणानाञ्चेति वा विनायकायाञ्जलि दद्यात्॥श्रम्बिकाये पूर्वोक्तमन्त्रेण श्रम्बेऽश्रम्बिके० श्रञ्जलि द्यात्॥ ततो विनायकमम्बिकां चोपतिष्ठेत्॥

मन्त्रस्तु-रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥१॥

श्रस्मिन्मन्त्रे भगं भगवन्देहि म इत्यूद्य विनायकमुपतिष्ठेत्॥ श्रनन्तरं यजमानः प्राङ्मुखोपविष्ट उदङ्मुखानाचार्यादीन्पूजयित्वा द्विणां द्यात् । तत उत्तिष्ठ ब्रह्मण्ड्यत इत्यनेन यान्तु देवगणा इत्यनेन च विनायकमम्बिकां चोत्थाप्य विस्तृज्य प्रतिमादिसर्वां सामग्रीमाचार्याय द्यात् । ततो यथाशक्ति भूयसीं द्विणां दीना-नाथेभ्यो दत्वा यथाशक्ति विनायकप्रीत्यर्थमम्बिकाप्रीतये च ब्राह्मणा-न्भोजयित्वा सङ्कर्ण्य ॥ वा यस्य स्मृत्येत्याद्युक्त्वा न्यूनातिरिक्तं सर्वे सम्पूर्णमस्त्विति तान्सम्प्रार्थ्य तैरनुक्षातः सुद्वद्युतो भुक्षीत ॥

इति श्रीमच्छङ्करभट्टसूरिस्चुभट्टनीलकगठकते भगवन्तभास्करे शान्तिमयुखे विनायकशान्तिपद्धतिः समाप्ता ॥

ऋथ ग्रहयज्ञः ।

स्कान्दे-देवदानवगन्धर्वा यत्तरात्तसिकत्तराः ।
पोड्यन्ते ग्रहपीडाभिः किं पुनर्भवि मानवाः ॥१॥
शनैश्वरेण सौदासो नरमांसे नियोजितः ।
राहुणा पीडितो राजा नलो भ्रान्तो महीतले ॥२॥
श्रद्धारकविरोधेन रामो राष्ट्रान्निवासितः ।
श्रष्टमेन शशाङ्केन हिरण्यकशिपुर्हतः ॥३॥
रविणा सप्तमस्थेन रावणो विनिपातितः ।
गुरुणा जन्मसंस्थेन हतो राजा सुयोधनः ॥४॥
पाण्डवा बुधपीडायां विकर्मणि नियोजिताः ।
पष्टेनोशनसा युद्धे हिरण्यात्तो निपातितः ॥४॥
एते चान्ये च वहवो ग्रहदोषैस्तु पोडिताः ।

याज्ञवल्क्यः-ग्रहाधीना नरेन्द्राणाग्रुच्छायाः पततानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥१॥

प्रयोगपारिजाते उत्पत्तपरिमले--

कार्यारम्भेषु सर्वेषु प्रतिष्ठास्वध्वरेषु च । नव-वेश्मपवेशे च गर्भाधानादिकममु ॥१॥ द्यारोग्यस्नानसमये संक्रान्तौ रोगसम्भवे । द्यभिचारे च यः कुर्याइग्रहपूजां विधानतः ॥२॥ सोऽभीष्टफलमामोति निर्विद्यन न संशयः । श्रोकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥३॥ वृद्ध्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरत्रपि ॥इति॥

मात्स्ये—ग्रहयज्ञास्त्रिधा प्रोक्ताः पुराणश्रुतिकोविदैः।
प्रथमोऽयुतहोमश्र लक्तहोमस्ततः परम् ॥१॥
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः।
ग्रहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कार्यद्वधः॥२॥
स्द्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदक्सवम् ।
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः॥३॥
तस्य द्वाराणि चत्वारि कर्त्तव्यानि थिचक्तणैः॥इति॥

स्कान्दे-नवग्रहमखे कुएडं हस्तमात्रं समं भवेत् । चतुरस्रमधो हस्तं योनिवक्त्रं समे खलम् ॥१॥

योनिरेव वक्त्रं यस्य तत् । पुत्रादिकामनया तु योन्याद्याकारा श्रिपि भवन्ति । चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छिता । श्रत्र विशेषोपदेशादेकैव मेखला ।

मात्स्ये-वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता । कूर्मपृष्ठोत्नता मध्ये पार्श्वयोश्चांगुलोच्छिता ॥ गजोष्ठसदृशी तद्वदायता च्छिद्रसंयुता । मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसन्निभा ॥२॥

एकं कुण्डं च मण्डपेशानभागे उदीच्या वेति हेमाद्रिः । अयु-तादि होमं प्रकृत्य वशिष्ठस्तु--

> कुग्रडं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम् । कुग्रडस्येशानभागे तु पूजावेदिं प्रकल्पयेदित्याह ॥१॥

श्रत्र चतुरस्रमित्यनेन च्चियादिपुरस्कारेण विहितानामाकार-विशेषाणां स्त्रीपुरस्कारेण विहितस्य योन्याकारस्य निवृत्तियोंनी पुत्राः शुभंदिलेय्द्वाभ इत्याद्याः काम्यास्त्वाकारा भवन्त्येव ॥वेद्यां विशेषमाह−

गोभिलः-कुण्डस्य पागुदीच्यां वा प्राच्याग्रुत्तरतोऽपि वा । चतुरस्नं चतुर्द्वारं कर्त्तव्यं ग्रहपीठकम् ॥१॥ श्रीकामः पूर्वतः कुर्यात्पुष्टचर्यं दक्तिणेन तु । पश्चाद्दिजन्मसिद्धचर्यं शान्त्यर्थं चोत्तरेण तु ॥२॥ ऐशान्यां सर्वकामाय लाग्नेय्यां त्वभिचारके । नैऋत्यां पुत्रलाभाय पुष्टचर्यं वायवेन त्विति ॥३॥

प्रहवेदी तु स्थ**िडलपद्मेऽपि कार्या** ।

वशिष्टः-लिखेदष्टदलं पद्यं वेदिकोपरि तराडुलैः।

श्रत्रैकाग्निव्रह्माचार्यपत्तमुक्त्वा तेषां नवसंख्या कुएडेषु तत्तदु-

ग्रह।कारांश्चाह—

प्रयोगपारिजाते भगवान्-

मनोरमे शुचौ देशे होमशालामलङ्कृताम् । कृत्वा तु संद्रतांश्माक्षो ग्रहस्थानं प्रकल्पयेत्॥१॥ तन्मध्ये भास्करस्थानं भवेत्पूर्वोत्तारे बुधः । पूर्वस्मिन्भागवस्थानं सोमो दक्तिणपूर्वके ॥२॥ दक्षिणस्यां कुजस्थानं राहोर्दक्तिणपश्चिमे । शनेस्तु पश्चिमस्थानं केतोरुत्तरपश्चिमे ॥३॥ उत्तरस्यां गुरोः स्थानमेवं च स्थिण्डलुं भवेत् ।

स्थण्डिलमग्न्यर्थम्।

भास्करस्य च दृत्तं स्याचन्द्रस्य चतुरस्रकम् । कुजस्य तु त्रिकोणं स्याद्वाणाकारं बुधस्य तु ॥१॥ गुरोदीर्घचतुष्कोणं पश्चकोणं सितस्य तु । चापाकारं शने राहोः सूर्वकेतोध्वेजाकृतिम् । २॥ नवधा विभजेदिंग श्रौतकर्मविधानतः । ऋत्विजश्च यथायोगं कुण्डेषु श्राह्मणाः पृथक्॥ २॥ श्रथ सुवेण जुहुयात्सूर्य्यपावकदारुकान् । ऋत्विजो जुहुयुः सर्वे सुवेणेवं पृथक् पृथक्॥ ४॥ श्रष्टो तु शकलान् गृह्य समारोपणमित्रपु । प्रधानासौ निधायेमानित्यं होमं समाचरेदिति ॥ ४॥

श्रत्रैव च स्थिएडलं भवेदित्यनेन स्थिएडलानां कुएडानां च स स श्राकारस्तत्तदिश्च निवेशश्चोक्तः । ब्राह्मलाः पृथिगित्यनेन नवा-ऽऽचार्या ब्राह्मलाश्च नवेत्युक्तं । श्रत्रार्थसंचेपः प्रयोगपारिजाते । मध्यकुएडे स्मार्त्ताग्नं प्रणीय ततो नवाचार्या श्रष्टसु कुएडेर्ज्वाग्नं प्रणीयाऽऽज्यभागान्तेऽर्कादिसमिद्धिर्गुडोदनादिद्दविर्मराज्येन च श्रद्दादिमन्त्रैर्द्धत्वा व्यस्तसमस्तव्याद्दतिभिश्च तिलान् हुत्वा स्विष्ट-कृदादिद्दोमशेषं कृत्वा पूर्णांहुतीर्जुद्दयुरिति॥

कुएडमुक्त्वा स्कान्दे—

तस्य चोत्तरपूर्वेण स्थिष्डिलं इस्तमात्रकम् । त्रिवमं चतुरस्रं च वितस्तयुच्छायसम्मितम् ॥१॥

स्थि॰डलं वेदिः। वप्रो मेखला।

मात्स्ये-द्विरङ्कुलोच्छितो वमः मथमः समुदाहृतः । त्र्यङ्कुलोच्छायसंयुक्तं वमद्वयमथोपरि ॥१॥ द्वचङ्कुलस्तत्र विस्तारः¦सर्वेषां कथितो बुधैः ।

तत्र ग्रहानाऽऽह याज्ञवल्क्यः-

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्वरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः॥१॥ स्कान्दे-नवग्रहमखे कुर्यादृत्विजश्चतुरः शुभान्। श्रथवा चैकमभ्यर्च्य विधिना ब्रह्मणा सह ॥१॥

त्रिविषमपि नवग्रहमुपक्रम्य वसिष्ठस्तु-

षोडश ब्राह्मणान् शुद्धान् दम्भानृतविवर्जितान् । तेषां मध्ये श्रेष्ठतममाचार्यं तं पकल्पयेदिति ॥१॥

श्रत्र पारिजाते नवाचार्या एको ब्रह्मा पहृत्विजः । श्राचार्येभ्यो नवभ्यश्च ग्रहार्चनफलं तत इत्युक्तेः । श्राचार्यः कर्म एव कुर्यात् ॥ परे त्वारम्भमात्रम् । धेन्वाद्या ग्रहदिश्चणा श्रिप तेभ्य एव देया इत्याद्युक्तम् , तद्युक्तम् । उपक्रमे एकाचार्यस्य संस्कार्यं त्वेनैकत्वमिवविज्ञातम् । तथाप्याचार्यस्य भृतभाव्युपयोगाभावात्संस्कार्यत्वानुपपत्तेवृत श्राचार्यः स्वकर्म कुर्यादिति कल्पिते वाक्ये उपादेयत्वादाः चार्यस्य भवत्येकत्वं विविद्यत्वाम् । उपपादितं चेदमध्वर्युं वृणीते होतारं वृणीते पुरोहितं वृणीत इत्यत्र मिश्रैः ।

जन्मभूर्गोत्रमग्निश्च वर्णस्थानमुखानि च । योऽज्ञात्वा कुरुतेशान्ति ग्रहास्तेनाऽवमानिताः॥१॥

तत्र वर्णजन्मनि आह दामोदरीये द्वद्वपराशरः---

रक्तः कश्यपनो भानुः शुक्रो ब्रह्मसुतः शशी।
रक्तो रुद्रसतो भौमः पीतः सोमस्तो बुधः॥१॥
पीतो ब्राह्मसुराचार्यः शुक्रः शुक्रो भृगृद्दः।
कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतेः॥२॥
कृष्णः केतुः कृशनृत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी॥

स्कान्दे-उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यम्रुनायां च चन्द्रमाः। श्रङ्गारकस्त्ववन्त्यायां मगधायां हिमांशुजः॥१॥ सैन्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा। शनैश्ररस्तु सौराष्ट्रे राहुर्वैराठिनापुरे॥२॥ श्रन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः। यस्य यस्य च यद्गोत्रं तत्ते वक्ष्याम्यतः परम्॥ श्रादित्यः करयपे गोत्रे श्रात्रे यश्चन्द्रमा भवेत् ।
भरद्वाजोद्भवो भौमस्तथाऽऽत्रेयश्च सोमजः ॥४॥
शक्तपूज्योऽङ्गिरो गोत्राः शुक्रो वै भागवस्तथा ।
श्रानिः काश्यप प्वाठ्य राहुः पैठीनसिस्तथा ॥४॥
केतवो जैमिनेयाश्च ग्रहाग्निस्तदनन्तरम् ।
श्रादित्यः किपलो नाम पिङ्गलः सोम उच्यते ।
धूमकेतुस्तथा भौमो जाठराग्निबुधः स्मृतः ॥
ग्ररोश्चैव शिखानाम शुक्रो भवति हाटकः ।
शनैश्चारो महातेजा राहुकेत्वोहुताशनः ।

पतानि ब्रह्विशेषतोऽग्निनामानि । कर्मविशेषतोऽपि देवीपुरासे-

ग्रुभो ग्रहविधौ ह्यग्निर्लन्नहोमे पराजितः । कोटिह।मे शिवो विद्वः सर्वकामपदायकः॥१॥

किचित्तु-लित्तहोमे तु विद्धः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ।
स्कान्दे-भास्कराङ्गारको रक्तौ श्वेतौ शुक्र-निशाकरौ ।
सोमपुत्रो गुरुश्चीव ताबुभौ पीतको स्मृतौ ॥
कृष्णं शनैश्चारं विन्द्याद्राहुं चित्राश्चा केतवः ।
मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदित्तिणे ॥२॥
दित्तिणे लोहितं विन्द्याद्रबुधं पूर्वोत्तरेण तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्याद्रबुधं पूर्वोत्तरेण तु ।
पश्चिमेन शनि विन्द्याद्राहुं पश्चिमदित्तिणे ।
पश्चिमेत्तरतः केतुः स्थाप्यो वै शुक्कतण्डुलैः ॥४॥
श्रथवा वर्णकैः कार्याः कार्याः स्वर्णादिधातुभिः ।

याज्ञवन्वयः-ताम्रकात्स्फटिकाद्गक्तचान्दनात्स्वर्णजादुभौ ॥ रजतादयसः सीसात्कांस्यात्कार्या ग्रहास्तथा । वशिष्ठः-यथारुचिप्रमाणेन प्रतिमाः कल्पयेत्सुधीः ॥ श्रत्र सर्वत्र ब्रहाणां सूर्यादिः स्पष्टः । वौधायनस्तु सूर्याङ्गारक-श्रक्त-चन्द्र-बुध-ग्रुरु-शनय इत्याह —

स्कान्दे-भानुं तु मण्डलाकारं सेामं तु चातुरस्रकम् । श्रङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं बाणाकृतिं तथा ॥१॥ दीर्घचतुरस्रं गुरुं पश्चास्रं भागवं तथा । धनुस्तुल्यं शनिं विन्द्याद्राहुं सूर्पाकृति तथा ॥२॥ ध्वजाकाराः केतवश्च गणेशं तत्र रूपिणम् ।

रूपिणं हस्तपादाद्यवयवयुक्तम्। स्थापयेच्छुल्कतण्डुलैर्वर्णकैलेंख्या इत्येतत्पत्तयोर्मण्डलाद्याकारतेति हेमाद्रिः।

तत्रीव-शुक्राकी प्राङ्मुखी इयी गुरु-सीम्यावृदङ्मुखी। प्रत्यङ्मुखी शनि-सोमी शेषा दत्तिणतो मुखाः ॥१॥

इदं च शुकादीनां प्राङ्मुखत्वादि श्रादित्याभिमुखाः सर्व इति मारस्योक्तादित्याभिमुखत्वेन विकल्पते । यत्तु हेमाद्रिर्विकल्पपरि-जिहीर्षया प्राङ्मुखावूर्ध्वदेषी उदङ्मुखी वामदृष्टी पत्यङ्मुखोऽघो-दृष्टिदैन्तिणतो मुखाः दिन्तिणदृष्य इति व्याचष्ट तत्र मूलं चिन्त्यम् । विराधतादवस्यं च । वर्णक्षपगुणैर्युकान् व्याहृत्यावाहयेन्तु तान् ।

मात्स्ये-पुर्ण्येहि विप्रकथिते कृला ब्राह्मणवाचनम् । श्रिप्रण्यनं कृत्वा वेद्यामावाहयेत्सुरान् ॥१॥ देवानां तत्र संस्थाप्या विश्वतिद्वीदशाधिका । श्रादित्याभिसुखाः सर्वे साधिप्रत्यिषदेवताः ॥२॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

द्यतः पूरं प्रवक्ष्यामि यो देवो यो ग्रहः स्मृतः । द्यप्रिरकः स्मृतः सोमो वरुणः परिकीर्त्तितः ॥१॥ द्यक्षारकः कुमारश्च बुधश्च भगवान् हरिः । बृहस्पतिः स्मृतः शकः शुक्रो देवी च पार्वती ॥२॥ प्रजापतिः शनिश्चैव राहुर्ज्ञेयो हुँगणाधिपः ।
विश्वकर्षा स्मृतः केतुर्ये ग्रहास्ते मुराः स्मृताः ॥३॥
श्रत प्रवाग्यादिलिङ्गका मन्त्राः सूर्यादिस्थापने उक्ताः ।
स्कान्दे-श्राप्तं दृतं दिनेशाय चान्द्रायाप्स्त्रन्त इत्यपि ।
स्योना पृथिवि भौमाय इदं विष्णुर्वधाय चा ॥१॥
इन्द्र श्रासमं मुरेज्याय शुक्रज्योतिः सिताय चा ।
प्रजापतेति सौराय श्रायं गौरिति राहवे ॥२॥
केतवे ब्रह्मयज्ञानं स्वैस्वैर्मन्त्रैः प्रतिष्ठिताः ।

पतेषां च मन्त्राणां व्याहृत्याऽऽवाहयेतु तानित्युक्तवाभिन्याहः-तिभिरावाहने विकल्पः ॥ मदनस्त्वावाहन-स्थापनयोर्भेदादु व्याहः-तिभिरावाहनम् । पतैर्मन्त्रैः स्थापनिमत्युचे पारिजाते वामनस्तु-

प्रशावं त्वादितः कृत्वा भूर्भुवः स्वस्ततः परम् । चातुथ्यो नामसंयुक्तं नमस्कारन्तये।जितम् ॥१॥ एष मन्त्रः समाख्याता ग्रहपूजाविधायकः । श्रनेनाऽऽवाहनं कुर्यादनेनैव विसर्जनमित्यूचे ॥२॥

श्रवाबाहनवाक्येषु विशेषमाह बौधायनः । किरीटिनं पद्मासनं पद्मकरं पद्मगर्भसमद्युति सप्ताश्वं सप्तखड्गं कलिङ्गदेशजं काश्यप-गोत्रं विश्वामित्रार्षं त्रिष्टुप्छन्दसं रक्ताम्बरधरं रक्तामरणभूषितं रक्त-गन्धानुलेपनं रक्तछत्रध्वजपतािकनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुद्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्तिणीकुर्वाणं प्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताग्निसहितं प्रत्यधिदेवतेश्वरसहितं रक्तवृत्तमण्डले पूर्वमुखमादित्यमावाहयामि॥१॥

किरीटिनं श्वेताम्बरधरं दशाश्वं श्वेताभूवणं पाशपाणि द्विवाहुं वनायुदेशजमित्रगोत्रमात्रेयार्षगनुष्टुण्छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभित-मारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं प्रहमण्डले प्रविष्टमधि-देवताऽपसहितं प्रत्यधिदेवतोमासहितं चतुरस्रमण्डले प्रत्यङ्मुखं सोममाबाह्यामि ॥२॥ किरीटिनं रक्तमाल्यं रक्तग्रलगदाधरं चतुर्भु जं मेषगमनमवन्ति-देशजं वाशिष्ठगोत्रजं जमदम्यार्षं जगती छन्दसं रक्ताम्बरधरं रका-भरणभूषितं रक्तगन्धा जलेपनं रक्तछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरम-णिशोभितमाल्हा रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्तिणीकुर्वाणं ब्रह्मएडले प्रविष्ट-मधिदेवताभूमिसहितं प्रत्यधिदेवतास्कन्दसहितं विकोणरक्त-मण्डले दित्तण्मुखमङ्गारकमाबाह्यामि ॥३॥

किरीटिनं पीतमाल्यं पीतवर्णं कर्णिकारसमद्युति खङ्गचर्मगदापा-णि सिंहस्थं वरदं मगधदेशजमित्रगोत्रजं भारद्वाजार्षं बृहतीछन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतछत्रध्वजपता-किनं मुकुटकेयूरमणिभूषितमारुद्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्तिणीकुर्वाणं प्रहमएडले प्रविष्टमधिदेवताविष्णुसहितं प्रत्यधिदेवताविष्णुसहितं पीतवर्णमण्डले उदङ्मुखं बुधमाव।ह्यामि ॥४॥

किरीटिनं पीतवर्णं चतुर्भुं दिख्डिवरदं साम्रस्त्रकमएडलुं सिन्धुदेशजमाङ्गिरसगोत्रं वासिष्ठार्षमनुष्टुष्ट्वन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतछत्रध्वजपताकिनं मुकुट-केयूरमणिभूषितमारुद्य रथं दिव्यं मेरुं पदित्तणीकुर्वाणं ब्रह्मएडले प्रविष्टं श्रधिदेवतेन्द्रसहितं प्रत्यधिदेवताब्रह्मसहितं पीतदीर्घ-चतुरस्त्रमण्डले उदङ्मुखं गुरुमावाहयामि ॥४॥

किरीटिनं श्वेतवर्णं चतुर्भु जं दिएडनं वरदं काव्यं साद्मस्त्र-कमण्डलुं कीकटदेशजं भागवगोत्रजं शौनकार्षं पंक्ति छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेताभरणभूषितं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेत-छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं प्रहमएडले प्रविष्टमधिदेवतेन्द्राणीसहितं प्रत्यधिदेवे-न्द्रसहितं शुक्कपञ्चकोणमण्डले प्राङ्मुखं भगवन्तं शुक्रमावाह-यामि ॥ ६॥

किरीटिनिमन्द्रनीलसमयुति शलघरं वरदं गृधवाहनं सवाण-शरघरं सौराष्ट्रदेशजं काश्यपगोत्रजं भृग्वार्षं गायत्रीछन्दसं कृष्णा-म्बरघरं कृष्णाभरणभूषितं कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णछत्रभ्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुद्य रथं दिव्यं मेरं प्रदिच्णिकुर्वाणं ब्रह्मण्डले प्रविष्टमधिदेवताप्रजापतिसहितं प्रत्यधिदेवतायमसहितं कृष्णधनुर्भगडले प्रत्यङ्मुखं शनैश्चरमावाहयामि ॥७॥

किरीटिनं करालवदनं खड़चर्मश्र्लघरं सिंहासनस्यं पूर्वदेशजं पाटिलगोत्रमाङ्गिरसार्थमनुष्टु॰छन्दसं कृष्णाम्बरघरं कृष्णामरणभूषितं कृष्णागन्धानुलेपनं कृष्णछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोमित-मारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणोक्ठवांणं प्रहमगडले प्रविष्टमधिदेवता-सर्पसहितं प्रत्यधिदेवताकालसहितं कृष्णग्रुपमण्डले दिन्णामुखं राहुमावाह्यामि ॥=॥

धूमान् द्विबाहुन् पाश्यरान् विकृताननान् गृश्रवाहनान् किरीटिनो मध्यदेशजान् जैमिनिगोत्रजान् गौतमार्षान् नानाञ्चन्दश्चित्राम्बरधरां-श्चित्राभरणभूषितांश्चित्रगन्धानुलेपनान् कृष्णपिङ्गलध्वजपताकिनो मुकुटकेयूरमणिशोभितानारश्च रथं दिन्यं मेरुं प्रदित्त्त्णिकुर्वाणान् ग्रहमण्डले प्रविष्टानिधदेवतात्रह्मसहितान् प्रत्यधिदेवताचित्रगुप्तस-हितान् कृष्णपिङ्गलध्वजमण्डले दित्त्णामुखान् केत्नावाह्यामि ॥६॥

स्कान्दे-ईश्वरं भास्करे विन्द्यादुमां विद्यानिशाकरे ।
स्कन्दमङ्गारके विन्द्याद्भुधे नारायणं विदुः ॥१॥
गुरौ वेदनिधि विन्द्यात् शुक्रे शक्रो विधीयते ।
शनैश्चरे यमं विन्द्यादाहौ कालस्तथैव च ॥२॥
वित्रगुप्तोधियः केतोरित्येता ग्रहदेवताः ।
वेदनिधिर्वस्याः ।

तत्रैव —वक्ष्ये स्थानानि देवानामीश्वरादि यथाक्रमम् ।
सूर्यस्य चोत्तरे शम्भ्रमुमां सोमस्य दक्षिणे ॥१॥
स्कन्दमङ्गारकस्यैव दक्षिणस्यां निवेश्येत् ।
सौम्यात्पश्चिमतो विष्णुं ब्रह्मा जीवस्य पूर्वतः ॥२॥
इन्द्रमैन्द्रचां सितादिष्डि मन्दादाग्नेयतो यमम् ।
राहोः पूर्वोत्तरे कालं सर्वभूतभयावहम् ॥३॥
केतोनैंत्रस्तदिग्भागे चित्रग्रमं निधापयेत् ।

स्थापनमन्त्रांश्च कथयाम्यनुपूर्वेशः । स्कान्दे-श्रतः ईश्वरं **च्यम्बकरचेति श्रीश्र ते चेति पार्वतीम्** ॥१॥ यदक्रन्देति च स्कन्दं विष्णुं विष्णो रराडिति । त्रा ब्रह्मिति ब्रह्माएां सजोपेन्द्रेति वासवस्॥२॥ यमाय त्वेति च यमं कालं कार्षिरसीति च। चित्रावस्विति मन्त्रेण चित्रग्रप्तं निधापयेत् ॥३॥ श्रिप्ररापः चितिर्विष्णुरिन्द्रश्चैन्द्री प्रजापतिः । सर्पो ब्रह्मा च निर्दिष्टा श्रिधिदेवा यथाक्रमम् ॥४॥ अग्निन्द्तमिति त्वग्नेर्वरुणस्य **उदुत्तमम्**। स्योना पृथिवि मेदिन्या इदं विष्णुस्तु विष्णवे॥४॥ इन्द्र ऽत्र्यासात्रेतेतीन्द्रादित्यै रास्ता शचीस्थितौ । प्रजापते प्रजेशस्य एप ब्रह्मोति वै विधेः॥६॥ मन्त्रो नमोऽस्तु सर्पेभ्यः सर्पाणां स्थापने मतः। ग्रहदेवाधिदेवानां नैवेद्यं कुसुमानि च ॥ ७ ॥ ग्रहवच्चासनं दानं स्थापनं चानुपूर्वशः।

सूर्यादयो ब्रहा ईश्वरादयो देवाः अग्न्यादयोऽधिदेवाः। तत्रेश्वरा॰ दिदेवानां सूर्यस्यैवोत्तरे शम्भुमित्यादिना पूर्व स्थलान्युक्तानि। अग्न्यादयोऽधिदेवास्तु ब्रह्देवयोर्मध्ये स्थाप्याः। तथा च मदनरत्ने गोभिल-वशिष्ठौ-

ग्रहदेवतयोर्मध्ये अधिदेवान्निधापयेत् । तत्रौव संग्रहे तु-ईश्वरादयो देवा अधिदेवतात्वेन व्यवहृता॥

श्रान्यादयस्तु प्रत्यधिदेवतात्वेन । तेषां स्थानान्तरं चोकम्-

श्रिधिदेवा दत्त्विरणतो वामे प्रत्यधिदेवताः । स्थापनीयाः प्रयत्नेन व्याहृतिभिः पृथक् पृथक् ॥१॥ तत्रैव वासिष्टीये तु देवतानां स्थानान्तरं चोक्तम्-

रुदं त्र्यम्बकमन्त्रेण रवेरुत्तरतो न्यसेत्।
सोमस्याप्त्रे यदिग्भागे श्रीश्च ते येनकात्मजाम् ॥१॥
यदक्रन्देति भौमस्य स्कन्दं याम्ये पदापयेत्।
विष्णुं विष्णो रराटेति यजेत्पूर्वे बुधस्य च ॥२॥
ग्ररोरुत्तरतोऽभ्यच्यों ब्रह्मा ब्रह्मोतिमन्त्रतः।
सजोषेन्द्रेति शुक्रस्य प्राच्यां शक्नं निधापयेत् ॥३॥
शनेः पश्चिमतः स्थाप्यो यमाय त्वेत्यृचा यमः।
कार्षिरसीति मन्त्रेण राहो कालं तथोत्तरे ॥४॥
चित्रग्रुप्तं तु केत्नां चित्रायस्वेति नैत्र्यते।
ग्रहाश्च देवताः ख्याताः शृखुष्वातोऽधिदेवताः॥
ग्रिनरापो यरा विष्णुरिन्द्रेन्द्राणी प्रजापतिः।
सपीं ब्रह्मा च निर्दिष्टा ग्रिधदेवा यथाक्रमम् ॥६॥
ग्रहदेवतयोर्मध्ये ग्रिधदेवानिनवेशयेत्।

एतानि च वाशिष्टीयवचांसि कैश्चित्राद्वियन्ते-

पारिजाते-पद्म पाग्दलमारभ्य दलाग्रेषु क्रमान्न्यसेत् । इन्द्रादि लोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥१॥ विनायकं तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च । श्रावाहयेद्रव्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥२॥

एतेऽत्र विनायकाद्याः पश्चम्रहेभ्य उत्तरतः स्थाप्या इति साम्प्र-दायिकाः। दक्तिगपश्चिम-वायव्योत्तर-पूर्वेषु यथाकममित्यन्ये।

> राहुमन्दिवनेशानामुत्तरस्यां यथाक्रमम् । गरोशो दुर्गा वायुश्च राहुकेत्वोश्च दित्तरो ॥१॥ स्राकाशमरिवनौ चेति पश्चैतानस्थापयेद्रबुधः ।

इति संग्रहबचनानुसारेऐति पितामहचरणा रूपनारायणश्च-

स्कान्दे-उत्तरे शनिसूर्याभ्यां ग्ररुकेत्वोश्च दक्तिणे । गणाधिपं प्रतिष्ठाप्य सर्वदेवनमस्कृतम् ॥१॥

रिव-शनि-केतु-गुरूणां मध्य इति फलितोऽर्थः । विनायकपद-मुपलच्चणम् । तेन दुर्गादयोऽप्यत्रैव स्थाप्या इति केचित् । चन्दनादि नियमस्तत्रीव ।

दिवाकर-कुजाभ्यां हि दापयेद्रक्तचन्दनम्।
चन्द्रे च भागवे चैव सितवर्णं भदापयेत्॥४॥
कुङ्कुमेन तु संयुक्तं चन्दनं जीव-सौम्ययोः।
श्रमुकं चन्दनं दद्याद्राहुकेत्वर्कजेषु च ॥२॥
प्रहवर्णानि पुष्पाणि गायत्र्या धूपमादहेत्।
स्वेः कुन्दुक्कं धूपं शशिनस्तु घृताच्नताः॥३॥
भौमे सर्ज्जरसं चैव श्रमुकं च बुधे समृतम्।
सिह्नकं ग्रस्वे दद्याच्छुके विन्वागुकं तथा॥४॥
गुग्गुलं मन्दवारे तु लाचा राहोश्च केतवे।

कुन्दुरुकः = सल्लकीनिर्यासः । सिह्नकं = सिह्ना इति मध्यदेशे मसिद्धम् । विल्वागुरुं = विल्वफलनिर्याससहितमगुरुं । मन्दवारः = शनिः । श्रद्भिज्योतीति मन्त्रेण दीपं दद्यादतन्द्रितः । विहितधूपदीपगन्धादीनामसम्भवे तु—

याइवन्वयः-यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च । गन्धाश्च वत्तयश्चेव धूपो देयश्च गुग्गुलः ॥१॥

स्कान्दे-गुडोदनं रवेर्द्घात्सोमाय धृतपायसम्। लोहिताय हविष्यान्नं बुधाय चीरपाष्टिकम् ॥१॥ दध्योदनं गुरोद्घाच्छुकाय च घृतोदनम् । मिश्रितं तिलमापेश्च नैवेद्यं तु शनैश्चरे ॥२॥

राहोर्माषोदनं दद्यात्केतोश्चित्रोदनं तथा ।

चित्रोदनम्-तिलतगडुलिमश्रं स्यादजाचीरं च शोणितम् । कर्णनासागृहीतं स्यादेतिचित्रोदनं स्मृतम् । इति दामोदरः

एतैरेब द्रव्यैर्बाह्मणा भोज्याः । तथा च याञ्चवल्क्यः-

गुडोदनं पायसं चा हविष्यं कीरपाष्टिकम् । दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव चा ॥१॥ दद्याद्ग्रहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजनं बुधः । शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥२॥

विशिष्ठः-उपचाराणि सर्वेषामपि शुक्लाचतैः सदा । गन्धाभावे शुक्लगन्धं पुष्पाभावे सुगन्धकम् ॥२॥ धूपाभावे गुग्गुलः स्याद्द्रव्याभावे तु मिश्रकम् । पश्चामृतं गवामेव मिश्रकं न कदाचानेति ॥३॥

मात्स्ये-प्रागुत्तरेण तस्माच द्य्यत्ततिभूषितम् ।
चृतपञ्चवसंयुक्तं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥१॥
पश्चरत्नसमायुक्तं पश्चभङ्गयुतं तथा ।
स्थापयेदत्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥२॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
गजाश्वर्थ्यावन्मोकसङ्गमाद्भदगोकुलात् ॥३॥
मृद्गानीय विभेन्द्र ! सर्वौषधिसमन्विताम् ।
स्नानार्थं विन्यसेत्ता यजमानस्य धर्मवित् ॥४॥

याज्ञवन्ययः-ग्राक्कीः पत्नासः खदिर श्रापामार्गोऽथ पिप्पताः । उदुम्बरः शमी दूर्वी कुशाश्र समिधः क्रमात् ॥१॥ ईश्वरादिदेवानां स्व-स्व-ग्रहसमिद्धिरेव होमः ।

हेमाद्रौ देवीपुराखे —

गर्णाधिपतये देया मथमा तु वर्।हुतिः। अन्यथा विफलं विष! भवतीह न संशय इति।।

श्राश्वलायनः—

जुहुयात्सिमद्त्राज्येनाभित्रर्रिभर्यथाक्रममिति । समित्सु विशेषमाह याज्ञवन्वयः—

होतन्या मधुसपिंभ्यां दश्ला चीरेण वा युता।

इति चात्र सम्प्रति यन्न देवताकानेकद्रव्याणामेकैवाहुतिः सान्ना-ज्यवत्तदिति वाच्यम् ।

त्रादौ तु समिदनाज्यैः पृथगष्टोत्तरं शतमिति वाशिष्टात् ।

श्चन्यत्रापि सम्प्रतिपन्नदेवताके स्मार्ते कर्मण्यनेकद्रव्यके पृथगेव होम इति साम्प्रदायिकाः । बहुषु कर्मसु प्रायो वचनान्यप्येवम् ।

स्कान्दे—ग्राकृष्णेन सहस्रांसोरिमं देवा तथेन्दवे। ग्रिप्तम् र्द्धेति भौमाय उद्दुष्यस्व बुधाय च ॥१॥ बृहस्पतेति चा ग्रुरोः शुक्रायाऽन्नात्परिश्रुतः। श्रनैश्ररस्य मन्त्रोऽयं शन्नोदेवीरुदाहृतः॥२॥ कयान इति राहोश्र केतुं कृणवंस्तु केतवे।

मात्स्ये-श्रावोराजेति रुद्रस्य वर्लि होमं समाचरेत् ॥३॥ श्रापो हिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा । विष्णोरिदं विष्णुरिति त्विमत्सेति स्वयम्भुवः॥४॥ इन्द्रमिद्देवतातय इतोन्द्रस्य प्रकोर्तितः । तथा यमस्य चायक्रौरिति होमः प्रकीर्तितः ॥४॥ कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते । चित्रग्रुप्तस्य चाज्ञातमिति पौराणिका विदुः ॥६॥ श्राग्न द्वं वृश्यीमह इति विष्णोरुदाहृतः।
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शकस्य शस्यते।।।।।
उत्तानपर्शिग्धभगे इति शच्याः समाचारेत्।
प्रजापतेः पुनर्होमं प्रजापत इति समृतः।।।।।
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाशां मन्त्रा उच्यते।
पूषं ब्रह्माय ऋत्विज इति ब्रह्मस्युदाहृत।।।।।।
विनायकस्य चात्न इति मन्त्रो बुधैः समृतः।
जातवेदसे ग्रुनवाम दुर्गामन्त्रोऽत्र उच्यते।।१०॥
पूर्णाहृतिं च मूर्द्धानं दिव इत्यभिमातयेत्।
स्कान्दे—नैवेद्यशेषं हुत्वा च होममन्त्रादनन्तरम्।
श्रथ व्याहृतिभिर्ज्ञत्वा एकैकस्य यथाक्रमम्।।१॥
श्रशेत्तरं च साहसं शतमष्टादिकं तथा।

अष्टाविंशतिरष्टौ वा एकैकस्य तु होमयेत्।।२॥

होतन्यं च घृतं तत्र चरुलक्षादिकं पुनः । मन्त्रदेशाहुतीहु त्वा होमो न्याहुतिभिः स्मृतः॥३॥

श्रथेति श्रथवेत्यर्थः । गृहीत्वा तामथाम्विकामितिवत् । मद्नस्त्वथवेत्येव पपाठ तत्तन्मन्त्राणां व्याहृतीनां च परस्परं विकल्पः । श्रथाऽष्टोत्तरसहस्रादिसंख्यादि तु पत्तृद्रयेऽपि नैवेद्यशेषहोमस्तु शाखाविशेषपर इत्यपि स एव लत्तादिकः पुनव्याहृतिभिहाँमो मन्त्रैदृशाहुती हुत्वा स्मृत इत्यन्वयः । मन्त्रैर्ग्रहमन्त्रैः । व्याहृतिभिद्यंस्ताभिः समस्ताभिश्च । तातचरणास्तु । श्रथ व्याहृतिभिद्धंति
पृथ्यवाक्यं पत्तैकस्येति तु प्रतिदैवतमष्टादिसंख्यान्वयार्थम् । एककस्य
तु होमयेदित्वेककपदं तु चर्वादिद्रव्यपरम्, न देवतापरं । श्रास्मन्तेव
होमे घृतचरुद्वव्यविधिरग्रे लत्तादिक इत्येतत्तु । श्रथ व्याहृतिविहिते होमे लत्तादि संख्याविध्यर्थं । मन्त्रैरित्यादि तु चरुहोमोत्तरं
सोमं राजानमिति मन्त्रेण यथाप्रकृतिस्विष्टकृद्वधुत्वा सूर्यादिमन्त्रैईश्वद्शाहुतीः प्रतिदैवतं लत्त्हहोमादिद्वव्येण हुत्वा व्याहृतिभिर्लन्नादि

होमः कार्य इत्याहः। यवाद्यन्यतमद्रव्येण ब्रहादिभिः प्रत्येकं दशाहुती-स्तत्तन्मन्त्रेर्द्धत्वा तेनैव द्रव्येण व्यस्तसमस्तव्याद्वतिभिरयुतलक्त-कोटबन्यतमसंख्यया जुहुयादिति हेमाद्रिमदनौ। तानि च द्रव्याणि देवीपुराणे--यवबीहि-घृत-क्तीर्-तिल-कंग्र-प्रसारिकाः ।

-यवत्राहि-वृत-कार्गतल-कर्णनसारकाः । पङ्कजोशीर-विन्त्रार्क-दला होमे मकी र्त्तिताः ॥१॥ उद्ब्रुखाः पाङ्गुखा वा कुर्युब्रीझरापुङ्गवाः । मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरवः प्रतिदेवतम् ॥२॥ हुत्वा च तांश्ररून् सम्यक् कृती होमं समारभेत् ।

चर्वादिकं च घृताद्यक्तं होतय्यम्—

होतव्यं च घृताद्यक्तं चरु भक्ष्यादिकं पुनः । इति—मात्स्यात् भक्यं द्राक्तादि । चरुनैवेद्यशिष्टो गुडोदनादिः । तानि द्रव्याण्यु-क्त्वा इत्येतानि हवीषि स्युः समित्संख्यासमाहुतीरित्याश्यलायनोकेः श्रिधदेवताभ्योऽपि होमः—

हेमाद्रौ-चारुणा चा समिज्ञिश्व सर्पिषा चा तिलैः क्रमात् । तत्तनमन्त्रौश्च होतन्याः क्रमादत्राधिदेवताः ॥१॥

गृह्यपरिशिष्टे—प्रधानदशांशेन पार्श्वदेवतयोरिति श्रधिदेवतादि-होमे संख्या वाशिष्ठे द्वित्राश्चैवाधिदेवताः पञ्चानां चैव पञ्चधेति । द्वित्राः पञ्च। पञ्चानां गऐशादीनां पञ्चधा प्रत्येकमित्यर्थः । केचित्तु द्वी त्रयो वा द्वित्राः । विनायकादीनां पञ्चधा एकैकामिति केचित्।

प्रयोगपारिजाते-

इन्द्रादिलोकपालांश्व तत्तनमन्त्रैः प्रपूजयेत् । तत्तनमन्त्रौर्जपं कुर्यात्ततो होमं समारभेत् ॥१॥

नृ**सिंहपुरा**णे—

ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयाच तिलादिकम् । यावत्प्रपूज्यते संख्या लच्च वा कोटिरेव वा ॥१॥ वा शब्दादयुतमपि श्रहयज्ञक्ष न नियतकालीनः स्वेच्छायज्ञः स उच्यतं इति भविष्योत्तरात् —

ततो च्याहृतिभिः कुर्यात्तिलहोमं प्रयत्नतः ।
प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लचहोमो द्वितीयकः ॥ १ ॥
तृतीयः कोटिहोमः स्यात्त्रिविधो ग्रहयज्ञकः ।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा पश्चरात्रमथाऽपि वा ॥ २ ॥
शिवगाथां विष्णुगाथां शान्ति बाह्मणभोजनम् ।
समापयेत्प्रतिदिनमेवं भक्तिसमन्वितम् ॥ ३ ॥

इति वाशिष्टेप्येकरात्रादि श्रहणं नियमानादरार्थम् । अत्र स्का-दिज्ञपोऽपि तुलादानवदिति केचित् ।

वाशिष्ठे—अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः । पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ्गुरवैः॥ १॥ अञ्यङ्गावयवै र्ज्ञह्मन् हैमस्रग्दामभूषितैः । यजमानस्य कर्त्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः॥ २॥

श्रभिवेकमन्त्राः प्रथोगे बदयन्ते-

वशिष्ठः — स्वस्तिकं कल्पयेत्पश्चात्कुण्डस्येशानभागतः ।
यजमानाभिषेकार्थं तत्र भद्रासनं न्यसेत् ॥ १ ॥
पाङ्गुखस्योपविष्ठस्य यजमानस्य तत्र च ।
श्रभिषेकं ततः कुर्युः साचार्याः षोडशर्त्विजः ॥ २ ॥
विविधेमङ्गलैर्घोषैः स्तमागधजैः सह ।
ततस्तस्याभिषिक्तस्य रत्तार्थं वितिष्ठत्तिपेत् ॥ ३ ॥
दिग्विदिज्ञ विचित्राः नेदींपैनीराजयेत्ततः ।
शुक्रमाल्याम्बर्धरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥ ४ ॥
ततो मण्डपमागत्य ध्यायेदिष्ठं सुरान्ग्रहान् ।
पत्येकं मतिमन्त्रेश्च दद्यात्पुष्पाञ्चितं तत इति ॥ ४ ॥

वामनः -- श्राचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफलं ततः । प्रमिदाञ्यचरूणां च तिलहोमफलं च यत् ॥ १ ॥ ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चाऽर्चनस्य फलां च यत् । गणपन्तेत्रपाश्वीशदुर्गादेव्यङ्गदेवताः ॥ २ ॥ तासां जपफलां सम्यग्गृह्णीयाज्जलपूर्वकम् ।

एतानि च वामनवचांसि निर्मूलानीति पितामहचरणाः । वाशिष्ठ-गोभिलवचसामपि केचिदाहुः ।

विशिष्ठः-ततो जपादीन् जुहुयात्पूर्णीहुतिमधाऽऽचरेत् । तत्रैव-मन्त्रेण सप्त ते ऽत्र्यन्ने इति पूर्णीहुतिं चरेत् ॥१॥ श्राग्निपुराणे-मूर्द्धानं दिव मन्त्रेण संस्रवेण च धारया । द्यादुत्थाय पूर्णी वै नोपविश्य कदा च नेति ॥२॥

मात्स्ये पूर्णांद्वतेरेकत्वान्मन्त्राणां विकल्पः । उपांशु याज इव शास्त्राभेदभिन्नानां याज्यानुवाक्यानां समुच्चयेन तु पठन्ति बसोर्छारा त्वयुतहोमे नास्ति प्रमाणाभावात् ।

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुरुपनः ।
सर्वोषधेः सर्वगन्धेः स्नापितो वेदगुङ्गवैः ॥१॥
यजमानः सपत्नीक ऋतिजस्तान्समाहितः ।
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्दगतिवस्मयः ॥२॥
सूर्याय कपिलां धेनुं दचाच्छहं तथेन्दवे ।
रक्तं धुरन्धरं दचाद्रौमाय ककुदाधिकम् ॥३॥
वुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी ।
श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामकसूनवे ॥४॥
आयसं राहवे दचात्केतवे छागमुत्तमम् ।
सुवर्णेन समाः कार्या यजमानेन दिल्लाः ॥४॥

बुधप्रीत्यर्थं देय हेम्रा सह सर्वा मूल्यतः समा इति केचित् । श्रास्मिन्पत्ते षोडशमाषविशिष्टहेमवाचि सुवर्णपदाऽसमंजसस्या-पत्तेस्तादशसुवर्णमूल्यं प्रत्येकमिति परे वहल्पमूल्येषु तथा हेमाऽपि देयं यथा सर्वाः प्रत्येकं दशमाषसुवर्णेन समा भवन्तीति तुसम्यक् ।

सर्वेषामथवा गावो गुरुर्वा येन तुष्यति । स्वमन्त्रेण प्रदातन्याः सर्वाः सर्वत्र दक्तिणाः ॥१॥

स्कान्दे-केतवे छागमांसानि सर्वेषामेव काञ्चनमिति ।

तत्रैव-यस्तु पीडाकरो नित्यं स्वल्पवित्तस्य वा ग्रहः।

तमेव पूजयेद्धक्त्या दक्तिणाभिः स्वशक्तितः।

दानोद्योते श्राश्वलायनः-

यथाशक्ति ततो विषादृत्विजश्चेत्तरानिष । एकमेकाहुतौ विष्ठं होमे लन्नेन भोजयेत् ॥१॥ श्रत्यर्थो मध्यमश्चापि विष्ठमेकं शताहुतौ । सहस्रस्य हुतैवैंकं जघन्योऽपि प्रभोजयेत् ।

तत्रैव-तस्मादातुमशक्तोऽपि दिच्चियां चात्रमेव वा । जपैः प्रशामैः स्तोत्रैश्च तोषयेत्तपयेद्गुरुम् ॥३॥

स्कान्दे-यथा ग्रहो द्विजस्तद्वद्विज्ञेयो वेदपारगः । तोषयन् मृदुवस्त्राधैस्तुष्टमेनं विसर्ज्जयेत् ॥१॥ अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः । यजमानमद्त्तिएयो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥२।

तत्रैव-यथा समन्वितं मन्त्रं मन्त्रेण प्रतिहन्यते ।
एवं समुच्छितं घोरं शीघ्रं शान्त्या विनश्यति ॥३॥
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्माजितधनस्य च ।
नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥४॥

प्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्देहन्त्यपमानिताः॥४॥
प्रहाणामिदमातिथ्यं कुर्यात्संवत्सरादिष ।
श्चारोग्यवलसम्पन्नो जीवेच्च शरदां शतम् ॥६॥
मात्स्ये-एवं समग्रान्निष्णाद्य सर्वान्देवान्विसर्जयेत् ।
तत्र मन्त्रः-यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ।
इष्टकामप्रदानार्थे पुनरागमनाय च ॥१॥

भविष्योत्तरे–ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्तु महोत्सवम् । शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषरवेख च ॥ १ ॥

मात्स्ये-श्रनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समारभेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति भेत्य स्वर्गे महीयते।।१।।
स दैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखः स्मृतः।
विवाहोत्सवयञ्जेषु मितष्ठादिषु कम्मस्र।।२।।
निर्विद्नार्थं सुनिश्रेष्ठ ! तथोद्देगाद्धतेषु च ।
वश्यकमीभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्।।३।।
नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समारभेत्।
श्रन्थथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते कचित्।।४।।
तस्मादयुतहोमस्य विधानं तु समाचरेत्।

विवाहेत्यादिना च विवाहादिषु काम्येषु कर्मस्वङ्गत्वमुक्तम् ।
ग्रत्र ग्रहस्वरूपवर्णदेशगोत्राग्निस्थानमुखाकारस्थापनहोममन्त्रचन्दनधूपदीपनैवेद्यसमिद्द्यिणाधिदेवतापत्य धिदेवतोपदेशकवाक्येषु ग्रहाणां स्वरूपनिर्देशस्थापनहोममन्त्रोपदेशवाक्येषु वाधिदेवताप्रत्यधिदेवताविनायकादिपञ्चलोकपालानामनेकस्मृतिपुराणभेदेन भूयो
विसंवादिभिरनेकः पर्यायशब्दैरुपस्थितेर्नात्रकवैधशब्दिनयमः ।
नापि मन्त्रवर्णेनैकशब्दोपस्थितः । शब्दिवरोषेद्वैवता श्रनूद्य-

तत्स्मारकतया मन्त्रविनियोगेन मन्त्राणां देवताशयकत्वायोगात् । तेषां बाहुल्येनास्पर्शलङ्गत्वाचा । स्रतो द्रव्यत्यागादिषु स्वरूपाति-निद्दशकस्मृतिमन्त्रवर्शोपस्थितशब्दानामन्यतमेन शब्देनोद्देशो प्रहादी-नामिति शिष्टाचारोप्येवम् । अत्र व्याहृति-करण्के युतहोमेऽग्निवायु-सूर्यंप्रजापतय एव देवताः। न नवग्रहाः। ऐन्द्रशादिवत्तत्प्रकाशकत्वेन विनियोगाभावात्। श्रत एव पारिजाते—ॐ भूभु वः स्रुवश्चेति तिस्रो ब्याहतयो जपेत्। श्राभिश्च होमे तिस्रभिश्चतुर्थी स्यात्समा-सत इति समस्ताभिरेव होमः स चाग्नि-वायु-सूर्य-दैवत्य इति तु मदनः । सर्वथा ब्याहृतिहोमेन ग्रहा देवता इति । प्रधानं चात्र ग्रह-पूजा तद्धोमोयुत होमादिश्च । श्रीकामः शान्तिकामो वा ब्रह्यइं समाचरेदित्यादिना तत्पूजा तद्धोमयोः फलसम्बन्धात् । प्रहयक्ष-क्षिधेत्युक्त्वा प्रथमोऽयुतहोम इत्यादिनाऽयुतलक्कोटिहोमानां प्रह-यज्ञविशेषकत्वेनोपक्रमात्। तस्माद्युतहोमस्य विधानं तु समाचरे-दित्युपसंहाराच । ब्रहाब्रहदेवत्यकर्मसमृहे प्राणभृत उपद्धातीति वर्ष्टिलगसमवायेन ग्रहयक्षशब्दः । तातचरणास्त्वयुतहोमादीनामेव प्राधान्यं प्रहद्दोमस्त्वङ्गमित्याहुः। तदाशयं न जाने यो हि कामशब्देन श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयशं समाचरे-दित्यादिः स ताबद्ग्रहपूजाहोमयोरेबोचितः। ग्रहसम्बन्धमाप्ते ग्रह-यञ्चश्चन्दस्य तन्नामत्वात् । न चायुतहोमादीनां फलसम्बन्धे तत्पकर-गुपाठादुम्रहपूजाहोमयोरङ्गतेति बाच्यं वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात्। श्रयुतहोमादिशब्दानां ग्रहयज्ञसामानाधिकरएयेन श्रहयज्ञनामत्वं तु लिङ्गसमवायेन श्रार्थवादिकः फलसम्बन्धस्तु ।

> श्चनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत् । सर्वान्कामानवाष्नोति भेत्य स्वर्गे महीयते॥१॥

इत्यत्र यसदेवपूजासंगतिकरणदानेष्त्रित्यनुशिष्टयोः पूजाहोमयोः सदैवायुतहोमोयमित्याद्युपकम्य निर्विद्यार्थं मुनिश्रेष्ठ इत्यादिना त्वयु-तहोमादिनामपि स्मृतिषु प्राय श्रार्थवादिकमेव फलम् । श्रत्र कामश-ब्दोपनीते फले सत्पार्थिवादिकं सम्बध्यते न वेति तु विचारान्तरम् । कि च याह्यबल्क्यादिस्मृतिषु न तावद्युतहोमादीनां विधिनाष्यनु-वादः । श्रतो प्रहपूजाहोमयोः प्राधान्याभावे तत्रत्येतिकर्राब्यता- सम्बन्धो न स्यात् । स्रतो प्रहपूजाहोमयोरिप प्राधान्यं भाति । स्रत एव कचित्केत्रलग्रहमखेषु तदङ्गकेषु च शान्तिकादिकमस्वेकसमृत्यु-काङ्गप्रधानादरेण स्मृत्यन्तरोक्तप्रधानभूतायुतादिहोमं विनाऽिप शाखान्तरोक्तप्रहयागाभ्यासंविनैकशाखीयप्रहयागाभ्यासमात्राणामित्र पूजा शहदेवत्यहोमयोरेवानुष्ठानं कथिञ्चत् शिष्टानां सङ्गच्छते । श्रहपूजाहोमयोरङ्गत्वे त्वङ्गमात्रानुष्ठानमेव स्यात् ।

अथ प्रहादीनां लच्नणानि ।

पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः। मात्स्ये-पद्मासनः सप्ताश्वरथसंस्थश्च द्विभ्रजः स्यात्सदा रविः ॥१॥ रवेतः रवेताम्बरधरो दृशाश्वः रवेतभूपणः । गदापाणिर्दिवाहुश्र कर्तव्यो वरदः शशी ॥२॥ रक्तमाल्याम्बर्धरः शक्तिश्र्लगदाधरः। चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरास्रतः॥३॥ कर्णिकारसमद्यतिः । पीतमाल्याम्बरधरः खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥४॥ देव-दैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दिएडनौ वरदौ कार्यौ सान्नसूत्रकमण्डल् ॥५॥ इन्द्रनीलघुतिः शूली वरदो ग्रुश्रवाहनः। वारावार्णासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥६॥ करालवदनः खड्गचर्मग्रूली वरप्रदः। नीतः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥७॥ धूम्रा द्विवाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः। गृत्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरपदाः ॥=॥ सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहलोका हितावहाः । श्रङ्गुलेनोच्छिताः सर्वे शतवष्टोत्तरं सदेति ॥६॥

अथाधिदेवताप्रत्यधिदेवतालच्चणानि---

विष्णुधर्मोत्तरे-

पश्चवक्त्रो दृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः । कपाली शूलखट्वाङ्गी चन्द्रमौत्तिः सदाशिवः ॥१॥ श्रनसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम्। उमा विभर्ति हस्तेषु पूजिता त्रिदशैरपि ॥२॥ कुमारः षरमुखः कार्यः शिखरडकविभूषराः । रक्ताम्बरधरो देवो मथूरवरवाहनः ॥३॥ कुनकुटश्च तथा घएटास्तस्य दित्तिरगहस्तयोः। पताका वैजयन्ती स्याच्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥४॥ विष्णुः कौमोदकी-पद्म-शङ्ख-चक्रधरः क्रमात् । भदित्तर्णं दित्ति**णाधः करादारभ्य नित्यशः ॥**५॥ पद्मासनस्थो जटिलो ब्रह्मा कार्यश्रदुर्भुजः। श्रन्तमालां स्रवं विभ्रत्पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥६॥ चतुर्दन्तगजारूढो वज्री कुलिशभृत्करः। शचीपतिः मकर्चव्यो नानाभरणभूषितः॥७॥ ईषत्रीलोपमः कार्यो दएडहस्ते विजानता। रक्तद्दवपाशहस्तश्च महामहिषवाहनः कालः करालवदनो नीलाङ्गश्च विभीषणः पाशहस्तो दख्डहस्तः कार्यो दृश्चिकरोमवान् ॥६॥ श्रवीच्यवेपस्त्राकारं द्विभ्रुजं सौम्यदर्शनम् । दित्तिणे छेखनी चित्रगुप्तं वामे तु पात्रकम् ॥१०॥ पिङ्गलश्मश्रुकेशाचः पीनाङ्गजटरोऽरुणः छ।गस्थः साचस्त्रोऽग्निः सप्ताचिः शक्तिधारकः ॥११॥ चिहितं चमरेणास्य करमन्यं पकल्पयेत् ।

श्रापः स्रोरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ॥१२॥

दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ।

श्रुक्रवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ॥१३॥

चतुर्भुजा सौम्यवपुश्रण्डांश्रसदृशाम्बरा ।

रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ॥१४॥

पद्मं करे च कर्त्तव्यं भुवो यादवनन्दन !।

दिङ्नागानां चतुर्णी सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥१४॥

विष्णोरिन्द्रस्य चोकम्-

वामे शच्याः करे कार्या सौम्या सन्तानमञ्जरी । वरदा मण्डिता कार्या द्विभुजा च तथा शची ॥१॥ यज्ञोपवीती हंसस्य एकवक्त्रश्चतुर्भुजः । अतं स्रवं स्रचं विभ्नत्कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥२॥ अत्तं श्रत्तमालाम् । कुण्डिकां कमण्डिलुम् ।

श्रनसूत्रधराः सर्गाः कुण्डिकापुच्छभूषणाः । एकभोगास्त्रिभोगा वा सर्वे कार्याश्र भोषणाः ॥३॥

ब्रह्मलज्ञ्जम्—

ग्रहाणां दिच्चिणे पार्श्वे स्थापयेद्धिदेवताः । ग्रहाणाम्रुत्तरे पार्श्वे न्यसेत्यत्यधिदेवताः ॥४॥

अथ विनायकादिलचणानि ।

चतुर्श्वजिक्षनेत्रश्च कर्त्तव्योऽत्र गजाननः। नागयक्षोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः ॥५॥ दत्ते दन्तं करे दद्याद् द्वितीये चात्तस्त्रत्रकम्। कृतीये परशुं दद्याचतुर्थे मोदकं तथा॥६॥ शक्ति वाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दिन्तिणे।
चन्द्रविम्बमधो बामे खेटमृध्वें कपालकम्।।।।।
स्रकं कटं च विश्वाणा सिंहारू तृ दिग्युजा।
एषा देवी समुद्दिष्टा दुर्गा दुर्गाऽतिंहारिणी।।।।।
धावद्धरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः।
वरदानकरो धूम्रवर्णः कार्यो विजानता।।।।।।
नीलोत्पलाभं गगनं तद्दर्णाम्बरधारि च।
चन्द्रार्कहस्तं कर्त्तव्यं दिशुजं सौम्यखण्डवत्।।१०।।
दिशुजौ देवभिषजौ कर्त्तव्यौ रूपसंस्थितौ।
तयोरोषधयः कार्या दिव्या दिल्लाहस्तयोः।।११।।
वामयोः पुस्तकौ कार्यौ दर्शनीयौ तथा दिजाः।
एकस्य दिल्लोपार्थे वामे चान्यस्य यादव!।।१२।।
नारीयुगं प्रकर्तव्यं सुरूपं चारुदर्शनम्।
रत्नभाण्डकरे कार्ये चन्द्रशुक्राम्बरे तथा।।१३।।

📒 - अथ लोकपाल रूपोणि 🛭

तत्रेन्द्राग्नियमरूपाण्यधिप्रत्याधिदेवोक्तानि-

खड्गचर्मधरो बालो निर्ऋतिर्नरवाहनः॥ ऊर्ध्वकेशो विरूपानः करालः कालिकावियः॥१॥ नागपाशधरो रक्तभूषणः पश्चिनीपियः॥ वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः॥२॥

वायुर्विनायकादिपञ्चके उक्तः । सोमो प्रहेषु । श्रन्नतः सर्पः सप्रत्यधिदेवतासु । इत्ययुत्होमः ।

अथ लचहोमः ।

तत्र ब्रह्मीडादीनि निमित्तान्युक्तान्ययुतहोभारमभो देवीपुरासे—

लत्तहोमं प्रवक्ष्यामि यथाप्रोक्तं तु शम्भुना ।
भूमिकम्पे दिशादाहे ग्रहयुद्ध उपस्थिते ॥ १ ॥
केतुसन्दर्शने चैव ब्रादित्यस्य च कम्पने ।
कृष्णवर्णेऽथवा सूर्ये तथा ब्रिद्रसमन्विते ॥२॥
रक्तदृष्टिस्तथा नद्यो विपरीतां वहन्ति च ।
निर्गतं गगनाइधूमं वारिमध्ये च यत्स्थतम् ॥ ३ ॥
उपसर्गास्तथा लोके रक्षान्तु त्त्रयकारकाः ।
यस्य राशौ ग्रहाः पश्च ब्राथ सप्त सुराधिप ॥४॥
ग्रहणं चन्द्रसूर्यसग्रहैर्वाष्ट संस्थितेरित्यपि ।

तथा-कम्पनं स्वेदनं गात्रे अम्बुपानार्थजन्पनम् । देवतानां सुराध्यत्त उत्पाताः चयकारकाः ॥१॥ लच्चहोमं पकुर्वीत कोटिहोममथापि वा । इति ।

मात्स्ये-श्रस्मादशगुणः मोक्तो लक्तहोमः स्वयम्भवा । श्राहुतीभिः पयत्नेन दक्तिणाभिस्तथैव च ॥१॥ द्विहस्तविस्तृतं तद्वचतुर्हस्तायुतं पुनः । लक्तहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥२॥

व्यासतो द्विहस्तं फलतश्चतुर्हस्तायतं भवतीत्यर्थः।
तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसम्मितम् ।
प्राग्रदक् प्रवणं तद्वच्चतुरस्रं समं ततः॥३॥
विष्कम्भाद्धोच्छितं प्रोक्तं स्थणिडलं विश्वकर्मणा ।
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमाष्टतम् ॥४॥
तिस्मस्त्रावाहयेदेवानपूर्ववत्युष्पतण्डलेः ।

गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता ॥५॥ सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्टिनः । विषपापहरो नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥६॥

श्रयं गरुडावाहनमन्त्रः—

पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत् । सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः ॥१॥

पूर्ववदेव समिदाज्यं चरुहोमं पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैः कुर्यात् । गरुत्मतः सुपर्णोसि गरुत्मानिति इन्द्रं मित्रमिति वा मन्त्रः ।

घृतकुम्भवसोद्धीरां पातयेदनलोपिर । उदुम्बरीमथाद्धी च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम् ॥१॥ वाहुमात्रां सूचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपिर । घृतधारां तथा सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥२॥ श्रावयेत्स्रक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम् । सहावैश्वानरं सम्यग्ज्येष्ठसाम च पाठयेत् ॥३॥ स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत्स्वस्तिवाचनम् । दातव्या यजमानेन पूर्ववद्त्तिणा पृथक् ॥४॥ कामक्रोधविद्दीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा । तद्व द्द्वादश चाष्टौ वा लच्चहोमेऽपि ऋत्विजः ॥४॥ कर्त्तव्याः शक्तितस्तद्वचतुरो वा विमत्सराः ।

ब्रह्माचार्यसहिता नामेवेयं संख्येति केचित्—

नवग्रहमलात्सर्व लत्तहोमे दशोत्तरम्। दद्याच मुनिशार्द्लः! भूषणान्यपि शक्तितः ॥१॥ शयनानि च वस्राणि हैमाति कटकानि च। कर्णाङ्गुलीपवित्राणि कण्डस्त्राणि शक्तितः॥२॥ न कुर्याद्दिल्खाहीनं वित्तशाठ्ये न मानवः।

अदत्वा होमलोपाद्वा कुलत्तयमवाष्तुयात् ॥३॥

अन्नदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता।

मन्त्रहीनं कृतो यस्मादुर्भित्तफलदो भवेत् ॥४॥

तथा-तस्मात्पीडाकरोतीव य एव भवित ग्रहः।

तमेव पूज्येद्धक्तचा द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि ॥४॥

तथा-पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्धः।

यावत्कल्पशतान्यष्टौ अथ मोत्तमवाष्तुयात् ॥६॥

तथा-पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।

भार्यार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।

भार्यार्थी लभते पार्यं श्रीकामः श्रियमाष्तुयात्।

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥८॥

निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति।

।। इति लत्तहोमः ॥

अथ कोटिहोमः।

तत्राप्ययुतलज्ञहोमप्रकरण एव निमित्तान्युकानि । भविष्योत्तरेऽपि । संवरण उवाच —

भगवन् ! महदुत्पातसम्भवे भूमकम्पने ।
निर्घाते पांशुवर्षे च श्रहभक्ते तथैव च ॥१॥
जन्मनत्त्रपीडासु अनादृष्टिभयेषु च ।
क्रूरासु श्रहपीडासु दुर्भित्ते राष्ट्रविष्त्ववे ॥२॥
व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे वेति पीडिते ।
क्लेशे महति चोत्पन्ने किं कर्ज्ञव्यं नरोत्तमैः ॥३॥

स्वर्गस्य साधनं यत्तरकोतिदं धनदं तथा। प्रबृहि मनुजश्रेष्ठ ! तथाऽऽरोग्यप्रदं तृखाम् ॥४॥

सनत्कुमार उवाच---

शृषु राजन् ! प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्मगयनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥ ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्त्राणात्। उत्पाताः प्रशमं यान्ति महत्सम्पद्यते शुभम्॥२॥ विधानं तस्य वक्ष्यामि शृखु होकमना भव । देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसिन्नधौ ॥३॥ पर्वते वाऽथ कुर्वीत इच्छेत्त्वेममात्मनः । शुभनत्तत्रयोगे च वारे सर्वग्रुणान्विते ॥४॥ यजमानस्यानुकूळे कोटिहोमं समाचरेत् । पूजियता पयत्नेन ब्राह्मणं वेद्वारगम् ॥४॥ वस्त्रैविंभूषर्णैरचैव गन्धमाल्यानुलेपनैः । प्रणम्य विधिवत्तस्मै चात्मानं निवेदयेत्।।६।। त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् । त्रत्मसादेन विवर्षे ! सर्वे मे स्याग्मनोगतम् ॥७॥ श्रापद्विमोत्ताय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम्। कोटिहोमारूयमतुलं शान्त्यर्थे सार्वकामिकम् ॥८॥ पुरोहितस्ततः पाज्ञः शुक्राम्बरधरः शुचिः। ब्राह्मणैः संद्रतः पुण्यैः संयुतः स्रुसमाहितैः ॥६॥ भूमिभागे समे शुद्धे मागुदक्षवणे तथा। पुरायाह बाचयेत्पूर्व कृत्वा विप्रास्तु पूजयेत् ॥१०॥ ततः समाहितो विषः सूत्रयेन्मएडपं शुभम् । उत्तमं शतहस्तं तु तदर्धेन तु मध्यमम् ॥११॥

अधमं तु तद्धेंन शक्तिकालाद्यपेत्तया न मध्ये तु मराडवस्यापि कुराडं कुर्याद्विचत्तराः ॥१२॥ श्रष्टहस्तप्रमाणेन श्रायामेन तथैव च मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ॥१३॥ तत्प्रमाणां तथा योनिं कुर्वीत सुसमाहितः क्रुएड्स्य पूर्वभागे तु वेदिं कुर्याद्विचक्तराः ॥१४॥ चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छितां चृप । स्थापनं च सदेवानां कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥१५॥ उपलिप्य ततो भूमिं मगड पस्य पकन्पयेत्। स्थापयेदिन्नु सर्वामु तोरणानि विचन्तणः ॥१६॥ एवं सम्भृतसम्भारः पुरोधाः सुसमाहितः। पुरुयाहजयघोषेल होमकर्म समाचरेत् ॥१७॥ स्थापयिता सुरान्वेद्यां वक्ष्यमाणानरिंदम ! ब्रह्मार्खं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् ॥१८॥ पश्चिमे तु तथा रुद्रं वसुनुत्तरतस्तथा ईशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेय्यां मरुतस्तथा ॥१६॥ वायुं भूम्यां तथैशान्यां लोकपालान्क्रमेण तु । एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं नृपोत्तम ! ॥२०॥ पूजयेद्विधिवद्रस्त्रैर्गन्धमाल्यातुलेपनैः वेदोक्तमन्त्रेस्तन्तिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक् पृथक्॥२१॥ श्रादित्या वसवी रुद्रा लोकपालास्त्यैव च । ब्रह्मा जनाई नरचैव श्रूलपाणिर्महेश्वरः ॥२२॥ श्रत्र सन्निहिताः सर्वे भवन्तु मुखभागिनः पूजां ग्रह्णन्तु सर्वत्र मया भत्योपपादिताम् ॥२३॥ मकुर्वन्तु शुभं सर्वे यज्ञकर्तुः समाहिताः ।

एवं तु पूजियताः तान्देवान्यत्नेन शुद्धधीः ॥२४॥ नैवेद्यैविविधेभेंक्ष्यैः फलैश्रव सुशोभितैः । ततस्तु तैर्द्विजैः सर्वैः कुएडस्य विधिपूर्वकम् ॥२५॥ कुर्यात्संस्कारकरणं यथोक्तं वेदवित्तमैः । ततः समाहयेद्रहिनाम्नाख्यातं घृताचितम् ॥२६॥ नियोजयेद्दद्विजांस्तत्र शतसंख्यान्टपोत्तम श्रलाभे च बहूनां च यथालाभं नियोजयेत् ॥२७॥ विद्यावित्तवयोद्धदान् गृहस्थान् संयतेन्द्रियान् । स्वकर्मनिरतान् बुद्ध्वा ज्ञानशीलान्प्रयत्नतः ॥२८॥ चिन्तयेत्तत्र देवेशं पश्चास्यं तृप ! पावकम् । मुखानि तस्य चलारि सप्तजिह्वानि पार्थिव !॥२६॥ एकजिह्नमथैकं¦तु तत्स्मृतं सार्वकामिकम् । धूमायमानेन दृथा होतन्यं ज्वलितेन ते ॥३०॥ ऋग्भिः पूर्वमुखैः कार्यो यज्ञभिश्रोत्तरामुखैः । सामभिः पश्चिमे कार्यः पूर्ववहत्तिणामुखैः ॥३१॥ आघारावाज्यभागौ तु पूर्व हुला विचन्तरणाः। परितश्च परिस्तीर्णे कल्पिते च तथाऽऽसने ॥३२॥ ब्राह्मणाः पूर्वमेवात्र सर्वे पश्चात्समाचरेत्। होमो व्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते ॥३३॥ मणवादिभिश्च तन्तिङ्गैः स्वाहाकारान्तयोजितैः। जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चावकल्पिताः ॥३४॥ एवं प्रकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमारूयमुत्तमम् तिलाः कृष्णाः घृताभ्यक्ताः किश्चि इत्रीहिसमन्विताः ॥३५॥

किञ्चियव समायुका इति कचित्पाटः। होतच्याः कोटिहोमे तु समिधः सुपलाशजाः। पूर्णे पूर्णे सहस्रे ह द्यात्पूर्णाहुति शुभाम् ॥३६॥
पश्चमे तन्मुले राजन् ! सर्वकामार्थसिद्धये ।
पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप !॥३७॥
सहस्राणि नृपश्रेष्ठ ! दशशास्त्रविशारदैः ।
पारम्भदिनमारभ्य ब्राह्मणैब्रह्मवादिभिः ॥३८॥
होतव्यं यजमानैश्र श्रथवा सुपुरोहितैः ।
क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥३६॥
यजमानेन राजेन्द्र सर्वकामानभीष्मता ।

मात्स्ये-ग्रस्माच्छतगुणः पोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भ्रवा । ग्राहुतीभिः पयत्नेन दित्तिणाभिः फलेन च ॥ १ ॥ पूर्ववद्गग्रहदेवानामावाहनविसर्जनम् । होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानदाने तथैव च ॥ २ ॥ कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निवोध मे । कोटिहोमे चतुहस्तं चतुरस्रं च सर्वशः ॥ ३ ॥ योनिवक्त्रद्वयोपेतं तद्प्याहुस्त्रिमेखलम् ॥

सर्वशः चतुर्हस्तमिति विस्तारायामखातेष्वत्यर्थः । योनिवक्त्र-द्वयोपेतमित्येका योनिः पश्चिमतोऽभ्या दक्तिणत इति हेमाद्रिः । वक्त्रं=क्राटः । योनिकण्ठयुतमिति पितामहचरणाः ।

वेदिश्व कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्ट् यम् । चतुरस्ना समाहृता त्रिभिवमैः समाहृता॥१॥ वप्रमानं मया पोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्यः। इक्तमयुतहोमे

तथा षोडशहस्तः स्यान्मएडपश्च चतुर्भुखः॥२॥ पूर्वद्वारे च संस्थाप्य वह्द्रचं वेदपारगम्। याजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्॥३॥

अयर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्वुधः। अष्टौतु होमकाः कार्या वेदवेदाक्रवेदिनः ॥ ४ ॥ एचं द्वादश तान् विमान् वस्त्रमान्यानुलेपनैः। पूर्ववत्यूजयेद्भवत्या सर्वाभरणभूषितैः ॥ ५ ॥ रात्रिस्कं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्। पूर्वतो बहुरुचः शान्ति पठनास्त उदङ्गुखः ॥ ६ ॥ शाफ्र रौद्रं च सौम्यं च कौष्माएडं शान्तिमेव च। पठेलु दिलाणे द्वारि याजुर्वेदिकमुत्तमम्।। ७।। वैराजमाग्नेयं रौद्रसंहिताम्। ज्येष्टसाम तथा शान्ति छन्दोगः पश्चिमे पटेत् ॥ ८ ॥ शान्तिमुक्तं च तथा तथा शाक्कनकं शुभम्। पौष्टिकं च महाराजसूत्तरेखाऽप्यथर्ववित्।। ६ ॥ पञ्चभि सप्तभिर्वाऽथ होमः कार्योऽत्र पूर्ववत् । स्नाने दाने च पन्त्राः स्युस्त एव म्रुनिसत्तम ! ॥१०॥ वसोद्धीराविधानं तु लच्चहोमवदिष्यते । भ्रानेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत् ॥११॥ सर्वान्कामानवाष्ट्रीति ततो विष्णुपर्व बजेत्। यः पठेच्छ्यादाऽपि प्रहशान्तित्रयं नरः।।१२॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छवि । व्यरवमेधसहसाणि दश वाऽष्टी च धर्मवित् ॥१३॥ कृत्वा यत्फलमामोति कोटिहोमात्तदरनुते। ब्रह्महत्यासदसाणि भ्रुणहत्याऽर्धुदानि च ॥१४॥ 🤟 नश्यन्ति कोटिहोमेने यथावदेवभाषितम् । इति कोटिहोमः।

अथ शतमुखकोटिहोमः ।

संपरण उवाच--

षहुत्रात्कर्मणो ब्रह्मन् ! कोटिहोगः सुदुष्करैः । कालेन महता चैव कर्तुं शक्यः कथञ्चन ॥ १ ॥ नियमा ब्रह्मचर्यादा दुष्करा इति मे मितः । निरोधो ब्राह्मणानां च भूशय्यादि सुदुष्करम् ॥ २ ॥ कार्याणामलघीयत्वात्पूर्वकालाद्यपेत्तया । एतदिशाय तं ब्रह्मन् ! सर्वशास्त्रेषु पट्यते ॥ ३ ॥ कोटिहोमस्य संत्तेपं वद मे ब्रह्मसम्भव ! ।

समत्कुमार जवाच-

शताननो दशमुखो दिमुखैकमुखस्तथा।
चतुर्विधो महाराज! कोटिहोमो विधीयते॥१॥
कार्यस्य गुरुतां ज्ञाला नैकट्यमथ पर्वेषाः।
यथा संचेषतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृष्णु॥२॥
कुरुवा कुएटशतं दिव्यं यथोक्तं मानसम्मितम्।
एकेकस्मिस्तथा कुएडे दश विमानियोजयेत्॥३॥
सद्यः पचे तु विमाणां सहस्रं परिकीर्तितम्।
दकस्थानप्रधातेऽस्रो सर्वतः परिभाविते॥४॥
पकस्थानात्सर्वतः सर्वतः सर्वतिमन्कुण्डे परिभाविते संस्कतेऽभनी प्रणीत इत्यर्थः।

होमं कुर्युर्द्धिनाः सर्वे कुएडे कुएडे यथोदितम् । यथा कुएडबहुत्वेऽपि राजस्ये महाक्रतौ ॥ ४ ॥ न चाप्यग्रिबहुत्वं स्यास च यज्ञादि भिद्यते । तथा कुएडशतेऽप्यत्र घृताचिषि नियोजिते ॥ ६ ॥

एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः। एवं यैः क्रियते चिन्नं न्याकुलैः कार्यगौरवात् ॥ ७ ॥ शताननः स विज्ञेयः कोटिहोमो न संशय। स्वल्पैरहोभिः कार्यं स्यादीर्घकालादिकेऽपि वा ॥ 🖙 ॥ तदा दशमुखः कार्यः कोटिहोमः शुभे मते। विभाणां द्विशते तत्र भविभन्य नियोजयेत् ॥ ६ ॥ तेऽपि विज्ञातशीलाः स्युष्टेत्तवन्तो जितेन्द्रियाः। यत्र कुरहद्वयं कृत्वा विभज्य च विभावसुम् ॥१०॥ होमं कुर्युर्द्विजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम्। शतं तत्र नियोज्यं च विषाणां प्रविभज्य वै ॥११॥ मासेऽथवाऽर्द्धमासे वा कार्य्यः काले ह्यपस्थिते। तदापि द्विमुखः कार्यः कोटिहोमी विचन्नर्णैः ॥१२॥ तदनु स्वेच्छया यज्ञं यजमानः समापयेत्। कालेन बहुना राजंस्तदा चैकप्रुखो भवेत्।।१३॥ एककुएडस्थितो विहरेकचित्रैः समाहितैः। यथालाभस्थितैविंगैर्ज्ञानशीलैविंचत्तर्णः ॥१४॥ न संख्यानियमथाऽत्र ब्राह्मणानां नरोत्तम ! न कालनियमश्चैकस्वेच्छायज्ञः स उच्यते ॥१४॥ आहरवा कर्तुकामस्य चातुर्मास्यादि कर्मवत् । क्रितदा मसक्तः कर्त्तव्यो यज्ञोऽयं सर्वकामिकः ॥१६॥ श्रयमेकमुखो राजन ! कालेन बहुना भवेत्। बहुविद्यश्च कालो वै तस्मात्संनेपमाचरेत् ॥१७॥ यतो वै वित्तमायुश्च वित्तं चैवाऽस्थिरं सदा। श्रतः संचेपतः कार्ये धर्मकार्य्ये प्रशस्यते ॥१८॥ ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्स्रमहोत्सवम् ।

शंखतूय्येनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ततस्तु दत्त्रयद्विपान् ऋत्विजः श्रद्धयान्वितः। एकैकं कनकैश्चैव कुएडलैविविधेर्नृप !।।२०॥ गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तथा। सहस्रं तु सुवर्णस्य सर्वेषामपि दापयेत् ॥२१॥ ग्रामैर्गजै स्थैरश्वैः पूजयेच पुरोहितम्। दीनान्धक्रपणान्सर्वान्बस्नोन्नैश्वाऽपि पूजयेत् ॥२२॥ ततश्रावस्थे स्नायात्तैर्घटैः पूर्वकल्पितैः। सदाविजयकारिएा।।२३।। **लत्तहोमोक्तमन्त्रे**ण एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम्। तस्यारोग्यं नियाः पुत्रा आयुर्देद्धिस्तथैव च ॥२४॥ जायते सर्वेपापत्तयश्चैव नृपसत्तम ! । श्चनादृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव दुर्भित्तग्रहपीदाश्च पशमं यान्ति भूतले। पापहरं सर्वकामफलपदम् ॥२६॥ एतत्पुएयं सनत्कुमारम्रुनिना पार्थिवाय निवेदितम् । सर्वोपसर्गशमनं भवनाशनं वा

ये कारयन्ति मनुना नृपकोटिहोमम् । भोगानवाप्य मनसोऽभिमतान् मकार्म ते यान्ति शकसदनं भ्रुवि शुद्धसस्वाः ॥२७॥

श्रथ यथैते साहस्राः सायस्क्त्रा इत्येकसंक्ष्योवकांतेषु क्रमाम्ना तेषु च निकायिसंक्षकेषु यागेषु प्रथमस्याम्नातधर्मकस्य धर्मा उत्तरे- क्वनाम्नातधर्मकेषु निकायित्वाऽवान्तरासामान्यात्साहस्रं साय- स्क्ष्राधेकनामकत्वाच्च प्रवर्तेत इत्यष्टमे निकायिनां तु पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यादित्यत्र निरणायि । तथेह चतुर्विधो महाराजकोटिहोम इति चतुर्णां कोांटहोमनामत्वावान्तरसामान्येन सधर्मकस्यैकमुखस्य

धर्मा अनाम्नातधर्मकेषु द्विमुखादिषु प्रवर्त्तन्ते तेन तेवां विक्रतित्वम् । तत्र हिमुखे तावत्कुण्डह्यं प्रकृतिप्राप्तेषु शतपञ्चायत्पञ्चविशतिहस्त-मण्डपेषु मध्यमनवमारी कार्य तस्यैव मध्यमे नवमारी तु कुएडं कुर्याद्विचत्त्रण् इति प्रकृती वचनेनात्रापि तथा प्राप्तेः। तच्य कुण्ड-द्वयं पट्हस्तम् । दशलज्ञमिते होमे षट्करं संप्रचन्नत इति भविष्य-त्पुराणात् । पश्चहस्तं वा । कुएडं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलद्गाहुती क्रमादिति तत्वान्तराच्च। दशलच्चोत्तरमेकोनकोटिपर्यन्तं पञ्चषट्करे इत्यर्थः । अयुतहोमतः प्राप्तं एकहस्तत्वं प्राकृतं परिमाणं त्वादुदृष्टीर्थः त्वापत्याऽप्राकृतकार्यत्वाद्वाध्यते । अर्थात्परिमाणमिति कात्यायनो-क्तेश्च। तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यनवांशे दिल्लाोत्तरयोः कुएडद्वयं निविशतेः॥ कथिञ्चत् प्रकृतितो द्वादशाङ्गुलमेखलापाप्तेः। इतरयोस्तु मण्डपयोः सुगम एव निवेशः। एवं दशमुखेऽपि प्राक्तै-कहस्तत्ववाधेन पश्चकराणि षट्कराणि वा दशकुण्डानि । तेषु प्रत्येकं दशलच आहुतयः। तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यमांशेषु पूर्वादिषु चतुर्षु ।दत्तु मध्ये संलग्नानि चत्वारि कुएडानि । प्राकृतमध्यमाशाधि-करणत्वस्य यावत्सम्भवमनुग्रहस्य न्याय्यत्वात् । प्राचि नवमांशे तु प्राक्तता चतुःकरा वेदी । सतस्वंशेषु षट्कुएडानि यः कश्चिदेकोंशस्त्र रिक एव । कुंडद्वर्थं मध्यमांशे । अष्टस्वंशेष्वष्टाविति केचित् । शत्रु-स्रेऽपि पञ्चविशतिहस्ते तावनमण्डपेशतकुरङो निवेशो वाधित एव। पंचाशबस्ते यद्यपि सम्भवति तथापि सहस्रविप्राणां सुखेन निवेशो वाधितः । श्रतः शतहस्त एव निवेश उच्यते । तत्र मध्य-मांशे प्राप्तागे उदक् बंस्था पत्रचानामेका पंकिः । तेवां च कुएडानां प्रत्येकमन्तरं सार्बसप्तहस्ताः सप्तांगुलानि च । ततः प्रतीच्या-मेतादशमेबान्यत्पंकित्रयं कार्थम् । पंकीनामन्तरं वाष्टी हस्ताः। सप्तांगुलानि च । एवं विशतिकुर्वानि मध्यमाने अन्येष्वष्टसु भानेषु मध्ये हे हेऽष्टस्तु दिच्वष्टावद्याविति । प्रत्येकं दश दशेति । नह यत-कुण्डेषु प्रत्येकं लज्ञाहुतिप्राप्तिः । न चैतत्सद्यः कोटिहोमपन्ने सम्भ-वित । कत्वा कुण्डशतं विवयं यथोकं हस्तसम्मितमिति शतमुख-प्रकर्णे कुण्डानां इस्तपरिमाणोकेरिति चेचत्र केचित् इस्तस्रस्मितः मित्यत्र हस्ताभ्यां हस्तैर्वा सम्मित्निति विष्रहेण त्रिवतुहस्ततापि युष्यते । ब्रिहरतेऽपि तु लक्षमाहृतयः सम्भान्त्ये । अत एव -

हेमाद्री--श्रयुते लथ होतन्ये कुएडं स्याद्धस्त्मात्रकम् । द्विगुखं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणमिति ॥१॥

यद्यप्यौत्सर्गिक एकवचनान्तेनैव विग्रहस्तथाऽप्यनुपपत्या द्विबहु-बचनाग्तेनापि कियते । यथा सप्तदश प्राजापत्यानपश्चनालभत इत्यत्र चोदकप्राप्तैकपश्चनिष्पन्न हृदयाद्येकादशावदानगणानुरोधेन प्रजापति-र्देवता यस्यासी प्राजापत्यः प्राजापत्यश्च प्राजापत्यश्च प्राजापत्य इति क्ताद्धितानामेकशेष एव यागो न तु अयं वा पञ्चैक इत्येकशेषी-त्तरं तद्धितं चोदकवाधापत्तेरित्युक्तम् । एवं द्विचतुईस्तकुर्ग्डं सम्पत्या युज्यन्त पकैकस्मिन्कुएडे लक्तमाहुतय इत्याहुः। तातचर-णास्तु-व्यासतुल्यवातेन षट्पश्चवतुस्त्रिशद्वयंगुलानां पश्चमेखलानां विंशत्यंगुलोचतया च मध्यावकाशविवृध्या एकैकद्दस्तेष्विप शक्या पव सद्यमाहुतयः कर्तुम् । श्रनारभ्याम्नातपञ्चमेखलापत्तेण पाकृत-मेखला त्रयवाधस्तूपदिष्टैकहस्तत्वाजुरोधेनेति युक्तमाहः। अत्रैकस्मि-म्क्रण्डे आज्यभागान्तं कत्वाऽन्यकुण्डेष्विश्रप्रण्यनमिति केचित्, तम्न वरुणाप्रधासि कदिन्नणोत्तरवेद्योरनुष्ठीयमानायामाहुत्यामाग्नेयाद्यष्ट-पृथगनुष्ठानवदान्यभागांतं हविष्णुवाघाराज्यभागप्रयाजायङ्गानां **श्राहुतीतिबत्सं**ख्यया स्विष्टकृदाद्यङ्गोनुष्ठानवदिहा**पि** तिस्र कोटिसंख्याकेषु होमेषु लच्चाः शतकुर्द्धेवनुष्ठीयमा-नेष्वाज्यभागातिस्विष्टकदासङ्गानुष्ठानभेदस्यैव न्यास्यत्वात् च अप्रमादार्थेन दीवाकालीनजागरणेन दीवोपयुक्तसम्भारसंरत्तु-प्रायणीयाद्यर्थसम्मारसंरत्त्रणार्थातिदेशिकजागरणावृत्ति-विद्विद्याच्यक्किस्त्रमन्धनार्थेभ्याधानावृत्तिः कथमप्यनिवार्थेव । न हि श्राचार्थंकुरुडस्थेऽग्री समिद्धे कुण्डान्तरस्थानां समिन्धनं भवति । अत प्वायुतहोमे पूर्वेलिखितं तत्तदुप्रहाकारवच कुण्डीपद्ते प्रधा-नायतनाद्यि विभक्ष आचार्यकुरुडेषु प्रशीय नृताचार्या आज्यभा-गान्तं कृत्वेत्यादिना होमशेषं समाप्य पूर्णाहुतीर्हत्वेत्यन्तेनाज्यभागां-तानां स्विष्टकदादीनां चाङ्गानामानृत्तिलिखनं प्रयोगपारिजातीयं संगच्छते तदेव च कोटिहोमे चीदकात्मातम् । प्राकृताष्टर्संख्यायाधेन नवतिसंख्यामात्रं विधीयते । यद्यपि प्रणयनांतरं तथापि तद्धर्मकमेवं सर्वथाङ्गानामावृत्तिरेव एतावानविशेषः शतसंख्यया कुएडेपु नव-संस्था ब्रहाद्याकारास्थलविशेषाश्च निवर्तन्ते । श्रतोऽग्निस्थापनोत्तर-

मेव प्रणयनम्। यसु पारिजाते मध्यकुण्डात्मण्यनमुक्तं तन्न प्रागुदगप-वर्गप्रचारवाधात् । तेन तत्संरस्यणार्थं नैत्रमृत्यकुण्डादेव प्रणयनं कार्य्यम् । अस्तु वा कथित्रद्युतहोमे मध्यकुण्डसद्भावात्तस्य च सर्वप्रधानभूतसूर्यदेवत्यत्वात्कथित्रत्ताः प्रणयनं शतमुखे तु मध्ये कुण्डनिवेशाभावान्न ततोग्निप्रणयनं मध्यस्थलसमीपवर्त्तिष्वनेक-कुण्डेषु तु विनिगमनाविरहः । सर्वोऽप्ययं कोटिहोमविचारस्तात-चर्णौर्द्वतिनर्णये सुविवृत इति नेह विस्तरः॥

श्रथ प्रायो मात्स्यानुसारिणी भट्टकृतां पद्धतिमनुस्मृत्य श्रहमस्वप्रयोगः ।

कर्ता प्रारम्भदिनात्पूर्वे सुदिने दानमयूखीयास्मदुक्तप्रकाराणाः मन्यतमप्रकारेण प्राचीं संसाध्य तत्र वितस्त्युच्छू यं मण्डपनिवेश-योग्यं चतुरस्नं चत्वरं इत्वा पूर्वाह्वं देशकाली स्मृत्वाऽमुककर्म कर्तुं मण्डप करिष्य दति संकल्प्य गणेशं कूर्मे शेषं वासुकि द्विजांश्च-सम्पूज्य—

त्रागच्छ सर्वेकल्याणि वसुधे लोकधारिणि। उद्धृतासि वराहेण सशैलवनकानना ॥१॥ मग्रडपं कारयाम्यद्य त्वदूर्ध्वे शुभलज्ञणम् । गृहा णाऽद्ये मया दत्तं प्रसन्ना शुभदा भव॥२॥

इति बसुधाया अर्घ्यं दत्वा स्योना पृथिवीति तां प्रार्थ्यं मण्डपं तदुद्दीच्यां मध्ये वा कुण्डं वेदिं च कुर्यात् । मण्डपश्चायुतहोमेष्ट- हस्तो दशहस्तो वा कुण्डं हस्तमितं चतुरंगुलैकमेखलं वेदीमग्ड- पोत्तरभागे हस्तविस्तृता वितस्त्युच्छ्रिता वमत्रयवती कार्या। तत्र प्रथमो वमस्त्रयंगुलोच्छ्रायः । तदुपरितनी प्रत्येकं द्रश्वङ्गुलोच्छ्रितौ । विस्तारस्तु सर्वेषामीप प्रत्येकं व्यंगुलः । लच्चहोमे तु मण्डपो द्वादश चतुर्दश्योडशहस्तोऽपि कुण्डं चेत्रफलतश्चतुःकरम् । तदेव व्यास-तो हिकरम् । हित्रिचतुरंगुलोचित्रमेखलम् । तत्रोपरितनी चतुरंगुल- विस्तारा अधोगते द्वे अपि प्रत्येकं द्वयं गुलविस्तारे । कुण्डादीशान्यां सार्द्धहस्तविस्तृता तद्धोंच्छ्रतेशानप्रवणा पूर्वपवित्रवमा वेदी ॥

कोटिहोम तु शततदर्ज्ञतदर्ज्योडशान्यतमहस्तो मएडपः कुण्डं तु श्रष्टहस्तं दशहस्तं योडशहस्तं वा फलतः । तश्र व्यास्तसमस्रातं मएडपमध्ये तस्य दिल्लिपश्चिमयोयोनिद्धयम् । वेदी च प्राच्यां द्विह-स्तिविस्तृतेति विशेषः । द्विमुखदशमुखशतमुखेषु तु निर्णयावसरे सिन्निवेश उक्तः कर्ता सुदिने मासपन्नादि संकीत्यं श्रीकामादिर्श्वहपी-डानिवारणकामो वाऽयुतहोमं लन्नहोमं वा करिष्य इति संकल्प्य । गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-माहपूजा—(वसोर्खारा श्रायुष्यमंत्रजपः) वृद्धिश्राद्धाचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत्रायुतहोमे चत्वार ऋत्विजो द्वी वा । लन्नहोमे द्वादशाष्टी चत्वारो वा । कोटिहोमेऽष्टी होमार्थं चत्वारो द्वारजापका इति द्वादश । श्रयुतलन्नकोटिहोमेषु त्रिष्वपि योडश वा । ब्रह्माचार्यावप्येतन्मध्य एव सर्वत्र ।

वरणमन्त्रास्तु---

श्राचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः । तथा त्वं मम यहोऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत् ॥ १ ॥ यथा चतुर्भुखो ब्रह्मा स्वर्गलोके पितामहः । तथाऽस्मिन्मम यहो त्वं ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥ २ ॥ श्रस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया। सुमसन्नाः पक्कवन्तु शान्तिकं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥

(कोटिहोमे तु गुरुपार्थना)

त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् । त्रत्प्रसादेन विपर्षे ! सर्वे मे स्यान्मनोगतम् ॥ ४ ॥ स्रापद्विमोत्ताय च मे क्रुरु यज्ञमनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थे सावकामिकमिति ॥ ४ ॥

ततः सर्वानाचार्यादीन् स्वशाखीयानामृत्विक्शाखीयानां च पदा-र्थानामनुसमयेन मधुपर्केण संपूज्य शुक्कमाल्याम्बरानुलेपनः सप-स्नोक ऋत्विक्सहितो भद्रं कर्णेभिरिति वेदघोषेण मण्डपं प्रदृत्ति-णीक्कत्य पश्चिमद्वारेण प्रविशेत्। तत श्राचार्यो--- यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा । स्थानं त्यक्ता तु तत्सर्वे यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥ १ ॥ श्रपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् । सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥ २ ॥

इति सर्षपान्विकीयं शुची वो हब्येति एतोन्विन्द्रमिति च तृचाभ्यां श्रापो हि ष्टेत्यादिभिश्च भुवं प्रोच्य स्वस्त्ययनं तार्श्यमिति ऋग्द्रयं पठेत्। ततो मग्डपिनऋतिभागे हस्तमितां वेदिं छ्त्वा तस्यां वस्त्रं प्रसार्थ्यं तत्र सुवर्णादिशलाक्त्या नव रेखाः प्राक्पश्चिमा-यता नव च दिल्लाच्यायताः छत्वा मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीछत्य प्रतिकोगं त्रिषु पदेषु सूत्रं दद्यात्। तथा चतुविं शतिरर्द्धपदीन सम्प-द्यन्ते। मग्डलस्याग्नेयादिषु कोगेषु शंकुचतुष्ट्यं निस्ननेयुः।

तत्र मन्त्रः---

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः । मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु श्रायुर्वलकराः सदा ॥ इति मन्त्रेण निरवाय ॥ १ ॥

ततो बलिदानम्-

श्राप्रभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः।
तेभ्यो विलं प्रयच्छामि पुण्यमोदनम्रुत्तमम् ॥१॥
नैर्ऋत्याधिपतिरचैव नैर्ऋत्यां ये च राचसाः।
बिलं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्धन्तु मन्त्रितम्॥२॥
ॐ नमो वायुरचोभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः।
बिलं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनम्रुत्तमम्॥३॥
स्द्रेभ्यरचैव सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः।
बिलं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्धन्तु सत्तोत्मुकाः॥ ॥॥
स्दि मन्त्रैः शंकुपार्थ्वेषु यथाकमं प्रतिमन्त्रं मायभक्तवलीन्दत्वा।
श्रान्तिर्यशोवती कान्तिर्विशाला प्राणवादिनी सती सुमना नेदा सुमदा

इति नव प्रागायतरेखादेवताःपूजियत्वा हिरएया सुप्रभा लद्मीविभूति-विमला प्रिया जया काला विशोका इति नवदित्त्णोत्तरायतरेखादेव-ताश्च सम्पूज्य । मध्ये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वास्तुपुरुषमावाह्य वास्तोष्पते प्रतीति सम्पूज्य । वर्लि च दत्वा मध्यपदचतुष्टये वास्तो-हू द्ये ब्रह्माणमावाह्य पूजियत्वा ॐ ब्रह्मणे नमो वर्लि समर्पयामीति पायसवर्लि द्यात् ॥ १॥

ततः पूर्वपदद्वये दिच्चिणस्तनेऽर्यम्णे नमः॥२॥ दिच्चिणपदद्वये जठरदिच्चिणभागे विवस्वते नमः॥३॥ पश्चिमपदद्वये वामभागे मित्राय नमः॥४॥ वामस्तने पृथिवीधराय नम इत्युदकपदद्वये॥५॥ श्रिकोणसूत्रद्विधाकृतपदद्वयोत्तरार्द्वद्वये दिच्चिणहस्ते

> सावित्राय नमः ॥ ६ ॥ दक्तिणाद्भद्वये सवित्रे च ॥७॥

प्वं नैऋत्यपदद्वयपूर्वार्द्धपदद्वये द्वषणयोर्विबुधाधिपाय० ॥=॥
तत्पश्चिमार्द्धये उरसि अद्भयः० ॥६॥
दित्तणार्द्धये मुखे आपवत्साय० ॥१०॥
ततोऽन्त्यपंक्तिगते ईशानपददित्तणार्द्धे शिरसि शिखिने० ॥११॥
तद्दिणवाही सूर्याय० ॥१२॥
तद्दिणयोर्दित्तिणवाहावेव सत्याय० ॥१३॥

केषांमते एवं कमः—मध्यपदचतुष्टये वास्तोह दये बद्धाणे ॥१॥ तत्पूर्व-पदद्वये दक्षिणस्तने अर्थमणे ॥१॥ तद्दक्षिणपदद्वये जठरदक्षिणभागे विवस्वते ।॥३॥ पश्चिमपदद्वये वामभागे मित्राय ॥॥॥ उदक्पदद्वये वामस्तने प्रथिवी-भराय ॥५॥ अभिकोणसूत्रद्विधाकृतपदद्वयोत्तरार्द्धे दक्षिणहस्ते सावित्राय ॥६॥ तद्दक्षिणार्द्धे पदे सवित्रे ॥॥॥ एवं नैत्रत्यपद्दये पूर्वार्द्धे द्वये बुष्णयोविंबुषा-भिपाय ॥८॥ तत्पश्चिमार्द्धे जयन्ताय ॥५॥ वायव्यपददक्षिणार्द्धे वामहस्ते राजयक्ष्मणे ॥१०॥ उत्तरार्द्धे रहाय ॥११॥ ईशानपदोत्तरार्द्धे हरसि अद्धाः ।॥१२॥ दक्षिणार्द्धे सुष्के आपवस्ताय ॥१३॥ दक्षिणार्द्धे सुष्के आपवस्ताय ॥१३॥ ततोऽन्त्यपंक्तिगते ईशानपददिक्ष-

तद्दिणे स्यार्दे दिचणकूर्परे भृशाय० ॥१४॥ तइक्षिणभवाही आकाशाय० ॥१४॥ तत्पश्चिमार्द्धे दिचणप्रवाहावेव वायवे० ॥१६॥ तत्पश्चिमद्वये दिनाणोरौ यमाय० ॥१७॥ तत्पश्चिमयोर्देक्तिएजानौ गन्धर्वाय० ॥१८॥ तत्पश्चिमे सार्द्धे पदे दिचणजङ्घायां भूकराजाय ।।।१६॥ तत्पश्चिमे नैऋत्यपदार्द्धे दित्तरणस्फिचि मृगाय०॥२०॥ सदुत्तरार्द्धे पादयोः पितृभ्यः० ॥२१॥ तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिचि दौवारिकाय० ॥२२॥ तदुत्तरयोवीमजङ्घायां सुग्रीवाय० ॥२३॥ तदुत्तरयोर्वामजानौ पुष्पदन्ताय० ॥२४॥ तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय० ॥२४॥ तदुत्तरयोवीमपारवें सुराय० तदुत्तरे सार्द्धे पदे वामपार्श्वे शेषाय० ॥२७॥ सदुत्तरे वायव्यार्के वाममणिवन्धे पापाय० ॥२८॥ त्रस्थागर्द्धे वामप्रवाही रोगाय०॥ २६॥ तत्माक्-सार्दे वामभवाहावेव बाहवे० ॥ ३० ॥

 तत्माक्द्रये वामकूर्परे मुख्याय०॥ ३१॥
तत्माक्द्रये वामवाही भन्ताटाय०॥ ३२॥
तत्माक्द्रये वामवाहावेव सोमाय०॥ ३२॥
तत्माक्द्रये वामांसे सर्पाय०॥ ३४॥
तत्माक्द्रये वामांसे सर्पाय०॥ ३४॥
तत्माक्सार्जे वामश्रोत्रे ब्रादित्यै०॥ ३४॥
तत्मागर्जे वामनेत्रे दित्यै०॥३६॥ इति पट्त्रिंशहेवताः॥
तत उत्तरे वास्तोष्यत इति वास्तोष्यतये०॥

ततो मण्डलाद्वहिरीशानादिषु चरक्यै० विदार्थै० पूतनायै० पापराच्चस्यै०॥ ततः पूर्वादिषु स्कन्दाय अर्थ्यम्णे जुम्मकाय पिलि-पिच्छाय॥ पुनः पूर्वादिषु इन्द्रादीन् । ततो मण्डलादीशाने कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं तत्वायामीत्यावाद्य पूजयेत्।

यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा । तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञे स्थिरो भव।।१॥ इति प्रार्थयेत्॥

॥३१॥ तदुत्तरयोवांमजङ्कायां सुप्रीवायः ॥३२॥ तदुत्तरयोवांमजानी पुष्पदन्तायः ॥३६॥ तदुत्तरयोवांमोरी वदणायः ॥३४॥ तदुत्तरयोवांमपाइवें असुरायः ॥३५॥ तदुत्तरे वायव्याद्धें वाममणिबन्धे वामप्रायः ॥ १० ॥ तत्र्यागद्धें वामप्रवाहौ रोगायः ॥ ३८ ॥ तत्र्याक्ताद्धें वामप्रवाहौ रोगायः ॥ ३८ ॥ तत्र्याक्ताद्धें वामप्रवाहौ रोगायः ॥ ३८ ॥ तत्र्याक्ताद्धें वामवाहौ भव्द्यायः ॥ ४६ ॥ तत्र्याक्त्रयं वामवाहोवेव सोमायः ॥ ४१ ॥ तत्र्याक्त्रयं वामवाहोवेव सोमायः ॥ ४१ ॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवाहोवेव सोमायः ॥ ४१॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवाहोवेव सोमायः ॥ ४१॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे अदित्ये ॥ ४१॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे वित्ये ॥ ४२ ॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे अदित्ये ॥ ४१॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे वित्ये ॥ ४५ ॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे अदित्ये ॥ ॥ ४५ ॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे अदित्ये ॥ ॥ ४५ ॥ तत्र्याक्त्राद्धें वामवीत्रे व्यविद्धं इन्द्रादीत् । सद्या । इन्द्रायः अन्त्रयः वामविद्यं वामविद्यं सर्वान् व्यविद्धं क्त्रयादि प्रवीदिष्ठं क्रन्द्रादिष्ठं नः प्रवीदिष्ठं इन्द्रादीत् । स्वया । इन्त्रयाद्यं वामविद्यं सर्वान् वामविद्यं सर्वान्यं सर्वावे सर्वान्यं सर्वान्यं सर्वान्यं सर्वावे स्वावन्यं सर्वावे सर्वावे

तत उदुम्बरादि—समित्तिलाज्यैः स्वतन्त्रस्थिष्डलेऽष्टाविशिति-रष्टौ वा प्रत्येकं तत्तन्त्राममन्त्रेहुँत्वा वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च हुत्वा ॐ वास्तोष्पतये इति मन्त्रेण पञ्चिवव्यफलानि हुत्वा स्विष्टकृदादि-पूर्णाहुत्यन्तं कुर्यात् । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसविल दत्वा कृष्णुष्वपाज इति त्रिस्कादिना मंडपं त्रिस्च्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिषिच्य पुनः सम्पूच्य यथाशिक दित्ताणां दत्वा ब्राह्मणा-म्भोजयेदिति ।

शारदातिलके तु होमो नोकः । तिलाज्यादिद्रव्याणां विकल्प इति त्रत्थान्तरे । इति वास्तुपूजा ॥ मात्स्ये—उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनमिति । पात्रे—उपवासी भवेदेवमशक्तौ नक्तमिष्यत इति । सद्योऽधिवासनं चाथ कुर्याद्यो विकलो नर इति तत्रैवोक्तम् ॥

ततो वास्तुमण्डलात्पाञ्चमिदिशि स्वतन्त्रकुण्डे स्थण्डिले वा पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमिन प्रतिष्ठाप्य मह्मोपवेशनादि—आज्यभागान्तं कृत्वा प्रणवध्याहृतिपूर्वकैः
स्वाहान्तेस्तरान्मन्त्रः भौतुम्बरादि—समित्तिलाज्यैर्मण्डलदेवतास्यः प्रत्येकमृष्टाविशतिमृष्टौ वाऽऽहुतीहु त्वा वास्तोष्यत इति चतुभिर्मन्त्रेश्च वा हुत्वा
ॐ वास्तोष्यते ध्रुवा स्थूणामिति मन्त्रेण पञ्चवित्वफलानि तद्वीजानि वा हुत्वा
हृदं वास्तोष्यतेथातं त्यजेत् । ततो महान्याहृतिहोमादिस्वष्टकृद्वोमान्तं विधाय
पूर्णाहुति जुहुयात् । सा यथा । अन्यदाज्यमाज्यस्थाल्यां मिरूप्याविधित्य सुक्सूचौ कुशैः सम्मार्ज्य आज्यमुद्धास्य वृद्ध्य अवेश्य पालास्यां स्वृच्चि सुवेणाञ्च्यं
द्वादशगृहीतं गृहीत्वा समिषमादाय दक्षिणे वाहौ यजमानेनान्वाऽरब्धः । सस तै
अग्ने समिध इति पूर्णाद्वति हुत्वा हृदमग्नये न मम इति त्यागं विधाय संस्रवन्
प्राश्नादि तन्त्र विधाय समापयेत् । शारदातिलके तु होमो नोक्तः। तिलाज्यादिव्हव्याणां विकल्प इति प्रन्थान्तरे । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसविल दृत्वा
कृणुष्वपाज इति सूक्तादिना मण्डणं त्रिष्टुच्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिष्टन्त्य प्रनः सम्पूज्य यथाशक्तिदक्षणां द्वा बाह्मणान्मोजयेत् । हति वास्तुपुजा समारा ।

श्रथ मण्डपपूजा ॥ तत्राऽऽदी मण्डपपोडशस्तमभपूजनम् । मध्ये ईशानस्तम्मे । पूछोहि वित्रेन्द्र० ॥ १ ॥ ईसप्रष्टसमारूढ० ॥२॥ भावा-द्वयाम्यद्वं देवं • ॥६॥ विश्वरूपं निराधारं ० ॥४॥ श्रधिवासनं चैवं तत्र द्वारपूजा। पूर्वद्वारे द्वारिश्रये नमः। अध्वे देहल्ये नमः श्रधः वामदिज्ञ एतम्भयोगीशाय स्कन्दाय नमः। द्वार-स्थितकलशद्वये गंगाये यमुनाये। दिज्ञ णद्वारे द्वारिश्रये नमः। अध्वे देहल्ये श्रधः स्तम्भयोः पृष्पदन्ताय० कपित्ने०कलशद्वये गोदावर्थे० छण्णाये इति। पश्चिमे द्वारिश्यये० अध्वे देहल्ये० श्रधः स्तम्भयोः निन्देने चएडाय नमः। कलशद्वये रेवाये० ताप्ये नमः। उत्तरे द्वार-श्चिये० अधः देहल्ये० श्रधः स्तम्भयोः महाकालाय नमः। भृक्षिणे नमः। कलशद्वये वाण्ये० वेष्ये नमः। इति द्वारपूजा॥

ॐ ब्रह्मयज्ञानं॰ ॐ भूः॰ ब्रह्मणे नमः इति गन्धादिभिः पूजवेत् । प्रार्थयेत् । प्रार्थना-वेदाधाराय यज्ञाय० ॥१॥ कृष्णाजिनाम्बरधर० ॥२॥ इति प्रार्थना ।

ॐ सावित्र्ये नमः । वास्तुदेवतायै०। ब्राह्मचै० । गङ्गायै० । स्तम्भमान्त्रस्य ।

🕉 कर्ध्व जबुण इति जपः । स्तम्भशिरसि नागमात्रे नमः।

ॐ आयं गौरिति शास्त्रावन्धनाचनुमन्त्रेण । यतो यतः इति मन्त्रजपः ॥१॥ एवं सर्वत्र स्तम्भमान्स्य अर्ध्व वषुण इति जपादिकं कुर्यात् ।

श्रथाग्नेयस्तम्मे — आवाहये तं ।। १ ।। पद्मनाम ह्यीकेश ।। ।। ॐ इदं विष्णु ० ॐ भू ० विष्णवे नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—नमस्ते पुरुदशिकाक्ष० ॥१॥ देवदेव जगन्नाथ० ॥१॥ इति सम्वार्थ्य । ॐ सक्ष्ये० । ॐ आदित्याये० । ॐ वैष्णव्ये० । ॐ कर्ष्व उपुण्र०

स्तम्भालम्भादि पूर्ववत् ॥ २ ॥

अथ नैऋतिस्तम्भे०—एढोहि गौरीश० ॥ १ ॥ गङ्गाघर महादेव० ॥ ६ ॥ ॐ नमः शम्भवाय च० ॥ ३ ॥

ॐ भु॰ शङ्कराय नमः । इति गन्धादिभिः सम्यूज्य । प्रार्थयेत् । प्रार्थना—वृषवाहनदेवाय॰ ॥ १॥ पञ्चवकत्र वृषारूढ० ॥ इति सम्बार्थ्ये ॥ ॐ गौर्य्ये नमः । ॐ माहेश्वर्ये० । ॐ शोभनाये० । ॐ कर्ष्यं उतुण० ॥ इति स्तम्मालम्भः ॥ ३ ॥

अथ वायव्यस्तम्से—एकोहि वृत्रका० ॥ १ ॥ शचीपते महावाहो० ॥ २ ॥ ः ॐ त्रातारमिन्द्रमविता० ॥

ॐ भू० हन्द्राय नमः । गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् । प्रार्थना—पुरन्दर नमस्ते तु० ॥१॥ देवराज गजारूद० ॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐ हन्द्राण्ये० । ॐ भादन्ताये० । ॐ विभूत्ये० । ॐ कर्ष्व उपुण० ॥ इति स्तम्माळम्मः ॥ ४ ॥ श्रथ तोरणपूजा—तत्र पूर्वे विहर्षस्तमात्रे वदतोरणमाश्वत्यं वा सुदृद्धनामकं सुशोभनन।मकं वा शंखाङ्कितमिनमीले इति मन्त्रेण न्यस्य सम्पूज्य राहुवृहस्पती तत्र न्यसेत् पूजयेश्व। तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र मही चौरिति भूप्रार्थना। श्रोषधयः समिति यवप्रसेपः। श्राकलशेष्विति कलश्विधानं। इमं मे गङ्गा इति जलपूरणम्। गन्धद्वारा-मितिगन्धं प्रितृपेत्। या श्रोषधीरिति सवौषधीः। श्रोषधयः समिति

प्वं मध्यस्थान् ईशानादिकोणस्थान् चतुरः स्तम्भानम्यर्च्य पुनर्वाह्ये ईशान-कोणादारम्य द्वादशस्तम्भान्युजयेत् ।

तद्यथा—अथ वाह्येशानकोणे भावाहयेतं द्विमुर्ज दिनेशं ।।।।।पग्रहस्तमहावाहो । १। ॐ भाकुण्णेन । ॐ भू० सूर्याय नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—नमः सवित्रे० ॥ १॥ पग्नहस्त रथास्ट० ॥ २॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐ सूर्य्ये० । ॐ भूत्ये० । ॐ सावित्र्येः । ॐ मङ्गलाये० । ॐ ऊर्ध्व उपुण० । इति स्तम्भालम्मः ॥ ४॥

ईशानपूर्वयोरम्तरालस्तम्मे --आवाहयेतं गणराजदेवं०॥१॥ लम्बोदरं महाकाय०॥ २॥ ॐ गणानान्त्वा०॥ ॐ भू० गणपतये०॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य। प्रार्थयेत्।

प्रार्थना - नमस्ते ब्रह्मरूपाय० ॥१॥ छम्बोदरमहाकार्य० ॥ २ ॥ इति संप्रार्थ्य ॥ ॐ सरस्वत्ये० । ॐ विध्नहराये० । ॐ अर्थ्व उषुया० ॥ इति स्तम्भाकम्भः ॥ ३ ॥

पूर्वामे सोरन्तरालस्तम्मे—एचेहि दण्डायुष्ट ॥१॥ विद्यापुसादिसंयुक्त०॥ १॥ ॐ यमाय० त्वाङ्गिरस्वते०॥ ॐ भू० यमाय० नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य ॥ प्रार्थवेत्॥

 यवान् । काण्डात्काण्डादिति दूर्वा । अश्वत्थेव इति पञ्चपत्तवान् । स्योनापृथिवीति पञ्चमृदः । याः फिलनीरिति फलम् । सिहरत्नानीति पञ्चरत्नानि। हिरण्यक्षप इति हिरण्यम् । युवा सुवासा इति बस्नादिना वेष्टयेत् । पूर्णादवीरिति पूर्णपात्रमुपरि निद्ध्यात् । तत्र भ्रुवावाहनं पूजनं च । ततो दिल्ले श्रीदुम्बरं प्लाचं वा सुभद्रं विकटं वा सकाद्वितं तोरणमिषेत्वोज्जेंत्वेति निधाय । चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र धरामावाद्य पूजयेत् । ततः पश्चिमे प्लाचमीदुम्बरं वा सुकर्मसुभीमं

इति गन्धादिभिः सम्यूज्य प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना — नमः खेटकहस्तेभ्य० ॥ खङ्गखेटघराः सर्वे० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ मध्यमसम्ध्यायै० ॥ ॐ घरायै० ॥ ॐ पद्मायै० ॥ ॐ महा-पद्मायै० ॥ ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० स्तम्भा० ॥८॥

श्रधाग्नेयद्त्तिणयोरन्तराले ॥ आवाहयामि देवेशं ॥१॥ मयूरवाहनं शक्ति ॥२॥ ॐ यदकन्दः प्रथमं ॥

ॐ भू ॰ स्कन्दाय नमः इति गन्धादिभिः सम्यूज्य ॥ प्राथयेत् ॥

प्रार्थना —नमः स्कन्दाय शैवाय० ॥ मयूरवाहनस्कन्द० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ पश्चिमसन्ध्यायै नमः ॥ अर्ध्व अपुण् इति स्तम्भास्तमः ॥९॥

श्रथ द्त्तिण्नैऋत्यान्तरालस्तम्मे ॥ आवाहवामि देवेशं ॥ ॥ खन्नहस्त-महावेगं ॥ २॥ ॐ वायो येते ॥

ॐ भू० वायवे नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ॥ प्रार्थना-नमो धरणिपृष्ठस्य० ॥ धावन्धरणिपृष्ठस्य० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐवायव्यै० ॥ ॐगङ्गायै० ॥ ॐगायव्यै० ॥ ॐमध्यमसन्ध्यायै०॥

ॐ अर्ध्व अपुण० ॥१०॥

द्राध नैत्रप्तृत्यस्तम्मे--आवाहयामि देवेशं ा। ॥ सुधाकरं हिजाधीशं ॥ ॥ ॥ ॥ अ आप्यायस्व ॥

ॐ भू० सोमाय नमः ॥ इति ग्रन्थादिभिः सम्पूज्य ॥ पार्थयेत्॥ प्रार्थना—अत्रिपुत्र नमस्तेऽस्तु० ॥ अत्रिपुत्र निशानाथ० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ सावित्र्ये० ॥ ॐ असृतकलाये० ॥ ॐ विजयाये० ॥ ॐ पश्चिमसन्ध्याये० ॥

ॐ कर्ध्व जयुण ।॥ इति स्तम्भात्ममनम् ॥११॥

वा गदाङ्कितं तोरणमन्न आयाहीति न्यस्य सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत्। ततः पूर्ववत्कलशं स्थापियत्वा तत्र वाक्पत्यावाहनपूजनादि। तत उत्तरे न्यमोधमाश्वत्थं पालाशं वा सुद्दोत्रं सुप्रभं वा पद्माङ्कितं तोरणं शत्रो देवीरिति निधाय पूजितं कृत्वा सोमं केतुं शनिं च तत्र न्यसेत्। ततः कलशं स्थापियत्वा तत्र विध्नेशावाहनपूजनादि। ततः पूर्वद्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दथ्यच्चता-दियुक्तं पूर्ववत्स्थापयेत्। परावतं कलशद्वयं न्यस्यार्चयेत् । तत्र पूर्वस्मन् ऋग्वेदिनावृत्विजी द्वी एकं वा शान्तिस्कजपार्थत्वेन त्वामहं वृणो इति प्रत्येकमृत्वेदः पद्मपत्राचो गायत्रः सोमदैवतः।

श्रथ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्यस्तम्मे — आवाह्यामि देवेशं ॥१॥ गम्भीरथस-मारूढं ॥२॥ ॐ इमं मे वहण ॥ ॐ भू वहणाय नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना-वरुणाय नमस्तेऽस्तु । नमः स्फटिकवर्णाभ । ॥ इति सम्प्रार्थः । ॐ वारुण्यै । ॐ पाशधारिख्यै । ॐ बृहत्यै । ॐ कर्ध्वं क्रष्टुण । इति स्तम्भात्रम्भः ॥ १२॥

अथ पश्चिमवायव्यान्तरालस्तम्से — भावाहयामि देवेशान् ॥ १॥ शुद्ध-स्फटिकः ॥ २॥ ॐ वसोः पवित्रः ॥ ॐ भूः भष्टवसुभ्यो नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना-नमस्करोमि देवेशान् । दिव्यवस्ता दिव्यदेहा ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ विनतायै ॥ ॐ अणिमायै ॥ ॐ भूत्यै ॥ ॐ गरिमायै ॥ ॐ उर्ध्व उसुण ॥ इति स्तम्भालम्भः ॥ १३ ॥

अथ बायव्यस्तम्मे—भावाहयामि देवेशं ॥१॥ दिव्यमालाम्बरधरं ॥२॥ ॐ सोमो धेर्नु ॥ ॐ भू धनदाय नमः ॥ इति सन्धादिभिः सम्पूच्य प्रार्थयेत्॥

प्रार्थना-यक्षराज नमस्तेऽस्तु० ॥ दिव्यदेहधराध्यक्ष० । इति सम्प्रार्थ्य । क छिमायै० ११ के सिनीवाल्यै० ॥ के ऊर्ध्व छपुण० ॥ इति स्तम्भात्रमाः ॥ १४ ॥

अधोत्तरवायव्यान्तरासस्तम्भे—आवाह्यामि देवेशं ॥ १॥ शङ्खं च कलशं चैव० ॥ २॥ ॐ वृहस्पतेऽअति० ॥ ॐ मू० गुरवे नमः ॥ इति गन्धा-दिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् । श्रित्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भवेति वृत्वाऽग्निमील इति पूजयेत्।

पृद्धेहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश । संवीज्यमानोऽष्सरसां गर्धेन रच्चाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेतीन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सग्र-किकं द्वारकलशे श्रावाद्य श्रातारांमन्द्रमिति पूजियत्वाऽऽद्यः शिशान इति पताकां पीतं ध्वजं चोच्छ्रयेत् । तत पेरावतस्थं पीतवर्णं सह-स्नाचं दिच्चणवामहस्तस्थवज्ञोत्पलिमन्द्रं ध्यात्वा ।

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वजहस्तो महाबलः । शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वो इन्द्राय साङ्गाय संपरिवाराय सायुघाय संशक्तिकायै-तं माषमकविल समर्पयामीति विलं द्यात्। तत आवम्याऽऽग्ने-यकोणे पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र पुण्डरीकममृतं च सम्पूज्य—

एहा हि सर्वामरहन्यबाह मुनिषवर्येरभितोभिज्ञष्ट । तेजोवता लोकगणेन सार्द्ध ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते॥

भो श्रम्ने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिकमिन कलशे श्राबाह्य त्वन्नो श्रम्तेत्यिन सम्पूज्यान्नं दूतिमिति रक्तां पताकां रक्तं भवजं चोरुछ्र्येत्। तत छागस्यं रक्तं दित्तिणवामकरभृतशक्तिकमण्डलुं यक्षोपवीतिनं शक्तिं ध्यात्वा—

प्रार्थना-त्रंग्रयुत्र नमस्तेऽस्तु । पूजितोऽसि ययाशक्त्या । इति सम्मार्थ्य ॥ ॐ पूर्णिमापै नमः ॥ ॐ सावित्र्ये नमः । ॐ कर्ध्व क्षपुष् । इति स्तम्भाकम्भ० ॥ ११ ॥

श्रधोत्तरेशान्यान्तरालस्तम्से — आवाह्यामि देवेशै० ॥१॥ त्रैकोक्यसू-त्रक्तांरं०॥२॥ ठॅ० विश्वकर्मन् इविषा०॥ ॐ भू० विश्वकर्मण०॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना-नमामि विश्वकर्माणं ॥ प्रसीद विश्वकर्मस्त्वं ॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐसिनीवार्वे ॥ ॐवास्तुदेवताये ॥ ॐसाविष्ये ॥ ॐऊर्ध्व ऊषुण ॥ स्तम्भा ॥ इति स्तम्भपूजा ॥ १६॥ श्राप्रेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः। धूम्रकेतु रजोध्यत्तस्तस्मै नित्यं नमो नमः॥ इति नत्वा।

श्रास्ये साङ्गाय॰ पतं माषमकविलं समर्पयामीति विलं दयात्। ततः इताचमनो दिल्गो गत्वा । प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत्कलशद्वयं स्थापियत्वा वामनं दिग्गजं तत्राचयेत्। ततो यजुर्वेदिनौ द्वावेकं वा दिल्गाद्वारे शान्तिस्कजपार्थत्वेन त्वामहं वृण इत्युक्त्वा—

कातराचो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः । काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ इति प्रत्येकं सम्प्रार्थ्यं इषे त्वोज्जें त्वेति पूजयेत्--

ततः — एहा हि वैवस्वत धर्मराज सर्वापरैरचित धर्ममूर्ते । शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते॥

भो यम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादि यममावाह्य यमाय सोम-मिति सम्पूज्य कृष्णां पताकां कृष्णं ध्वजं चायं गौरित्युच्छ्र्येत्। ततो महिषारूढं धृतदण्डपाशं दिल्लागामकरमञ्जनपर्वततुल्यकप-मग्निसमलोचनं यमं ध्यात्वा--

महामहिषमारूढं द्रग्डहस्तं महावलम् । स्माबाह्यामि यज्ञेऽस्मिन्यूजेयं प्रतिगृत्वताम् ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय यमायैतं मापमक्तवितं समर्पयामीति बर्लि दद्यात्। ततः आचम्य नैऋत्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा कुमुद्रगजं दुर्ज्जयं च सम्पूज्य--

पृद्धं हि रत्तोगरानायकस्त्वं विशालवेतालिपशाचसङ्घैः। ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते।।

भो नित्रहते इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गमात्राह्यासुन्वन्तमिति सम्पूज्य नीलां पताकां नीलध्वजं च मोषुणमन्त्रेणेति उच्छ्येत्। सतो नरारुढं खद्गहस्तं नीलवर्णे महावलं महाकायं बहुराक्षसंयुतं नित्रहति ध्यारवा-- निऋतिं खङ्गहस्तं च सर्वलोकैकपावनम् । श्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय निर्ऋतये एतं माषभक्तवलिं समर्पयामीति वलिं द्यात्। तत स्राचम्य पश्चिमे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं निधा-याञ्जनदिग्गजं न्यस्यार्चयेत्। ततः सामगावृत्विजावृत्विजं वा वृत्वा।

सामवेदस्तु पिङ्गाचो जागतः शक्रदैवतः । भारद्वाजस्तु विपेन्द्र ! शान्तिपाठं मखे कुरु ॥ इति प्रार्थ्य । अग्न आयाद्यीति पूजयित्वा ।

ततः-एहा हि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः। विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्तमस्ते ॥

इत्युक्त्वा भो वहणेहागच्छेह तिष्ठेति वहणमावाह्य तत्वा-यामीति सम्पूज्य श्वेतां पताकां श्वेतां ध्वजं चेमं मे वहणेत्यु-चिछ्कृत्य मकरम्थं पाशहस्तं किटीटिनं श्वेतवर्णे वहणं ध्यात्वा ।

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां पतिमीश्वरम् । स्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्वरुणाय नमो नमः॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय वरुणायैतं माषभक्तविलं समर्पयामीति विलं दद्यात् । ततोपस्पृश्य वायव्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा पुष्पदन्तं सिद्धार्थे च तत्र पूजयित्वा ॥

एहा हि यहे मम रत्ताताय मृगाधिरूटः सह सिद्धसङ्घैः । माणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूर्णा भगवन्नमस्ते ॥

भो वायो इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं वायुमाबाह्य तव वायवृतस्य त इति सम्पूज्य वायो शतमिति धूम्रां पताकां धूम्रध्वजं चोच्छित्य मृगारूढं चित्राम्बरधरं युवानं वरध्वजधरं दित्तगुवामहस्तं वायुं ध्यात्वा॥

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्गतिम् । ष्ट्राबाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ध्यनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि । तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि ते ॥ इति नत्वा।

साङ्गाय वायवे एतं भाषभक्तवितं समर्पयामीति वितं दद्यात् । तत् श्राचम्योत्तरे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशहयं स्थापियत्वा सार्व-भीमं दिगाजं न्यस्य पूजियत्वाऽथर्वविदावृत्विजावुत्तरहारे शान्तिस्कजपार्थत्वेनाऽहं वृण इत्युक्त्वा ।

हहन्नेत्रोऽयर्षवेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः । वैशम्पायन विशेन्द्र शान्तिपाठं मखे क्ररु ॥ इति प्रार्थ्य । शन्नो देवीरिति पूजयेत् ।

एहा हि यहरवर यहरचां विधत्स्व नचत्रगर्णेन सार्द्धम्। सर्वोषधीभिः पितृभिः सर्हेव गृहारण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भो सोम इहागच्छेह तिष्ठेति साझं सोममावाद्य वयं सोमेति सम्पूज्य हरितां पताकां हरितध्वजं चाप्यायस्वेति न्यस्य । नरपुष्पकविमानस्थं कुण्डलहारकेयूरसंशाभितं वरदगदाधरदित्तण-वामहस्तं मुकुदिनं महोदरं स्थूलकायं हस्वं पिङ्गलनेत्रं पीतवित्रहं शवससायं सोमं ध्यात्वा।

सर्वनत्तत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः। तस्मै सोमाय देवाय नत्तत्रपतये नमः॥ इति नत्वा।

साङ्गाय स्रोमायैतं मायभक्तवृत्तिं समर्पयामीति वर्ति द्यात्। तत र्शान्यां गत्वाऽऽचम्य पूर्ववत्कलशंस्थापयित्वा सुप्रतीकनामानं विगाजं मङ्गलं च तत्र पूजयित्वा।

एक्रोहि विश्वेश्वर निस्नश्चलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् । लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्धच्ये गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।

ईशानेद्दागच्छेद्द तिष्ठेति तमावाद्य तमीशानमिति सम्पूज्य श्वेतां सर्ववर्णी वा पताकां ध्वजं चाभित्वा देवसवितरित्युच्छित्य । वृषारुढं वरदित्रग्रज्ञयुतदित्त्व्यवामद्दस्तद्वयं त्रिनेत्रं स्फटिकः वर्णमीशानं ध्यात्वा— वृषस्कन्धसमारूढं श्रूलहस्तं त्रिलोचनम् । श्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्क ईश्वरः । श्रूलपाणिविरूपात्तस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा—

साङ्गायेशानायैतं माषभक्तवर्षि समर्पयामीति वर्षि दद्यात्। तत त्राचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्ये गत्वा पूर्ववत्कलशं संस्थाप्य स्ननन्तं पूजयेत्।

एह्येहि पातालघरामरेन्द्रनागाङ्गनाकित्ररगीयमान । यत्त्रोरगेन्द्रामरलोकसङ्घरनन्त रत्त्राध्वरमस्पदीयम् ॥

भो अनन्त इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गमनन्तमावाह्यायं गौरिति-स्योना सम्पूज्य पृथिवीति मेघवर्णां श्वेतां वा पताकां ध्वजं चायं गौरित्युच्छित्य । अनन्तशयनासीनं फणासप्तकमणिडतं । पद्म-शङ्खधरोध्वांघोदित्तणकरद्वयं चक्रगदाधरोध्वांघो वामकरद्वयं नीलवर्णमनन्त ध्यात्वा—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माएडं सचराचरम् । पुष्पवद्धारयेन्मूर्धि तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नस्वा---

साङ्गाय सपरिवारायानन्तायैतं माषभक्तवितं समर्पयामीति वित्तं दद्यात्। तत आचम्य। रूपनारायणमते तु नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्यै गत्वा पूर्ववत्कलशस्थापनं कृत्वा।

एहोहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्द्धे पितृदेवताभिः। सर्वस्य धाताऽस्यमितमभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

भो ब्रह्मिहागच्छेद तिष्ठेति ब्रह्माणमायाद्य ब्रह्मजङ्गानमिति सम्पूज्य । रक्तां पताकां ध्वजं च ब्रह्मजङ्गानमित्युच्छित्य । चतुर्मुखं द्यंसार्द्धमन्तमालाकुशमुष्टिघरोध्वांघो दिल्लाकरद्वयं स्नुवकमण्डलु-घरोध्वांघोवामकरद्वयं शमश्रुलं जिटलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा— पद्मयोनिश्रत्भूतिर्वेदावासः पितामहः । यज्ञाध्यत्तश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय सपरिवाराय ब्रह्मणे पतं भाषभक्तविलं समर्पयामीति विलं द्यात् । रूपनारायणमते नैऋत्यपश्चिमान्तरालेऽनन्तविल्दा-नमीशानपूर्वान्तराले ब्रह्मपूजाविल्दानं चेति । तत आचम्य मण्डप-मध्येऽत्युच्चवराडो दशहस्तदीर्घित्वहस्तविस्तृतः पञ्चहस्तविस्तारो वा महाध्वजः किकिएयादियुक्तस्स इन्द्रस्य बृज्ञ इति स्थाप्यः । तत्रैव ब्रह्मपूजनं च । ततो मण्डपषोडशस्तम्भेषु सर्वोभ्यो देवेभ्यो नमः । वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः । पृष्ठे पन्नगेभ्यो नम इत्यर्चयेत् । ततः पूर्व-भागे उपलित्तभूमावुपविश्य—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धे रत्तां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥
देवदानवगन्धर्वा यत्तरात्तसपन्नगाः ।

ब्रह्मयो मनवो गावो देवमातर एव च॥२॥
सर्वे ममाध्वरे रत्तां प्रकुर्वन्तु सुदान्विताः।
ब्रह्मा विष्णुश्र रुद्धश्र त्तेत्रपालगणैः सह॥३॥
रत्तन्तु मण्डपं सर्वे घ्रन्तु रत्तांसि सर्वतः। इति पठित्वा।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ब्रह्मणे विष्णवे शिवाय देवेभ्यो दानवेभ्यो गन्धवेभ्यो रार्त्तस्थः पन्नगेभ्य ऋषिभ्यो मनुष्येभ्यो गोभ्यो देवमातृभ्यो नमः । इति प्रत्येकं सम्पूज्यं भूमौ माषभक्तविलं दद्यात् । ततो यजमानः सर्वेद्वः तिविभः सद्द प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दिल्णहारपश्चिमदेशे उपविश्य गुर्वादयो यथाविद्दितं कर्म कुरुष्वमिति वदेत् । प्रतिकुण्डमेकेकः कलश ऋत्विभिः स्थाप्य इति केचित् । गुरुणा स्थाप्य इत्यन्ये । ततो ऋग्वेदादिकमात्प्रागादिकुण्डेषु ऋत्विजोऽनिन स्थापयेयुः । ततो गुरुर्यजमानान्वितो ब्रह्वेद्यां सर्वतोभद्रे मण्डल-देवताः स्थापयेयुः । ततो गुरुर्यजमानान्वितो ब्रह्वेद्यां सर्वतोभद्रे मण्डल-देवताः स्थापयेविति पितामहचरणाः ।

यथा—अद्येहेत्यादि मण्डलदेवतास्थापनं कारेष्य इति सङ्करूप स्थापयेत्॥ तत्र मध्ये ब्रह्माणं॥ ब्रह्मयक्षानं गीतमो वामदेवो ब्रह्मा विष्टुप् स्थापने पूजने च विनियोगः॥ एवमुत्तरत्र॥ॐ ब्रह्मयक्षान॥१॥ तत उदोचीमारभ्य वायव्यपर्यन्तं कुवेरादान्वाय्वन्तानष्टौ लोकपा-लान् तत्राप्यायस्व गीतमः सोमो गायत्री॥ ॐ आप्यायस्व०॥ २॥ अभित्वाजीर्गतः शुनःशेप ईशानो गायत्री०॥ ॐ अभित्वा देवसवितः ॥ ३॥ इन्द्रं वो मधुछन्दो इन्द्रो गायत्री०॥ ॐ इन्द्रो वो पश्यत ॥४॥ अगिन काण्यो मेधातिथिरिय्रगायत्री०॥ ॐ अग्निं दृतं वृणीमहे०॥४॥ श्रमाय सोमं यमो यमोऽनुष्टप्॥ ॐ यमाय सोमं०॥ ६॥ मोषुणो घोरः कण्यो निम्नृतिर्गायत्री०॥ ॐ मोषुणः॥ ७॥ तत्त्वायामि शुनःशेपो वहणस्त्रिष्टुप्॥ ॐ तत्त्वायामि०॥ ५॥ वायो शतं गीतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप्॥ ॐ वायो शतं०॥ ६॥ वायुसोममध्येऽष्टौ

पूर्वमिनिस्थापनं तत्वश्चादत्र सर्वतोभद्रस्थापनम् । तदनन्तरमन्निस्थापनमि-ति कमः। यजुर्विदानां तु सर्वतोभद्रस्थापनम् ॥ ततो ब्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलं विकिष्य यजमानान्वितो श्राचार्यो अहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डले देवताः स्थापयेत् । तराया ॥ ब्रह्मयज्ञानमिति प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः॥ ॐ ब्रह्मयज्ञानं० कर्णिकायां ब्रह्माखम्० ॥१॥ वयर्ठ' सोमेत्यस्य बंधूक ऋषिर्गायत्री छन्दः सोमो देवता सोमस्थापने विनियोगः॥ ॐ वयर्ठ' सोमेति उत्तरे वाष्यां ॥२॥ तमीशानमित्यस्य गौतम ऋषिः जगती छन्दः ईशानी देवता ईशान-स्थापने विनि ।। उँ तसीशानं । ईशान्यां खण्डेन्द्री ईशानं ॥३॥ त्रातारमिनद्रमि-स्यस्य गर्गं ऋषि त्रिष्टुष्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः॥ ॐ त्रातार-मिन्द्र० पूर्वे वाप्यां इन्द्रं० ॥ ४ ॥ त्वन्नो ऽत्ररने तव देवेत्यस्य हिरण्यस्तुप आङ्किरस ऋषिः जगती छन्दः श्राग्निर्देवता अग्निस्थापने विनियोगः॥ ॐ त्वन्नो sभ्रग्ने तव॰ भ्राग्नेयां खण्डेन्द्री अर्गिन० ॥ १ ॥ सुगन्तु पन्यामित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्ट्रप छन्दो यमो देवता यमस्यापने विनियोगः ॥ ॐ सुगन्तु पन्था० दक्षिणे वाष्यां यमं ।॥ ६ ॥ श्रमुन्वन्तम इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः निक्तिदेवता निक्तितस्थापने विनियोगः । ॐ श्रमुन्वन्तम० नैऋत्यां खण्डेन्द्रौ निऋति ।। ७ ॥ तत्त्वायामीत्यस्य श्चनःशेष ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः वहणो देवता वरुणस्थापने विनियोगः ॥ ॐ तस्वायामि० पश्चिमे वाष्यां वरुणं० ॥ ८ ॥ आनो नियुद्धिरित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः वायुर्देक्ता वायुस्थापने विनियोगः॥ 🕉 ब्रानो नियुक्तिः वायव्यां खण्डेन्द्रौ वायुं० ॥ ९ ॥ वसोः पवित्रमसीत्यस्य

वस्त् रमया अत्र मैत्रावरुणो वशिष्ठो वसवस्त्रिष्टुण् ॥ ॐ उमया अत्र० ॥ १० ॥ सोमेशानमध्ये पकादशरुद्वान् ॥ आरुद्रासः श्यावाश्व पकादशरुद्दा जगती० ॥ ॐ आ रुद्रा सः ॥ ११ ॥ ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशाहित्यान् ॥ त्यान्तुसां मदोमत्स्यो द्वादशाहित्या गायत्री ॥ ॐ त्यान्तु च्वित्यान् ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्येश्विना राहुगणो गौतमोन्श्विनातुष्णिक् ॥ ॐ अश्विनावर्तिः ॥ १३ ॥ अग्नियमभध्ये विश्वेदेखानस्ये वासस्येश्वनात् । अग्नित्यं स्वाम्स्येश्वना गायत्रो ॐ मासः ॥ १४ ॥ यमनिऋतिमध्ये सप्त यद्वान् । अग्नित्यं वामदेवः सप्त यद्वाः प्रकृतिः । अभित्यं देवं स्वितारमोग्योः कविकतुमचीमि सत्यसवं रत्नधानभित्रियं मति कविम् । अर्ध्वायस्या मतिभा श्विद्युन्तत्सवीमिन्न हिर्यपाणिरिममीत सुकृतः कृष्य श्वः ॥ १४ ॥ निऋतिव्यण्योर्मध्ये भूतनगान् ॥ आयं गौः सार्पराञ्चा सर्पा गायत्रो । ॐ आप्रायं गौः ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्तरसः । अष्तरसान्मीतस ऋष्यश्वः गन्धर्वाप्तरसो गन्धर्वा गन्या गन्धर्वा गन्

गौतम ऋषिः जगती छन्दः वसवो देवता वसुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वसोः पवित्र वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे अष्टवसूत् ॥ १० ॥ नमस्ते इद इत्यस्य परमेष्ठो ऋषिः गायत्रीछन्दः रुद्रो देवता रुद्धस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नमस्ते रुद्धः सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे एकादशस्द्रान् ॥ ११ ॥ श्रदितिश्रौरित्यस्य प्रजापति ऋषिश्चिष्ट्रप छन्द; आदित्या देवता द्वादशादित्यस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अदितियों • ईशानेन्द्रयोर्मध्ये भद्रे द्वादशादित्यात् ॥ १२ ॥ अश्विना तेजसेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिरतुष्टुच्छन्दः स्रश्विनी देवते अश्विनी स्थापने विनियोगः॥ ॐस्रश्विना तेजसा० इन्द्रारम्योर्मध्ये भद्रे श्रश्विनौ० ॥ १३ ॥ विश्वदेवास अत्रागत इत्यस्य परमेष्टो ऋषिः गायत्रीछन्दः विश्वेदेवा देवता विश्वेदेवस्थापने विनियोगः। 🕉 विश्वेदेवास अभागतः ॥ अग्नियमयोर्मध्ये भद्दे विश्वेदेवानसपितृन् ॥ 18 ॥ श्रमित्यं देवमित्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रष्टीखन्दः सप्तयक्षो देवता सप्तयक्ष-स्थापने विनियोगः॥ ॐ अभित्यं देवर्ड० सविता०। यमनिऋतिमध्ये भन्ने सत्तयक्षान् ॥ १४ ॥ भूताय त्वेति पराशर ऋषिः विराट् छन्दः नारायको देवता भूत । वा नमोऽस्तु सर्पेश्य इत्यस्य प्रजापति ऋषिनुष्टुप् छन्दः सर्पे देवता सपस्यापने विनियोगः ॥ ॐ भूताय त्वा ।। वा ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो • निम्हतिवरुणयोर्मध्ये भद्रे भूतनागान् वा सर्पान् ॥ १६ ॥ गन्धर्वस्त्वेति गौतम ऋषिः हिपदा विरार्छन्दः गन्धवा देवता गन्धवंस्थापने विनियोगः॥ णाम् ॥१७॥ ब्रह्मलोममध्ये स्कन्दनन्दीश्वरश्लमहाकालान् ॥
कुमारस्कन्दिख्रिष्टुप् ॥ ॐ कुमारं माता० ॥१८ ॥ ऋषममृषमो
वैराजो ऋषमोऽनुष्टुप् । ॐ ऋषमं मा ॥१६ ॥ ब्रह्मेशानमध्ये दक्तादीन् सप्त । श्रदितिलोंक्यो बृहस्पतिर्दक्षोऽनुष्टुप् । ॐ श्रदितिऽर्ह्म जिनेष्ठः ॥२० ॥२१ ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गा विष्णुं च । तामञ्चवर्षया सीभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् । ॐ तामिन्नवर्णा ॥२२ ॥ इदं विष्णुः
काएवो मेधातिधिविष्णुर्गायत्रो ॥ ॐ इदं विष्णुः ॥२३ ॥ ब्रह्माग्नेयमध्ये स्वधाम् । उदीरतां शङ्कः स्वधा त्रिष्टुप् । ॐ उदीरतां
स्नृताः ॥ २४ ॥ ब्रह्मयममध्ये मृत्युरोगान् । परं मृत्योः
स्नृताः ॥ २४ ॥ ब्रह्मयममध्ये मृत्युरोगान् । परं मृत्योः
संकुसुको मृत्युरोगा-स्त्रिष्टुप् । ॐ परं मृत्यो श्रनु ॥२४ ॥
ब्रह्मनिऋतिमध्ये गण्पतिं ॥ गणानान्त्वा गृत्समदो गण्पतिर्जगती ॥
ॐ गणानान्त्वा० ॥२६॥ ब्रह्मवरुणमध्ये श्रपः ॥ शत्रो वरीषसिधुद्वीप
श्रापो गायत्री ॥ ॐ शत्रो देवीः ॥ २०॥ ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः ॥

ॐ गन्धर्वस्त्वा० वरुणवायोर्मध्ये भद्रे गन्धर्वाध्तरसः॥ १७॥ यदकन्देत्यस्य भौतथ्यदीर्घतमास्कन्द ऋषिः त्रिष्टुर्छन्दः स्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनि-योगः ॥ ॐ यदकन्दः० ब्रह्मसोममध्ये वाप्यां स्कन्दं ।॥ १८ ॥ आहाः शिशानेः स्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता नन्दीइवरस्थापने विनियोगः॥ 🌫 आशुः ॥ स्कन्दोत्तरे जन्दीइवरं ० ॥ १९ ॥ तत्रीव 🦫 कार्षिरसीति शूलं तथा महाकार्छ ।।।२०॥२ १॥ अदिति चौरित्यस्य दक्ष ऋषिः श्रनुष्टुप्छन्दः दक्षादि-संसगणो देवता दक्षादि ससगणान्स्थापने विनियोगः। ॐ श्रदितियौं व ब्रह्म-शाममध्ये श्रुंखङायां दक्षादिससगणान् ॥ २२ ॥ अम्बेऽअम्ब इत्यस्य प्रजापति भर्तवः अनुरदुष्क्रन्दः दुर्गादेवता दुर्गास्थापने विनियोगः ॥ ॐ श्रम्बेऽ-अम्बिके० ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाष्यां दुर्गा० ॥ २३ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य मेश्वातिथि महिषः गायत्रीछन्दो विष्णुदेवता विष्णुस्थापने विनियोगः। ॐ इदं विष्णु• अम्बिका पूर्वे विष्णुं ॥ २४ ॥ उदीरता इत्यस्य शङ्क ऋविश्विष्टुण्डन्दः वित्रो-वैवता पित्रास्थापने विनियोगः। ॐ उदीरता॰ ब्रह्माग्निमध्ये श्रह्मळायां पितृन् ॥ २५ ॥ परं मृत्यो इत्यस्य संक्रुशिकः ऋषिः त्रिष्टुच्छन्दः मृत्युर्देवता मृत्युस्था-पने विनियोगः ॥ ॐ परं मृत्यो॰ ॥ ब्रह्मयममध्ये वाष्यां मृत्युरोगान् ॥ २६ ॥ गणानास्त्वा इरयस्य शौनक ऋषिजेगती छन्दो गणपतिर्देवता गणपस्यास्थापने विनियोगः ॥ ॐ गणानाम्स्वा • ब्रह्मनिऋतिमध्ये श्रद्धुळायां गणपति ॥ २ • ॥ शको देवीरित्यस्य दश्यभर्वण ऋषिः गायत्रीक्रम्दः आपी देवता ऋषां स्थापने

गोत्र भीम०॥ ३॥ तत ईशान्ये वाणाकारे उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाचतैरुदुवुध्यध्वं बुधः सीम्यो बुधिख्रिष्टुप् मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र वृव॥ ४॥ तत उत्तरतो दोर्घचतुरस्रे उदङ्मुखं बृहस्पति
पीतपुष्पाचतैबृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्विष्टुप् सिधुदेशोद्भव
आंगिरसगोत्र बृहस्पते०॥ ४॥ ततः पूर्वं पञ्चकोणे प्राङ्मुखं ग्रुकं
ग्रुक्कपुष्पाचतैः ग्रुकः पाराशरः ग्रुको हिपदा विराट् ॥ भोजकटदेशाद्भव भागवसगोत्र ग्रुक ॥ ६॥ ततः पश्चिमे घनुषि प्रत्यङ्मुख ग्रानं कृष्णपुष्पाचतैः शमित्रिरिविद्याः शनिरुष्णिक् सौराष्ट्रम
काश्यपगोत्र ग्रुनेश्चर ॥ ७॥ ततो नैस्नृत्ये सूर्णकारे दिच्यामुखं
राहुं कृष्णपुष्पाचतैः कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री राह्याबहने०॥
राहिनापुरोद्भव पैठीनसिस्मगोत्र राह्ये॥ ८॥ ततो वायव्ये ध्वजा-

द्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भीम इहागच्छेइ तिष्ठ दक्षिणदके व्यङ्गुळे रक्तमंडके विश्विणमुखं भीमं रक्तपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ३ ॥ ॐ वहबुध्यस्वाम् इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बुधो देवता बुधस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वरुबुध्यस्वाग्ने० ॐ भूभुंबः स्वः मगधदेशोद्भव बान्नेयसगोत्र पीतवर्ण बुध इहागच्छेह तिष्ठ ईशानदळे वाणाकृती पीते चतुरंगुळे मंडळे उदङ्मुखं बुधं पीतपुषपाक्षतेः पूजः येत् ॥ ४ ॥ बृहस्वते अतीत्यस्य गृत्समद् ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः भूभु[°]वः बृहस्पतिस्थापने विनियोगः बृहस्पत्ते० ૹ૽ૻ ďέ सिम्अदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण गुरो इहागच्छेह तिष्ठ उत्तरदछे दीर्धचतुरस्रे पीतवर्णपढङ्गुङमग्डके उदङ्मुखं बृहस्पति पीतपुष्पाक्षतैःपूजयेत् ॥५॥ असात्परिस्तृतस्य अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः अतिजगतीछन्दः ग्रुको देवता शुक्र-स्थापने विनियोगः॥ ॐ श्रद्धात्परिस्नुतः ॥ ॐ भूभु वः स्वः भोजहटदेशोञ्जव भागवसगोत्र शुक्तवर्ण शुक्र इहागच्छेइ तिष्ठ पूर्वद्रके पञ्चास्रे नवांगुले मण्डके प्राक्षमुखं छकं शुक्रपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ६ ॥ शक्तो देवोरित्यस्य दृष्पकायर्थम् करियः गायत्राछन्दः शनिर्देवता शनिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ शस्तो देवी• अ भूर्मु वः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव कश्यपगोत्र कृष्णवर्ण शनैश्वर इहागच्छेह तिष्ठ पश्चिमे द्वपङ्गुलमण्डले कृष्णवर्णे धनुषाकृतिमण्डले प्रत्यक्षुखं शनि कृष्णपुष्पा-क्षतीः पूजयेत् ॥ ७ ॥ कवानश्चित्र इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुदेवता राहुस्थावने विनियोगः ॥ ॐ कवानक्षित्र० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः राहिनसदेशोज्रव वैठिनस्तात्र कृष्णवर्ण राह्ये इहाराच्छेड तिष्ठ मैक्ट्रये शूर्णकारे कृष्णवर्णे हावशा-मुखमण्डले दक्षिणसुसं राष्ट्रं कृष्णानुष्यासतीः पूजियतः ॥ ८ ॥ नेत्रं कृपवं निश्मस्य कारे दक्तिणामुखं केतुं धूम्रपुष्पास्तैः केतुं मधुन्छन्दाः केतवो गायत्री अन्तर्वेदिसमुद्भवा जैमिनिसगोत्रा केतवो इद्दागच्छेद तिष्ठेति ॥ ६ ॥ श्रादित्याभिमुखाः श्रथाधिदेवताः श्वे तपुष्पाच्चतैः क्रमात्स्योदीनां दक्तिणतः स्थाप्याः ॥ त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुब्हुप् विनियोगः सर्वत्र क्षेयः ॥ ज्यम्वकं ॐ भूभुवः स्त्रः ईश्वरं० ॥ १ ॥ गीरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती सोमदित्ति ॥ २॥ यदकन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोदीर्घतमा विष्णुास्त्र-ष्टुप्॥ ४॥ ब्रह्मयक्कानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्॥ ४॥ इन्द्रे वो मधुछन्दा इन्द्रो गायत्रो ॥६॥ यमाय स्रोमं यमोऽनुष्टुप॥७॥ मोषुणो घोरः कएवः कालो गायत्री ॥ ८॥ उपो वाजं प्रस्कः वश्चित्र-गुप्तो बृहती ॥ ६ ॥ एवमेव शुक्कपुष्पात्ततैर्प्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहः-तीरिहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रस्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ श्रिप्तं काएवो मेथातिथिरग्निर्गायत्री॥ ॐ अग्निन्दूतं०॥१॥ अप्सु मे मेघा-तिथिरापोऽनुषुप् ॥२॥ स्योना मेघातिथिर्मूमिर्गायत्री ॥३॥ इदं विष्णुर्मेघातिथिविष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ इन्द्रश्रेष्ठानि गृत्समद इन्द्रस्त्रि-

मञ्ज्वहरूदा ऋषः श्रतिरुक्ता गायत्री छन्दः केतुर्देवता केतुस्थापने विनियोगः ॐ केतुं कुणवस्त्र अॅंभूर्भुवः स्वः अवन्तिदेशोद्भव जैमिनिसगोत्र चित्रवर्ण केतो इहा-गच्छेह तिष्ठ वायव्ये ध्वजाकारे वित्रवर्णे षड्सुडमण्डले दक्षिणमुखं केतुं घूम्रवर्ण-पुष्पाक्षतैः पूजयेत ॥ ९ ॥ केतूनां बहुत्वेऽपि पूजादी बहुत्वविशिष्टमेकदेवतात्वम् ॥ सर्वान् आदित्याभिमुखान् स्थापयेदित्युक्तं मान्स्ये॥ अथाधिदेवताः सर्वे इवेत-पुष्पाक्षतैः स्थापयेत्पुत्रयेख ॥ व्यम्बकमिति वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः व्यम्बको हत्रो देवता हृदस्थापने विनियोगः ॥ ॐ व्यम्बकं यजामहे ॰ सूर्यादुत्तरतो हृद इद्दागच्छेद् तिष्ठेति रुद्धं स्थापयेत् ॥१॥ श्रोश्च तेत्यस्य नारायण ऋषिः त्रिष्ट्प्छन्दः उमादेवता उमास्थापने विनियोगः॥ ॐ श्रीक्व ते उक्ष्मी • उमेहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणे वमाम् ॥ २ ॥ यदकन्देश्य भागवो जमदमि-दीर्गतमावृशी त्रिष्टुप्छन्दः ्स्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः॥ ॐ यदकन्दः स्कन्देद्दागच्छेद्द तिष्ठ भौमदक्षिणे स्कन्दम् ।। ३ ॥ विष्णोरराट् इत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रनुष्टुप्छन्दः विष्णुर्देवता विष्णुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ विष्णोरराट् मसीत्यारभ्य विष्णवे त्वेत्यन्ते बुधपश्चिमे विष्णोरिहागण्डेह तिष्ठ विष्णुम् ॥ ४ ॥ श्रामसन्त्रित्यस्य मजापति ऋषिः यजुःखन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः॥ ॐ ग्राब्रह्मन् गुरोः पूर्वभागे बद्धनिहागच्छेह तिष्ठ बह्माणं ॥ ५॥ सयोवा इन्द्रेत्यस्य गोत्र भीम०॥ ३॥ तत ईशान्ये वाणाकारे उद्दर्भुखं वुधं पीतपुष्पाचतैरुदुवुध्यध्वं बुधः सीम्यो बुधिह्मिड्यु मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र वुत्र ॥ ४॥ तत उत्तरतो दोर्घचतुरस्ने उद्दर्भुखं बृहस्पति
पीतपुष्पाचतैवृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिह्मिड्यु सिंधुदेशोद्भव
आंगिरसगोत्र बृहस्पते०॥ ४॥ ततः पूर्वं पञ्चकोणे प्राङ्मुखं गुकं
गुक्कपुष्पाचतैः गुकः पाराशरः गुको हिपदा विराट् ॥ भोजकटदेशाद्भव भागवसगोत्र गुक ॥ ६॥ ततः पिश्चमे धनुषि भत्यङ्मुख ग्रानि कृष्णपुष्पाचतैः ग्रमग्निरिरिविटः ग्रनिरुष्णिक् सौराष्ट्रत
काश्यपगोत्र ग्रनैश्चर ॥ ७॥ ततो नैऋत्ये सूर्णकारे दिच्यामुखं
राहुं कृष्णपुष्पाचतैः कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री राह्नावाहने०॥
राहिनापुरोद्भव पैठीनसिसमगेत्र राह्नो॥ ८॥ ततो वायव्ये ध्वजा-

द्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भीम इहागच्छेर तिष्ठ दक्षिणदके व्यक्कुळे रक्तमं**र**के दक्षिणमुखं भीमं रक्तपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ३ ॥ ॐ उद्वबुध्यस्वाम इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बुधो देवता बुधस्थापने विनियोगः ॥ ॐ बदुबुध्यस्त्राग्ने० ॐ भूभुंवः स्वः मगधदेशोद्भय बान्नेयसगोत्र पीतवर्ण खुत्र इहागच्छेह तिष्ठ ईशानदके वागाकृती पीते चतुरंगुके मंडके बदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैः पूजः येत् ॥ ४ ॥ बृहस्यते अतीत्यस्य गृतसमद् ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः भूभु वः *बृह*स्पते • ప్ర ૐ बृहस्वतिस्थापने विनियोगः गुरो इहागच्छेह तिष्ठ उत्तरदछे पीसवर्ण सिन्धुदेशोज्ञव आङ्गिरसगोत्र दीर्धचतुरस्रे पीतवर्णपढङ्गुङमण्डके उदङ्मुखं बृहस्पति पीतपुष्पाक्षतैःपूजयेत् ॥५॥ असात्परिस् नस्य अधिवसरस्वतीन्द्रा ऋषयः अतिजगतीछन्दः ग्रुको देवता शुक-स्थापने विनियोगः ॥ ॐ श्रद्धात्परिस्तृतः ॥ ॐ भूभु वः स्वः भोजहटदेशोज्ञव भागीवलगीत्र शुक्कवर्ण ग्रुक इहागच्छेह तिष्ठ पूर्वद्के पद्धास्ने नवांगुले मण्डके प्राक्षमुखं ग्रुकं शुक्कपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ६ ॥ शक्तो देवोरित्यस्य दध्यकाथर्वम् ऋषिः गायत्राछन्दः शनिर्देवता शनिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ शस्त्रो देवी• ðॐ भूमु वः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव कश्यपगोत्र कृष्णवर्ण शनैश्वर इहागच्छेइ तिष्ठ पश्चिमे ह्रचङ्गुकमण्डके कृष्णवर्णे अनुपाकृतिमण्डले प्रत्यस्मुखं शवि कृष्णपुष्पा-क्षतीः पूजयेत् ॥ ७ ॥ कयानिश्चत्र इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुर्देवता राहुस्थापने विनियोगः॥ ॐ कयानब्रित्र०॥ ॐ भूर्भुवः स्वः राहिनसदेशोज्रव वैदिनसतीत्र कृष्णवर्ण राह्ये इहाराच्छेह तिष्ठ नैक्स्त्ये शूर्णकारे हृष्णवर्णे हावशा-मुख्यक्षे विश्वणसुसं राष्ट्रं कृष्ण उच्चाक्षतीः पूजवेत ॥ ४ ॥ मेर् कृपनं निश्यस्य कारे दक्षिणामुखं केतुं धूम्रपुष्पाचतैः केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री अन्तर्वेदिसमुद्भवा जैमिनिसगोत्रा केतवो इहागच्छेद तिष्ठेति ॥ ६ ॥ श्रादित्याभिमुखाः श्रथाधिदेवताः श्वे तपूष्पाच्चतैः सर्वे वा क्रमात्स्यादीनां दक्तिगतः स्थाप्याः ॥ त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुब्हुप् विनियोगः सर्वत्र क्षेयः ॥ ज्यम्बकं ॐ भूभुंबः स्वः ईश्वरं० ॥ १ ॥ गीरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती सोमदिश्वरो ॥ २ ॥ यदकन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोदीर्घतमा विष्णुस्त्र-ष्टुप्॥ ४ ॥ ब्रह्मयक्कानं गीतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्॥ ४ ॥ इन्द्रे वो मधुं छुन्दा इन्द्रो गायत्रो ॥६॥ यमाय सोमं यमोऽनुषुप॥७॥ मोष्रुणो घोरः कएवः कालो गायत्री ॥ ८॥ उपो वाजं प्रस्कण्वश्चित्र-गुप्तो वृहती ॥ ६ ॥ एवमेव शुक्कपुष्पात्ततैर्प्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहः-तीरिहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ अग्नि कारवो मेघातिथिरक्षिर्गायत्री॥ ॐ श्रग्निन्दूतं०॥१॥ श्रप्तु मे मेघा-तिथिरापोऽनुषुप् ॥२॥ स्योना मेधातिथिर्मूमिर्गायत्रो ॥३॥ इदं विष्णुर्मेधातिथिविष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ इन्द्रश्रेष्टानि गृतसमद इन्द्रस्त्रि-

मञ्ज्ञच्छन्दा ऋषिः श्रनिरुक्ता गायत्री छन्दः केतुर्देवता केतुस्थापने विनियोगः ॐ केतुं कुएवस्न ॐभूर्र्भुवः स्वः अवन्तिदेशोद्भव जैमिनिसगोत्र चित्रवर्ण केतो इहा-गच्छेह तिष्ठ वायब्ये ध्वजाकारे वित्रवर्णे यहङ्गुक्रमण्डले दक्षिणमुखं केतुं घून्नवर्ण-पुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ९ ॥ केतूनां बहुत्वेऽपि पूजादी बहुत्वविशिष्टमेकदेवतात्वम् ॥ सर्वान् भादित्याभिमुखान् स्थापयेदित्युक्तं मात्स्ये॥ श्रथाधिदेवताः सर्वे श्वेत-पुष्पाक्षतैः स्थापयेत्पुत्रयेच ॥ व्यम्बकमिति वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुए छन्दः व्यम्बको हद्दो देवता हद्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ व्यम्बकं यज्ञामहे० सूर्यादुत्तरतो हद् इहागच्छेह तिष्ठेति रुद्धं स्थापयेत् ॥१॥ श्रोश्च तेत्यस्य नारायण ऋषिः त्रिष्टप्छन्दः उमादेवता इमास्थापने विनियोगः॥ ॐ श्रीइच ते लक्ष्मी • उमेहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणे वमाम् ॥ २ ॥ यदकन्देस्य भागवो जमदमि-दीर्गतमावृषी त्रिष्टुप्छन्दः ुस्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः॥ ॐ यदक्रन्दः स्कन्देद्दागच्छेद्द तिष्ठ भौमदक्षिणे स्कन्दम् । । विष्णोरराट् इत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रनुष्टुप्छन्दः विष्णुरेवता विष्णुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ विष्णोरराट् मसीत्यारभ्य विष्णवे त्वेत्यन्ते बुधपश्चिमे विष्णोरिहागण्डेह तिष्ठ विष्णुम् ॥ ४ ॥ श्राम**दा**न्नित्यस्य प्रजापति ऋषिः यजुःखन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः॥ ॐ ग्राब्रह्मन् गुरोः पूर्वभागे ब्रह्मनिहागच्छेह तिष्ठ ब्रह्माणं ॥ ५॥ स्योषा इन्द्रेत्यस्य ष्टुप् ॥ ४ ॥ इन्द्राणीं बृषाकिपिरिद्राणी पिकिः ॥ ६ ॥ प्रजापतेर्द्धिरण्य-गर्भः प्रजापितिस्त्रिष्टुप् ॥ ७ ॥ श्रायं गीः सार्पराज्ञी सर्पागा-यत्री ॥ ८ ॥ ब्रह्मयज्ञानं गीतमो वामदेवो ब्रह्मास्त्रिष्टुप् ॥ ६ ॥ ततः शुक्कपुष्मक्षतिर्विनायाकादीन् पञ्च गणानान्त्वा गृत्समदो गण-पतिज्ञगती ॥ राह्रोरुत्तरतो विनायकम् ॥ १ ॥ जातवेटसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् ॥ शनेरुत्तरतो दुर्गाम् ॥ २ ॥ तव वायवृतस्य ते व्यथ्व-श्राङ्गिरसो वायुर्गायत्रीस्तरहो । रवेरुत्तरतो वायुम् ॥ ३ ॥ पतान्म-त्रान्पटन्ति सास्प्रदायिकाः ॥ तत्र केषु चिन्मन्त्रेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ ४॥ श्रादित्यत्तस्य वत्स श्राकाशो गायत्रो ॥ राह्रोदंत्तिणे श्राकाशम् ॥ ॥ एको उपाप्रस्कण्वोश्विनौ गायत्रो ॥ श्रश्विताविहागच्छतामिह

विश्वामित्र ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः॥ ॐ सयोपा इन्द्र॰ गुकात्वाच्यामिन्द्रेहागच्छेह तिष्ठ इन्द्रं॰ ॥ ६ ॥ यमाय त्वा इत्यस्य दृष्यङाथवंश ऋषिः यजुरुष्ठन्दः यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॐ यमाय त्वा० शनेराग्नेयभागे यमेहागच्छेद्द तिष्ठ यमं ।। ७ ॥ कार्षिरसीत्यस्य प्रजापति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः काङो देवता कालावाहने विनियोगः ॥ ॐ कार्षिरसी० राहोरीशान्यां कालेहागच्छह तिष्ठ कालं ।। ८ ॥ चित्रावसो इत्यस्य यजुर्जगती छुन्दः चित्रगुप्तो देवता चित्रगुप्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते० केतोनैं ऋत्यां चित्रगुसेहागच्छेह तिष्ठ चित्रगुसं ॥ ९ ॥ श्रथ प्रत्यधिदेवतास्थाप-नम् ॥ शुक्कपुष्पाक्षतैरेव अहाविदेवतयोर्मध्ये श्रादित्यादिकमेण श्रान्याचाः सर्वाः प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ तद्यथा ॥ अग्निन्दूतमित्यस्य विरुपाक्ष ऋषिर्गायत्री-छुन्दः श्रारिनदेवता श्रारिनस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अन्निन्दूतं • श्रार्मे इहागच्छेह तिष्ठ अभिन ॥ १ ॥ आपोहिब्डेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः गायत्रीछन्दः आपो देवता - अपां स्थापने विनियोगः ॥ ओं आपो हिष्टा० आप इहागच्छेह तिष्ठे ति आपः ॥ ॥ २॥ स्योनापृथिवीत्यस्य मेघातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः पृथिवी देवता पृथिवी-स्थापनै विनियोगः ॥ ऑ स्योनापृथिवी ॰ पृथिवि इहागच्छेह तिग्ठेति पृथिवीं ० ॥ ३ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य मेवातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः विष्णुदंवता विष्णुस्थाः पने विनियोगः॥ श्रों इदं विष्णु । विष्णो इहागच्छेह तिष्ठेति विष्णु । ॥ ॥ इन्द्र आसां इत्यस्य अवित्य ऋषिः विष्टुण्डन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने िविनियोग: ॥ श्रो इन्द्र उक्षासां ० इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं ० ॥ ५ ॥ ऑ अदित्यैरास्नासोत्यस्य दथ्यङाधर्वण ऋषिः यज्ञस्त्रिष्ट्यं छं इन्द्राणी देवता इन्द्राणि स्थापने विनियोगः॥ व्यां अदित्ये रास्ताः इन्द्राणि इहागरछेइ तिर्देति

तिष्ठतामिति केतोर्वृ चिणेऽश्विनौ ॥६॥ पतानि विनायकादि स्थानानि चिन्तामणौ॥ विनायकादीन् पञ्च उत्तरत प्रवेति सम्प्रदायः ॥ प्रवं द्वार्त्रिशहेश्वता इति रूपनारायणादयः ॥ हेमाद्रौ तु लोकपालादीना-मिष सूर्याभिमुखानां दिन्नु स्थापनमुक्तम् । तद्यथा ॥ इन्द्रं विश्वो जेता माधुन्छन्दस इन्द्रोऽनुष्ठुप् ॥ इन्द्रेहागन्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रम् ॥१॥ प्रवमुत्तरत्रं ॥ अग्नि मेघातिथिरग्निर्गायत्रो ॥२ ॥ यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्ठुप् ॥३॥ मोषुणो घोरः कष्वो निर्म्हातर्गान्यत्री ॥४॥ तत्व वायो व्यश्वोवाङ्गिरसो वायुर्गायत्री॥६॥ सोमो घेनुं गौतमः सोमस्त्रिष्ठुप् ॥॥

इन्द्राणीम् ॥ ६ ॥ प्रजापत इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः त्रिष्टुण् छुन्दः प्रजापति-देवता प्रजापतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ प्रजापतेन त्वं० प्रजापतेहागच्छेह तिष्ठेति प्रजापति० ॥७॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रतुष्टुण्छुन्दः सर्पाः देवताः सर्पस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० ॥ सर्पान्० ॥०॥ बह्मजज्ञानमित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनि-योगः ॥ ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मन् इहागच्छेह तिष्ठेति ब्रह्माणं० ॥ ९ ॥ उत्यक-परिमछकारादयस्तु प्रहाणां दक्षिणपाश्वं प्रत्यिचदेवताः स्थाप्या इत्याहुः ॥

श्रथं पञ्चलोकपालानां स्थापनम् ॥ गणानान्स्वेत्यस्य प्रजापित ऋषिः यजुश्छन्दः गणपितदेवता गणपितस्थापने विनियोगः ॥ ॐ गणानान्स्वा० राह्रोहत्तरतः गणपितस्य ॥ १ ॥ श्रम्ये अस्थिके इत्यस्य प्रजापित ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः दुर्गादेवता दुर्गास्थापने विनियोगः ॥ ॐ बम्बेऽश्रम्बिके० शनेकत्तरतो दुर्गाम्० ॥ २ ॥ वायो येते इत्यस्य गृतसमद ऋषिगाँवत्रीछन्दः वायुर्वेवता वायुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वायो ये ते० सूर्यादुत्तरतो वायुं० ॥ ३ ॥ धृतं पावान इत्यस्य प्रजापित ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्राकाशो देवता बायुं० ॥ ३ ॥ धृतं पावान इत्यस्य प्रजापित ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्राकाशो देवता बाखुं० ॥ ३ ॥ धृतं पावान इत्यस्य प्रजापित ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्राकाशो देवता बाखुं० ॥ ३ ॥ धृतं पावान इत्यस्य प्रजापित ऋषिः पंक्तिश्चन्दः श्राकाशो देवता बाखुं० ॥ ३ ॥ धावाङ्कशेत्वस्य मेधातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः श्रश्चनौ देवता श्रिधनौ स्थापने विनियोगः ॥ ॐ यावाङ्कशा० देतोईक्षिणतः अहिवनौ० ॥ ५ ॥ एतानि विनाय-कादिस्थानानि चिन्तामणौ ॥ विनायकादीन् पञ्चोत्तर प्रवेति सम्प्रदायः ॥ उत्तरतो क्षेत्राधिपितं वास्तोष्पतिञ्चाऽऽवाहयेत् ॥ इत्यके ॥ नहि स्पश्मित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः त्रिष्टुण्डन्दः क्षेत्राधिपतिदेवता क्षेत्राधिपतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नहि स्था० क्षेत्राधिपते इहागच्छेह तिष्ठ ॥ ६ ॥ वास्तोष्यत इत्यस्य विशव अहिवः इत्यस्य विशवः करिवः

तमीशानं गीतम ईशानो जगती॥ 🗸 ॥ सहस्रशीर्षा नारायणोऽनंतोऽ-नुष्टुप्॥ ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम् ॥६॥ ॐ ब्रह्मजङ्गानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा बिष्टुप् ॥ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणं ॥ १०॥ तत उत्तरे त्तेत्रस्य वामदेवः त्तेत्रपालोऽनुषुप्॥ वास्तोष्पते वशिष्ठो वास्तोष्पति-स्त्रिष्टुप् ॥ ततो लज्ञहोमश्चेदिन्द्रं मित्रमित्यनेन ॥ सामध्वनिश्ररीरस्त्वं बाहुनं परमेष्ठिनः ॥ विषपापहुरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ म इत्यनेन चोत्तरे ॥ .गरुत्मनतमावाह्य रवेः पूर्वे शेषं सोमस्यात्रे वाहुिकं भौमात्रे तत्त्रकं बुधोत्तरे कर्कोटकम् ॥ वृहस्पतेरग्रे पद्मं शनिपश्चिमे शङ्खपालं राहोः पुरः कम्बलं केतोः पुरः कुलिकम् ॥ पोठात्माच्यामिश्वन्यादि-सप्तनक्षत्राणि ॥ विष्कुंम्भादि-सप्तयोगान् ॥ वव वालवकरणे ॥ सप्त-द्वीपानि ऋग्वेदञ्च ॥ दक्षिणे पुष्यादि सप्तनत्तत्राणि ॥ भृत्यादिसप्त-योगान् ॥ कीलव तैतिलकरणे ॥ सप्तसागरान् ॥ यजुर्वेदश्च पश्चिमे स्वात्यादिसप्तनत्त्रत्राणि ॥ वज्रादिसप्तयोगान् ॥ गर-वणिजकरणे ॥ सप्तपातालानि सामवेदश्च॥ उत्तरे-श्रभिजिदादिसप्तनज्ञाणि साध्यादिषट्योगान् विष्टिकरणम् ॥ भूरादीन् सप्तलोकान् । अथर्ववेद-अ ॥ वायव्ये भुवं सप्तर्षीश्च ॥ अथ यथावकाशं गङ्गादिसप्तसरितः॥ सप्तकुलाचलान् ॥ त्राष्टी वसून् ॥ द्वादशादित्यान् ॥ पकादश रुद्रान् ॥ मरुतः ॥ षोडशमातः ॥ षडुत्न् ॥ द्वादश मासान् ॥ द्वे श्रयने ॥ पश्च-दश तिथीन् ॥ षष्ठिसम्बत्सरान् ॥ सुपर्णान् ॥ नागान् ॥ सर्पान् ॥ यज्ञान् ॥ गन्धर्वान् ॥ विद्याधरान् ॥ अप्सरसः ॥ रज्ञांसि ॥ भृतानि ॥ मनुष्यानिति॥ कोटिहामे तु वेदेः पूर्वे ब्रह्माणं मध्ये जनार्दनम्॥ पश्चिमे रुद्रम् ॥ उत्तरे स्कन्दमित्येतानव्यावाहयेत्॥ ततोऽस्मिन न्कर्मीण देवतापरिम्रहार्थम् अन्वाधानं करिष्य इति सङ्कल्प चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा सूर्यादीन्त्रहादीन् समिदाज्यनैवेद्यशेषचरुभिरः ष्टसहस्राष्टशताष्टाविशत्यष्टान्यतमसंख्ययाऽधिदेवतावत्यधिदेवतावि-नायकादीन लोकपालांश्चामुकसंख्यया पतैरेव द्रव्यैः चेत्रपाला-दींश्रामुक्षंच्यया स्याद्याः सर्वा देवता दशसंख्याकतिलाहुतिभिः

त्रिष्टुप्छन्दः वास्तोष्यतिर्देवता वास्तोष्यतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वास्तो-व्यते वास्तोष्यति हहागच्छेह तिष्ठ ॥ ७ ॥ एवं द्वात्रिशहेवता हत्युक्तवा नारा-यवादयः ॥ हेमादौ तु दिक्यालानामिय सूर्याभिमुखानां दिश्च स्थापनायुकं ते वाद्रौ स्थाप्याः ॥}इति केचित् ॥ दशेति मक्षनस्य हति ॥ स्थय दिक्पाल- श्राप्तं वायुं सूर्यं प्रजापितं च प्रत्येकं पञ्चिवंशतिशतमिताभिक्तिलाहुं तिभिर्यद्ये॥ लक्षहामे पञ्चिवंशितसहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पञ्चिवंशितलहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पञ्चिवंशितलहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पञ्चिवंशितलहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पञ्चिवंशितलहस्रमिताभिः।। ततः श्रेषेण स्विष्ट्यतमित्यादियद्य इत्यन्तमुक्त्वा समिद्द्यमाधाय निर्वापित्कमेण गुडोदनादीन् नवान्यांश्च शुद्धांश्चयोविशितिमिति द्वात्रिंशत् नवैत्र वा चक्षन् श्रपित्वा पञ्चिमः षोडशिभवेषित्वारेः सम्पूजयेत्॥ तत्र वस्त्राणि प्रह्वणीत्॥ स्विभौमयो रक्तवन्दनम्॥ चन्द्रशुक्रयोः श्वेतचन्दनं॥ बुधगुर्वोः सुङ्क-भयुतम्॥ शनि-राहु-केत्नां इत्यागुरुं पुष्पणि तत्त्वद्वणीति॥ धूपास्तु सङ्क्षितिम् ॥ श्वतक्त्यवाः॥ रालमगरुं सिह्नकं विव्वयुतागुरुं गुग्गुलम्॥ लाक्ताक्रमादुगाय्या दत्वा उद्दीप्यस्वेति सर्वेभ्यो दीपान् दत्वा गुडोदनं पायसं नीवारीदनं चीरयुत्वणिष्ठकोदनं द्व्योदनं घृतौदनं तिलमाषयुतमोदनं मांकीदनं चित्रौदनं चक्रमान्निवदयेत्॥ श्रिधदेवतादिभ्यस्तु वासोगन्धपुष्पणि श्वेतानि॥ गुग्गुलुर्घूयः॥ नैवेद्यं पायसादियथालामम्॥ सूर्योदिद्वात्रिंशतामन्येषां च सर्वेषां पूजापदार्थानुसमयेनैव॥

ततो वेदीशान्यां कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्य सम्पृज्याभि-

मन्त्रयेत् ॥ तद्यथा —

कलशस्य मुखे विष्णुः कएठे रुद्रः समाश्रितः । मूछे तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥ कुत्तौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा । त्रमृग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथवणः ॥२॥

देखतास्थापनम् ॥ त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्र-स्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्रातारमिन्द्र० प्राध्यां इन्द्र० ॥ १ ॥ त्वक्षो स्र ने इत्यस्य हिरपयस्तूप आङ्गिरस ऋषिः त्रिष्टुष्ड्रन्दः स्रक्षित्वता स्रमित्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्वन्नो स्रग्ने० स्राग्नेयामप्ति० ॥ २ ॥ सुगन्नु पन्धामित्यस्य प्रजाप्पति ऋषिः त्रिष्टुष्ड्रन्दः यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ सुगन्नु पन्थां० दक्षिणस्यां यमं० ॥ ३ ॥ स्रसुन्वन्तम इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुष्ट्रन्दः निर्द्रति । । अस्ति विनयोगः ॥ ॐ सुगन्ने पन्धां विनयोगः ॥ ॐ सुगन्ने पन्धां विनयोगः ॥ ॐ तत्त्वायामीत्यस्य स्रुनःशेष ऋषिः त्रिष्टुष्ट्रन्दः । वस्यो देवता वस्यास्थापने विनियोगः ॥ तस्त्रायामि० प्रतीक्यां वस्याः ॥ अश्वो विद्रक्तिरिष्ट्रस्य प्रजापति

श्रङ्गेश्र सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः । श्चत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥३॥ दुरितत्त्वयकारकाः श्रायान्त् यजमानस्य देवदानवसम्वादे मध्यमाने महोदधौ उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विष्टतो विष्णुना स्वयम् । त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्विय स्थिताः ॥५॥ त्विय तिष्ठन्ति भूतानि त्विय प्राणाः प्रतिष्ठिताः । शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥६॥ श्रादित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः। त्विय तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलपदाः ॥७॥ त्वत्पसादादिमं यज्ञं कतुमीहे जलोज्जव ! सानिध्यं कुरु मे देव ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥=॥इति॥ ततः फलपुष्पमालाशोभितं चितानं बृहस्पतिदैवतं सूर्यादिभ्य इदं न ममेत्युत्सुज्य प्रहवेद्युपरि वश्लीयात्। ततश्चर्यासादनाद्याज्य-भागान्ते यजमातः सर्वा आवाहिताः सूर्यादिदेवताः अग्निवायु-सुर्यप्रजापतीं श्रोहिश्य समिदाज्यचहतिलान् होतुमुत्स्जे न ममेति त्यजेत्। ततो ऋत्विजः समिदाज्यनैवेद्यशेषचरून् क्रमेणावाहित।भ्यो देवतःभ्योऽष्टसहस्राद्यन्यतमसंख्यया समस्तव्याहृतिभिन्नेद्यमाणत-

ऋषिः त्रिष्टुण्छंदः निर्स्तिदेवता निर्स्तिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आनो नियुद्धिः वायध्यां वायुं ॥ ॥ ॥ ॥ सोमेत्यस्य बंधु ऋषि गायत्री छन्दः सोमो देवता सोम-स्थापने विनियोगः ॥ ॐ वयर्ठ सोम० ॥ उदीच्यां सोमं ॥ ॥ तमीशान इत्यस्य गौतम ऋषिः अगतीछंदः ईशानो देवता ईशानस्थापने विनियोगः ॥ ॐ तमीशानं धृशान्यां ईशानं ॥ ॐ तमीशानं हत्यस्य प्रगाय ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अस्मे स्त्रा व ईशानेन्द्रयोगं ध्ये ब्रह्माणं ॥ ३० अस्मे स्त्रा व ईशानेन्द्रयोगं ध्ये ब्रह्माणं ॥ ॥ स्थानाष्ट्रियवीत्यस्य मेवातिथि ऋषिगीयत्रीछन्दः अनन्तो देवता अनन्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ स्योनाष्ट्रियवी निक्तिवस्थायोगं स्था स्थानं देवता अनन्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ स्योनाष्ट्रियवी निक्तिवस्थायोगं स्था सामा हिशा प्रतस्थापने स्थापयमित्र ॥ सम्ये सु नैऋतिवस्थायोगं स्थापनं निक्तित्व ॥ प्रवं देवताः स्थापयमित्याहः ॥ केवित् ब्रह्मानन्तयोः स्थापनं निक्तित्व ॥ प्रवं देवताः

त्तन्मन्त्रैर्वा हुत्वा घृताकृतिलैः ताभ्य एव देवताभ्यः प्रत्येकं दश-दशाहुतीहुत्वा सोमं राजानमिति स्विष्टकृतं हुत्वा व्यस्तसमस्तव्या-हृतिभिस्तिलैरयुतं लचं कोटि वा छहुयुः । तत्र होमे ऋग्वेदिनस्ता-वदावाहनोक्तानेव मन्त्रान्पठन्ति । यजुर्वेदिनां त्च्यन्ते । श्राक्तव्योन हिरण्यस्त्यः सविता त्रिष्टुप् सूर्यंत्रीतये तिलाज्यहोमे विनियोगः। 🕉 ब्राक्टक्सेन० पश्यन् स्वाहा इदं सुर्याय० ॥१॥ एवं सर्वत्र ॥ इमं देवा वरुणः सोमो यज्ञः ॥ ॐ इमं देवा० राजा ॥२॥ अग्निर्मूर्ज्ञा विरूपोऽङ्गारको गायत्री ॥३॥ उद्दबुध्यस्व परमेष्ठी बुधस्त्रिद्धुप् ॥ ४॥ बृहस्पते गुरसमदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् ॥४॥ श्रन्नारप्रजापति श्रश्विस-रस्वतीन्द्राः शुक्रो जगती ॥६॥ शन्नो दध्यङ्ङाथर्वण शनिर्गायत्री ॥७॥ कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री ॥८॥ केतुं मधुछन्दाः केतवो गायत्रो॥६॥ * अथाधिदेवतानाम् * ज्यम्बकं वशिष्ठो कद्रोऽनुष्टुप् ॥१॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत् ॥ श्रीश्च तेत्युत्तरनारायण उमा त्रिष्टुप् ॥२॥ यदकन्दो भास्कर-जमद्गि-दोर्घतमा-स्कन्दस्त्रिन्दुप् ॥३॥ विष्णो रराट-मुतथ्यो विष्णुर्यजुः॥ ॐ विष्णो रराट० वेत्या ॥४॥ म्रा ब्रह्मन् प्रजा-पतिर्म्भह्मा यजुः ॥ ॐ श्रा ब्रह्मन्० करूपतां ॥४॥ स जोषा त्रिश्वामित्र इन्द्रिक्डिप् ॥ ॐ सजोषा इन्द्रः ॥६॥ असियमो भास्कर-जमदन्नि-दीर्घतमसो यमस्त्रिष्टुप् ॥॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत्। कार्षिरित दुध्यङ्ङाधर्वणः कालोऽनुष्टुप्ं ॥ = ॥ श्रत्रापि प्रणीतोदकं स्पृशेत् । चित्रावसोत्र्यु पयश्चित्रगुप्ता जगती ॥ ॐ चित्रावसोः शीयः ॥६॥ अथ प्रत्यधिदेवतानाम्
 अग्निं दूतं विक्रपोऽग्निगीयत्री ॥१॥ अन्स्वन्तर्बृहस्पतिरापः पुर उष्णिक् ॥ २ ॥ स्योना मेधातिथिः पृथिवी गायत्री ॥३॥ इदं बिष्णुर्मेधातिथिविष्णुर्गायत्री ॥४॥ त्रातारं गार्ग्ये इन्द्रिकिन्द्रप् ॥४॥ अदित्यै दश्यङ्ङाथर्वण इन्द्राणी यज्ञः॥ अदित्यै राख्नासि० ॥६॥ प्रजापते बहुणः प्रजापतिस्त्रिन्द्रप् ॥७॥ नमोऽस्तु देवाः सर्पातुद्दुप् ॥८॥ ब्रह्मप्रजापतिर्बह्मात्रिद्धुप् ॥६॥ 🛊 अथ विनायकादिः

संस्थाप्य ॥ मनोजूतिरिति सूर्यांचनन्तान्तदेवताः सुपतिष्ठिता वरदा भवन्ति इति प्रतिष्ठाच्य सम्भूष्य ॥ ब्रह्मासनाद्याचारावाष्यभागान्तं इत्ता अहाहुतीं कुर्यात् पूर्ववन्मन्प्रेण इति ॥ पूजास्विष्टनवाहुत्या विकः पूर्णाहुतिस्तथा ॥ अयोदानं ब्राह्मणेम्यो दद्यारस्वर्णसुद्क्षिणाम् ॥ कारयेद्भिषेकादीम् विसर्जनमतः परम् ॥ इत्यादि कर्म इपादिति ॥

पञ्चानाम् #॥ गणानां प्रजापतिर्गणपतिर्यञ्जः । ॐ गणानान्त्वा० मम ॥१॥ श्रम्बे प्रजापतिर्दुर्गाऽनुष्टुप् ॥ २॥ वातो वा गन्धर्वा वात उष्णिक् प्रमाणत श्रावाहने विनियुक्तानप्येतान् होमे पठन्ति । तत्र ग्रहाणां सप्रमाणका एव ।

श्रन्येषां तूच्यन्ते । श्रावो राजानं वामदेवो स्ट्राह्मिस्टुप् ॥१॥ श्रापो हिष्ठा श्राम्वरीषः सिन्धुद्रीप उमागायत्रो ॥२॥ स्योना मेधा-तिथिः स्कन्दो गायत्री ॥३॥ इदं विष्णुमेधातिथिविष्णुगीयत्री ॥४॥ स्वमित्सप्रथा गौतमो ब्रह्मा बृहती ॥४॥ इन्द्राग्निर्देवता तय उक्त-सुगिन्द्रह्मिस्टुप् ॥६॥ श्रायं गौः सार्पराज्ञी यमो गायत्री ॥७॥ ब्रह्म ज्ञानं गौतमो वामदेवः कालस्त्रिस्टुप् ॥६॥ यदा ज्ञातं कीशिकः चित्रगुप्तोऽनुस्तुप् ॥१॥ श्राग्नद्वतं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री ॥१॥ उदुत्तमं गौतमो वामदेव श्रापस्त्रिस्टुप् ॥२॥ पृथिव्यान्तरिन्तं विष्णुः पृथिव्युष्टिण्क् ॥३॥ सहस्रशीर्षा नारायणो विष्णुरनुस्तुप् ॥४॥ इन्द्रायेन्दो मरुख्वत उत्तानपर्णे सुभगे प्रजापते हिर्ण्यगर्भः प्रजापति-स्त्रिस्टुप् ॥४॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो देवाः सर्वानुस्टुप् ॥६॥ एष ब्रह्मा प्रजापतिर्व्रह्मा द्विपदा गायत्री ॥७॥ श्रात् न इन्द्रः कुसीदः काण्वो गण्पतिर्गायत्री ॥८॥ जात्वेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिस्टुप् ॥६॥ प्रादि-द्वस्य श्राकाशो गायत्री।काणात्रितो वायुरुष्णिक् । श्राकाशादिभ्यस्तु स्थापनमन्त्रा एव।

शेषवासुक्यादिभ्यस्तु प्रण्वाद्याः खाहान्तानाममन्त्रा पव । लक् कोटिहोमयोरिन्द्रं मित्रमित्यनेन गरुत्मद्रोमः । कोटिहोमे तु ब्रह्म-जनार्दनरुद्रस्कन्देभ्योऽपि नाममन्त्रेहोंमः । ततो यजमानो मण्डप-प्राग्द्वारकलशसमीपे त्रातारमिन्द्रं गर्ग रन्द्रस्थिष्टुप् । रन्द्रप्रीत्यर्थं बिलप्रदाने विनियोगः । त्रातारमिन्द्रं रन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायाऽमुं सदीपमाषभक्तवित् समर्पयामि नम इति सदीपमाषमकवित दत्वा भो इन्द्र दिशां रच्च बित भच्च मम सकु-दुम्बस्थायुःकर्ता चेमकर्ता श्रमकर्ता शान्तिकर्ता पृष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता भवेति प्रार्थयेत्। प्रवमाग्नेयादिषु होमोक्ताऽग्न्यादिमन्त्रेवित्रदानं प्रार्थनं च। प्रवमधिदेवताप्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः स्पादित्रहेभ्योऽपिहोमोक्ते-स्तत्तन्मन्त्रेविनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्तोष्पतिच्नेत्राधिपतिभ्यश्च तत्तन्मन्त्रेविनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्तोष्पतिच्नेत्राधिपतिभ्यश्च तत्तन्मन्त्रेविनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्तोष्पतिच्नेत्राधिपतिभ्यश्च द्वादशवारं नारिकेलादिफल्युकाज्यं गृहीत्वा पूर्णांहुर्ति जुहुयात्।

तत्र मन्त्राः—समुद्राद्र्मिरित तुचस्य गीतमा वामदेवोऽति-स्त्रिब्दुण् पूर्णाहृतौ विनियोगः। एवमग्रेऽिप विनियोगः। मूर्द्धानिन्दवो भरद्वाजो वैश्वानरस्त्रिष्टुण् । पुनरिन्नर्वनेस्त्रुस्त्रादित्यास्त्रिष्टुण् । पूर्णा दिव विश्वदेवाः शतक्रतुरन्नुष्टृण् । सप्त ते श्रग्ते सप्तवानग्निर्जगती। धामं ते वामदेव श्रापो जगती। धामं ते स्वाहेति। यजमानस्तु इद-मग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते श्रन्नयेभ्यश्च न ममेति त्यजेत्। कातीयानां तु मूर्जानं दिव इत्येव पूर्णाहृतिमन्त्रः। श्रन्नय इदं न ममेति त्यागः। सामगानां तु प्रजापित श्रृषिर्गायत्री- खन्द इन्द्रो देवता यशस्कामस्य यजमानस्य यजनीयप्रयोगे विनियोगः। पूर्णहोमं यशसा जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै ददाति। वरं वृशे यशसामामि लोके स्वाहेत्यनेन स्रु वेशे व होमः। इन्द्रायेदं न ममेति त्यागः। ततो वसोर्द्धारया होष्यामीति सङ्कर्ण्य यजमानो वसोर्द्धारां जुहुयात्।

मन्त्रास्तु—श्रक्षिमील इति नवानां मधुद्धन्दा श्राग्नांयत्रीवसोद्धारायां विनियोगः। विष्णोर्नुकमिति ष्एणां दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप्।
श्रा ते पितरिति पञ्चदशानां गृत्समदो रुद्धस्त्रिष्टुप्। स्वादिष्टयेति
नवानां मधुच्छन्दः पवमानसोमो गायत्रो । महावैश्वानरसास्नो
महावैश्वानर ऋषिवैश्वानरो देवता पथ्यावृह्दतीछन्दः। ज्येष्ठसामनो
भरद्वाजो ऋषिवैश्वानरो देवता त्रिष्टुष्टुन्दः वसोर्द्धारां जुहोतीत्यनुवाकमपि पठन्ति शिष्टाः। एवं वसोर्द्धारां हुत्वा पूर्ण्पात्रविमोकादि च
यथाशाखं समाप्याऽऽचार्यसहिता ऋत्विजः सर्वोषधीभिरनुलिप्ताङ्गं
पत्नीपुत्रादिसहितं यजमानं स्वस्तशाखीयमन्त्रेनंवग्रहपीठसमीपस्थकलशोदकेन सम्पातकलशोदकेन वाऽभिषिश्चेगुः पौराणैश्व ।
ते च—सुरास्त्वामभिषिश्चन्तु अह्म-विष्णु-महेश्वराः।

वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कृषेणो विश्वः ॥१॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते। श्चाखण्डलोऽग्निभगवान् यमो वै निश्वः तिस्तथा ॥२॥ वरुणः पवनश्चेव धनाध्यत्तस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥३॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्ष्टितर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मितः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्र मातरः ॥४॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ।
श्रादित्यश्रन्द्रमा भौमो बुध-जीव-सितार्कजाः ॥४॥
ग्रहास्त्वामभिषिश्रन्तु राहुः केतुश्र तर्पिताः ।
देव-दानव-गन्धर्वा यत्त-रात्तस-पन्नगाः ॥६॥
श्रद्धयो मनवो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्राप्सरसां गणाः ॥७॥
श्रद्धाणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
श्रीषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्र ये ॥८॥
सितः सागराः शैलास्तीर्थान जलदा नगाः ।
एते त्वामभिषिश्रन्तु सर्वकामार्थसिद्धय इति ॥६॥

तच्छं योरावृणीमह इति । ततो यजमानः स्नात्वा शुक्कमाल्याम्ब-रघर श्राचार्यादीन् सम्पूज्य तेभ्यो दिल्लां दद्यात् । तत्राऽऽचार्याय घेतुम् । ब्रह्मणे कृष्णमनड्वाहम् । पवं सदस्यत्विद्वारपालादिभ्यो यथाशक्ति । तथा—

घेतुः शंखस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयः क्रमात्। कृष्णा मौरायसं छागं एता वै दक्तिणाः क्रमात्॥

महानुह्श्य देयाः। ततः शक्त्या ब्राह्मणान्मोजयेत् , सङ्क्रव्यद्वाऽ शक्ती। ततो दीनानाथेभ्यो भूयसीं दिन्नणां दत्वा मण्डपदेवतानां ब्रह्मपीठदेवतानां चोत्तरपूजां हत्वा यान्तु देश गणाः। अभ्यारिमद्-द्रयो। उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति ता उत्थाप्य विस्तृष्य मण्डपादीन् प्रतिमादीश्च सर्वान् सम्भारानाचार्याय प्रतिपाद्य, यस्य स्मृत्या च नामोक्तवा, प्रमादात्कुर्वतामिति पठित्वा कर्मेश्वरार्पणं कत्वा विप्राशिषो गृहीत्वा तान् नमस्कृत्य सुहृद्युतो भुञ्जोतेति सर्वे शिवम्।

इति श्रीसदृशङ्करात्मजनीलकण्डस्ते शान्तिपरिभाषाप्रयोगः।

💉 🛪 अथ ग्रहयोगशान्तिः \star

यानके दुर्भिनादि भयं चैव चतुर्ग्रहसमन्वये । महारोगभयं राष्ट्रतयो द्व विनाशनम् ॥१॥ पञ्चप्रहसमा थोगे दुभिन्नं संकरादिकम् । जनसयो नृपवैरं गर्भनाशस्तु जायते ॥२॥ ग्रहषट्कसमायोगे मन्त्रिणो मरणं भवेत् । परवरवादि भयं सर्वे सङ्करादि जनत्तयः ॥३॥ पट्टराज्ञीविनाशो वा महाभयमथाऽपि वा । सप्तप्रहसमायोगे ज्ञितीशमरणं ध्रुवम् ॥४॥ जगत्मलयमेवाऽपि तदा निर्मानुषं जगत्। श्चत अर्ध्व महोत्पातनानादुःखमहाकुलम् ॥४॥ सूर्यः स्याद्व्यतिरिक्तश्चेत्तदा योगो महाद्भुतः । विना चन्द्रेख योगोऽपि जगत्मत्तयकारणम् ॥६॥ तदक्षजातजन्तूनां महारोगो महाभयम् । अर्थनाशः स्थाननाशो मानहानिर्देगीडनम् ।।७।। ः वातिपत्तादिसम्भूतमहापीडा ् महद्भयम् समा योगग्रहा नृष्णां दोषान्कुर्वन्ति सर्वेदा ॥=॥ े प्यमासाभ्यन्तरे वाऽपि आयुर्हीनः श्रियस्तथा । जन्माष्टद्वादशे राशौ चतुर्थे पञ्चमेऽपि वा ॥६॥ ूर्वीक्रफलमेवात्र तस्माच्छान्ति प्रयत्नतः । कुर्याहीषानुसारेण वित्तशार्व्य न कारयेत् ॥१०॥ तत्त्वद्रग्रहाकृतिं कृत्वा सौवर्णेन प्रयत्नतः। मुवर्षेन तदर्देन पादेनाऽपि कनीयसीम् ॥११॥ वित्तशाट्यं न कर्त्तब्यं कर्त्तब्यं शक्तितो नरैः। पूर्वीकलक्षणेनैव ग्रहमूर्ति च कारयेत् ।।१२॥

्रयहयोगनमाणतः । ग्रहस्यैकेककलशं कारयेत्कुम्भमेकं वा निर्वणं सृदृढं नवम् ॥१३॥ ब्रहस्येशानदिग्भागे शुद्धदेशे समस्थले। कुएंडे वा स्थिएडले वाऽपि होमं कुर्याद् विधानतः ॥१४॥ तस्य पूर्वोत्तरे देशे पूजास्थानं पकन्पपेत्। चतुरस्रं इस्तमात्रं स्थिएडलं तएडुलेन तु ॥१४॥ लिखेइग्रहाकृति तत्र स्थापयेत्मतिमां ततः। आधमत्यधिदेवादीन् दित्ताणोत्तरतः तिपेत् ॥१६॥ उक्तगन्धेस्तथा पुष्पैस्तत्तनमान्यैः फलौरपि । तत्तद्महोक्तमन्त्रेण पूर्वोक्तेनैव पूजयेत् ॥१७॥ स्वस्तिवाचनपूर्वेण आचार्य ऋत्विजैः सह। ग्रहपूजादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं समर्पयेत् ॥१८॥ ततो होमं प्रकृवीत स्वयुद्धोक्तविधानतः। चतुर्थ्यन्तं प्रकुर्वीत कलशस्थापनं ततः ॥१६॥ पूर्वोक्तविधानेन शुद्धतोयेन पूरयेत्। पश्चामृतं पश्चगव्यं पश्चत्वक् पश्चपन्नवम् ॥२०॥ तत्र मन्द्रैविनिचिष्य श्रीषथानि विनिचिपेत्। तत्तद्रप्रहोक्तवि धना मूल्यान्यादाय निः चिपेत्॥२१॥ श्रन्तिद्वैर्वारुणैर्वाऽपि कलशं पूर्येद्गुरुः। तत्त्रद्रग्रहाक्तविविधेस्तत्तन्मन्त्रेर्हुनेद्ये ॥२२॥ चर्वाज्ये जुहुयात्पश्चात्तिलाहुतिमथाचरेत् । अथ स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।।२३॥ भद्रासनोपविष्टस्य यजगानस्य ऋत्विजैः। कलशस्योदकेनैवमभिषेकं समाचरेत् ॥२४॥ योगग्रहोक्तमन्त्रैथं अधिमत्यधिमन्त्रतः।

नवग्रहोक्तमन्त्रैश्र जातवेदादिपश्चकैः ॥२५॥ त्रियम्बकेन मन्त्रेण च्रेत्रस्य पतिना श्रपि। इन्द्रद्वयेनैव लोकपालाष्ट्रकैरपि ॥२६॥ मुरास्त्वा इति मन्त्रेण येन देवादयः ऋगात् । ्र श्रन्येश्व पुरायस् क्तैश्व श्रभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ श्रभिषेकासूतं बस्नमाचार्याय निवेदयेद । ं ततः शुक्राम्बरघरः कुर्यादाच्यावलोकनम् ॥२⊏॥ ऋत्विगभ्यो दिचणां दद्यादेतुं शङ्कादिकानपि । तदभावे यथाशक्ति हिरएयमपि दापयेत् ॥२८॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाविभवसारतः एवं यः कुरुते भक्त्या ग्रहदोषविवर्जितः ॥३०॥ ्पूर्वोक्तसवदोषेश विम्रकः पुत्रवान मुखी। ब्रायुरेश्वर्यसम्पन्नो जीवेदर्षशतं नरः ॥३१॥ इह लोके सुखी भूत्वा परचाच्छिवपुरं त्रजेत् । इति ग्रहयोगशान्तिः॥

द्यथ ग्रहस्नानानि ।। विष्णुधर्मीत्तरे— मजिष्ठा-मदमातङ्गे कुङ्कम् रक्तचन्दनम् । पूर्णकुम्भे कृतं ताम्रे सूर्यस्नानं विधीयते ॥१॥

मदमातङ्गम् = गजमदः।

उशीरं च शिरीषं च कुडूमं रक्त चन्दनम्। शङ्कन्यस्त्रिदं स्नानं चन्द्रदापविनाशनम् ॥२॥ स्वदिरं देवदारं च तिलानामलकानि च। पूर्णकुम्भे कृतं रौप्ये भौमपीडाविनाशनम्॥३॥ नदीसङ्गमतोयानि तन्मृदा सहितानि च। नयस्तानि कुम्भे माहेये बुधपीडाविनाशनम्॥४॥ माह्ये= मृन्मये।

श्रीदुम्बरं तथा विन्वं वटमामलकं तथा।
न्यस्तं तु कुम्भे सौवर्णे जीवपीडाविनाशनम्।।।।
गोरोचना नागमदः शतपुष्पा शतावरी।
विन्यस्ता राजते कुम्भे शुक्रपीडाविनाशनम्।।६॥
तिलान् माषान् मियकुं च गन्धपुष्पं तथैव च।
न्यस्तं काष्णीयसे कुम्भे सौरिपीडाविनाशनम्।।।।।
गुग्गुलं हिकुलं तालं शुभां चैव मनःशिलाम्।
श्रुक्ते च माहिषे न्यस्येद्राहुपीडाविनाशनम् ।।८॥

तालम् = हरितालम्।

बराहनिहतां राजन ! पर्वताग्रमृदं तथा । छागचीरं खड्मपात्रे केत्रपीडाविनाशनम् ॥६॥ बराहनिहता = बराहोरखाता । खड्गो = गण्डकः । एक्तं ग्रहस्तानमिदं सर्वपीडाविनाशनम् । इति ग्रहस्तानानि ॥

प्रथाऽऽदित्यशान्तिः । भविष्ये--

श्चादित्यवारं हस्तेन पूर्व गृह्य विचच्चणः ।
मन्त्रोक्तविधिना सर्व कुर्यात्पूजादिकं स्वेः ॥१॥
मत्यर्कं सप्तनक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ।
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद्भाक्षणभोजनम् ॥२॥
भास्करं शुद्धसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ।
तास्त्रपात्रे स्नापियसा रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥३॥
रक्तवस्त्रयुगच्छनं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।
होमं धृततिलैः कुर्याद्रविनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिष्रोऽष्टोसारशतमष्टाविद्यातिरेक क ॥४॥

होतच्या मधुसपिंभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।

मन्त्रेणाऽनेन विदुषे ब्राह्मणाय मदापयेत् ॥६॥

श्रादिदेव ! नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते ! दिवाकर ! ।

त्वं रवे ! तारयस्वाऽस्मांस्तस्यात्संसारसागरात् ॥७॥

व्रतेनाऽनेन राजेन्द्र ! भवेदारोग्यमुत्तमम् ।

द्रव्य-सम्पत्मुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ॥८॥

श्रापे संवादिनी चेयं शान्तिः पुष्टिः सदा गृणाम् ।

सूर्यपीढा सुवारामु कृता शान्तिः शुभनदा ॥

इत्यादित्यशान्तिः ॥१॥

अथ चन्द्रशान्तिस्तत्रैव--

तद्व चित्रासु संग्रह्म से। मनारं विषद्मणः ।

श्रमेनैवोक्तविधिना कुर्यात्यू जादिकं विभोः ॥१॥

सप्तमे त ततः प्राप्ते कुर्याद् ब्राह्मणभाजनम् ।

कांस्यपात्रेऽथ संस्थाप्य सो। गृर्वे ततसम्भवम् ॥२॥

श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं श्वेतपुष्पः प्रपूजितम् ।

पादुकोपानहच्छत्रं भाजनासनसंयुतम् ॥२॥

हो। गृर्वे वित्तेः कुर्यात्से। मनाम्ना च मन्त्रवत् ।

समिधे। ऽष्टोत्तरशतम् हार्विशतिरेव वा ॥४॥

होतव्या मधुसपिभ्या दध्ना चैत्र घृतेन च ।

दध्यस्रशिस्तिरे कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥४॥

मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्र ! सम्यग्भत्त्या समन्वितः ।

महादेवजातिवद्योपुष्पगोचीरपाण्ड्र ! ॥६॥

से। सीम्यो भवाऽस्माकं सर्वदा ते नमे। नमः ॥

इति चन्द्रशान्तिः ॥२॥

अय मङ्गलशान्तिः--

स्वात्यामङ्गारकं गृह्य ज्ञमायां नक्तभाजनम्। सप्तमे त्वय सम्माप्ते हैमं ताम्रे निवेश्य वै ॥१॥

स्तमा ≃ भृः।

रक्तवस्तयुगच्छन्नं कुंकुमेनानुलेपितम् ।
निवेद्य भक्तकं सारं पुष्पभूपात्ततादिभिः ॥२॥
हेमं घृतितलैः कुर्यात्कुजनाम्ना च मन्त्रवित् ।
सिमधोष्टात्तरशतमष्टाविशतिरेव वा ॥३॥
हेतव्या मधुसर्विभ्यां दथ्ना चैव घृतेन च ।
मन्त्रेणाऽनेन तं दद्याद्व्रास्मणाय कुटुम्बिने ॥४॥
कुज ! कुमभवोऽपि त्वं मङ्गलः परिपठ्यसे ।
अमङ्गलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम् ॥४॥
एवं कृते भौमकृतं दुष्कृतं शान्तिमामुयात् ।
कर्त्तव्यं भौमपीदासु तस्मात्मयतमानसैः ॥६॥
इति भौमशान्तिः ॥३॥

अथ बुधशान्तिः--

विशाखामु बुधं गृह्य सप्तनकान यथाऽऽचरेत् ।
बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ॥१॥
शुक्र वस्त्रयुगच्छनं शुक्रमान्यानु छेपनम् ।
गुडौदनोपसंहारं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२॥
बुध ! त्वं बुद्धिजननो बोधवान सर्वदा हणाम् ।
तस्वावबोधं कृत् मे सोमपुत्र! नमो नमः ॥३॥
होमं घृततिलैः कुर्याद् बुधनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिषोऽष्टोशरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥४॥
होतव्या मधुसपिंश्या दधना चैव घृतेन च ।
बुधशान्तिरियं मोका बुधवैकृतनाशिनी ॥४॥

बुधदोषेषु कर्तन्या तथा शान्तिकपौष्टिके ॥ इति बुधशान्तिः॥

अथ गुरोः शान्तिः---

गुर्के चैनानुराधामु पूजयेन्निकतो नरः ।
पूर्वोक्तिविधियोगेन सप्तनकान्यथाचरेत् ॥१॥
हैमं हेममये पात्रे स्थापियत्वा बृहस्पतिम् ।
पीताम्बरगुगच्छनं पीतयज्ञोपनीतिनम् ॥२॥
पादुकोपानहच्छत्रकमण्डलुविभूषितम् ।
पूजयेत्पीतकुमुमैः कुङ्कुमेन विलेपितम् ॥३॥
धृपदीपादिभिदिंच्यैः फलैश्चन्दनतण्डलैः ।
खण्डखाद्योपहारैश्च गुरोरम्रे निवेदयेत् ॥४॥
धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! ज्ञानविज्ञानपारग ! ।
विज्ञुधार्तिहराचिन्त्य देवाचार्य ! नमोऽस्तु ते ॥४॥
होमं घृततिलैः कुर्याद्रगुरुनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिधाऽष्टोचरशतमष्टाविशतिरेव वा ॥६॥

समिघोऽत्राऽश्वत्थस्य ।

होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।

एतद्भवतं महापुष्यं सर्वेशपहरं शिवम् ॥७॥
तुष्टिपुष्टिकरं नॄणां ग्रुक्वैकृतनाशनम् ।
विषयस्थे गुरौ कार्या महाशान्तिर्यं नृभिः ॥८॥
इति बृहस्पतिशान्तिः ।

श्रथ गुरुपूजा ॥ स्कान्दे—

कन्याविवाहकाले तु शुद्धिर्यस्या न विद्यते । ब्राह्मणस्योपनयने यस्य स्यादुत्थितो गतः ॥१॥ उत्थितः = प्राप्तः॥ पूभिः पूना गुरोः कार्या विधिवद्धक्तिभावितैः । मदन्ती-कामपुष्पाणि पात्रं पालाशसर्पपाः ॥२॥ मदन्ती = यूथिका । कामो = मदनसृक्षाख्यः ॥ ५, ०००००००

गुडू को वा स्वपामार्ग विडक्न शक्विनी बचा ंसहदेवी विष्णुकाता सर्वीवध्यः शतावरी ॥३॥ कुष्टं मीसं इरिद्रे दे सुरा शैकेयवन्दनम् िक्चा कर्चूरमुस्तं च सर्वीषध्यः मकीर्तिताः ॥४॥ तथैवाऽश्वत्थभृका च पञ्चगन्यं जलं तथा। न्तनं सादकुम्भं च पीतवस्त्रसमन्वितम् ॥४॥ पञ्चरत्नैः समायुक्तमोशान्यां स्थापितेऽनलात् । ्या आष्ठाति मन्त्रेण सर्वास्त्रस्मिनिवनित्तिपेत् ॥६॥ कुम्भस्यापरि भागे तु स्थापयिला बृहस्पतिम्। सुवर्णपात्रे सौवर्णी मतिमां तु युधिष्ठिर । ॥७॥ कारयेच यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। ्षीतवस्त्रयुगच्छनां पीतयज्ञोपवीतिनीम् ॥८॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यस्तते। होमं समाचरेत्। 🤝 समिषे।ऽर्वस्थरुत्तस्य हेत्तव्याऽहोऽत्तरं शतम् ।।।। तिलाबीहियवीन्मिश्रं होतन्यं च यथाक्रमम् । बृहस्पतेति मन्त्रेण ऋषिवन्दः समन्त्रितः।।१०॥ अन्त्रेखाऽनेन जुहुयाद्धान्यपूर्गं च यत्नतः। तता हामावसाने तु पूजयेच बृहस्पतिम् ॥११॥ पीतगन्धेस्तथा पुष्पेर्धूपैदीपेश्च भक्तितः। दध्यादनं च नैवेदं फलताम्बूलसंयुतम् ॥१२॥ मन्त्रेणाऽनेन कौन्तेय ! समभ्यव्ये पुनः पुनः । नगस्तेऽक्रिरसां नाथ ! वाक्यतेऽथ बृहस्यते ! ॥१३॥

क्र्रग्रहैः पीडितानाममृताय नमे। नमः । पूजियत्वा सुराचार्य्य पश्चादर्घ निवेदयेत् ॥१४॥ गम्भीरहटरूपाङ्ग ! देवेष्य ! सुमते ! प्रभा ! । नमस्ते वाक्पते ! शान्त ! गृहाणाऽर्ध्य बृहस्पते !॥१५॥ अर्धमन्त्रः । अर्धे दन्ता सरेशस्य जपहोसं समापयेत ।

श्रर्घ दत्वा सुरेशस्य जपहोमं समापयेत् । भक्तयायते सुराचार्य ! होमपूजादि संस्कृतम् ॥१६॥ तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थे बृहस्पते ! नमो नमः । संकल्पमन्त्रः-मन्त्रेणाऽनेन संकल्प्य पश्चात्सम्प्रार्थयेन्तृप ! ॥१७॥

जीवा बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ।
वाचस्पतिर्देवमन्त्री शुभं कुर्यात्सदा मम ॥१८॥
प्रार्थनामन्त्रः-एवं सम्प्रार्थयेदेवमाचार्य च प्रपूजयेत् ।
सर्वोपचारसंयुक्तां प्रतिमां तां युधिष्ठिर ।॥१६॥
प्रश्मय च गवा युक्तामाचार्याय निवेदयेत् ।
प्रथाऽऽचार्यस्तु नियतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२०॥
यजमानं सपत्नीकं शान्तचित्तं जितेत्द्रियम् ।
कुम्भोदकं गृहीत्वा तु मन्त्रैरेतैः प्रसिश्चयेत् ॥२१॥
इदमापाथमन्त्रेण जामदग्निम्चा तथा ।
या श्रोपधीरस्वावतीः कृष्मांदेश्वाभिषेचयेत् ॥२२॥
पश्चात्सम्भोजयेद्विप्रान् यथाशक्तवा युधिष्ठिर ।

एवं कृत्वा गुरोः पूजां सर्वान्कामानवाप्तुयात्॥२३॥ संक्रान्ताविष कौन्तेय ! तथा स्वाभ्युदयेषु च । कुर्वन बृहस्पतेः पूजामभीष्टं फलमाप्तुयात् ॥२४॥

संकानती = गुरुसंकानती।

इति गुरुपूजी । 💛 😘

अथ शुक्रशान्तिभविष्ये-

शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य चमार्या नक्तभाजनम् । चमा=भुः।

गुरुक्तक्रममार्गेण द्विजसन्तर्पणेन च ॥ १॥
सप्तमे स्वथ सम्प्राप्ते रोप्यं शुक्रं तु कार्यत् ।
वंशपात्रे च संस्थाप्य पूजयेत्सितपंकजैः॥ २॥
तदभावे सितैः पुष्पेस्ताम्बूलैश्वन्दनेन वा ।
श्रम्रे तस्य पदातव्यं पायसं घृतसंप्लुतम् ॥ ३॥
द्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
भागवो भगशुक्रस्य श्रुचिः श्रुतिविशारदः ॥ ४॥
हित्वा ग्रहकृतान्दोषानायुरारोग्यदे।ऽस्तु सः ।
होमं घृतिलैः कुर्याच्छुक्रनामना च मन्त्रवित्॥ ४॥
सिमधे।ऽष्टे। तरशतमण्टाविश्विरेव वा ।
होतव्या मधुसर्विभ्यां दक्षा चैव घृतेन च ॥ ६॥

अथ पतिशुक्रादिशान्तिः। तत्रैव मात्स्ये---

श्रथाऽतः शृणु भूपाल ! मितशुक्रमशान्तये ।
यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये सित ॥ १ ॥
शुक्रपूजा मकर्तव्या तां निशामय भारत !
राजते वाऽय सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः ॥ २ ॥
शुक्रपुष्पाम्बरयुते श्वेततगडुलपूरिते ।
निशाय राजतं शुक्रं शुचिग्रक्ताफलान्वितम् ॥ ३ ॥
महाश्वेतसमायुक्तं सामगाय निवेदयेत् ।
नमस्ते सर्वेशेकेश ! नमस्ते भृगुनन्दन ! ॥ ४ ॥
देव ! सर्वार्थसिध्यर्थं गृहाणार्ध्यं नमोऽस्तु ते ।
दत्वैवमर्ध्यं कौन्तेय ! मिणपरम् विसर्जयेत् ॥ ४ ॥

एवं शुक्रोद्ये कुर्याद्यात्रादिषु च भारत ! । ्तदृद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर्!॥६॥ सौवर्ष्यपत्रे सौवर्ष्यममरेशं पुराहितम् । पीतपुष्पाम्बरघरं कृत्वा स्नात्वाऽथ सर्पपैः ॥ ७ ॥ पालाशाश्वत्थभङ्गेन पश्चगच्यतिकेन तु । भक्रः=प@लवः। पीताङ्गरागवसने। घृतहोमं तु कारयेत् ॥ ८ ॥ भग्गम्य तां गवा सार्छ ब्राह्मणाय निवेदयेत् । नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ ! वाक्पते ते बृहस्पते ! ॥ ६ ॥ क्रूग्रहेः पीडितानाममृताय नमा नमः । संकान्ताविष कौन्तेय ! यात्रास्वभ्युद्रयेषु च ॥१०॥ कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्जुते । श्रथना मौक्तिकान्येव सुष्टतानि बृहन्ति च ॥११॥ भार्गवाङ्गिरसौ चिन्त्य तान्येव प्रतिपादयेत् । इति मतिशुकादिशान्तिः । श्रथ शनिःराहु-केतृशान्तयः । भविष्ये -शनैश्वरं राहु-केत् लोहपात्रेषु नित्तिपेत् । कृष्णाग्रुकः समृतो भूपे। दक्षिणा च स्वशक्तितः॥ १ ॥ प्रथाक्रमं श्रमीद्वीक्रुशानां समिशः स्मृताः। । = सप्तमे स्वयं सम्माप्तेन वर्ष्णीन बाड्य कारयेत् ॥ २ ॥ कृष्णबस्ययुगन्द्रकामेकेकं कारयेद्र्युभः । ् मृगनाभ्या समासभ्य छशरान्विनवेद्य च ॥ ३ ॥ होमानसाने तत्सर्व शास्त्रणायापपादयेत । शानेश्वर ! नगस्तेऽस्तु नगस्ते राहवे तथा ॥ ४ ॥ केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वे शान्ति प्रयच्छतु । प्रं कृते भवेदास्तु तिक्रवेश स्पेशक्य ! ॥ ॥ ॥

यदि भौमा रिवसुतो भास्करे। राहुणा सह । केतृश्च मूर्त्ती तिष्ठन्ति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥ ६ ॥ श्रनेन कृतमात्रेण सर्वे शाम्यन्त्युपद्रवाः । इति शन्यादिशान्तिः ।

भविष्योत्तरे-ततो मन्दस्य दिवसे स्नानमभ्यक्रपूर्वकम्। कार्य देयं च विमाय तैलमभ्यक्रहेतवे ॥ १ ॥ युस्तु सम्बत्सरं यावत्माप्ते शनिदिने रतः। तैलंददाति विमाणां स्वशक्तचाऽभ्यज्यतेऽपि वा ॥२॥ ततः सम्बत्सरस्यान्ते शाप्ते तस्य दिने पुनः । लौहं घटापित सौरिं तैलकुम्भे विनिचिपेत ॥ ३ ॥ लौहे वा मृत्मये वाऽथ कृष्णवस्त्रयुगान्वितम् । कुष्णगोदिचणायुक्तं कृष्णकम्बलशायितम् ॥ ४ ॥ ा. रवयमभ्यक्तः स्नात्वा कृष्णपुष्पेस्तमचयेत् । सुगन्धिगन्धपुष्पेश्र कुसरान्नैस्तिलादनैः ॥ ५ ॥ पूजियत्वा सूर्यपुत्रं ज्ञमस्वेति पुनः पुनः। कृष्णाय द्विजमुख्याय तदभावे नराय च ॥ ६ ॥ देयः शनैश्वरी भक्तचा मन्त्रेणाऽनेन वै द्वित! क्रावकाकनवशाज्यवनं नामीति या ग्रहा रुष्टा। ७॥ तुष्टी धनकनकसुखं ददाति सोऽस्मान् शनैश्वरः पातु । । वार्ष्याः पुनर्नेष्टराज्यायः नरायः परितेषितः ।। 🗷 ॥ स्वमे ददौ निजं राज्यं समे सौरिः पसीदतु। 🔢 🏂 कीर्णं नीलाञ्जनमरूयं मन्दचेष्टामसारियम् ॥ ६ ॥ छ।यामार्तगडसम्भूतं नमस्यामि शनैश्ररम् । । १ ममेरऽके पुत्राय शनैश्वराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय॥१०॥ अत्वा रहस्यं भव कामदस्त्वं फलपदा मे भव सूर्यपुत्र! । ४ नमें। इस्तु प्रेतराजाय कशरेहाय वे नमः ॥११॥

शनैश्वराय क्रूराय शुद्धबुद्धिपदायिने । य एभिनीमभिः स्तीति तस्य तृष्टि ददात्यसौ । १२॥ तदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति । इति शनिवतम् ।

स्कान्दे-श्रावणे मासि संजाते शोभने शनिवासरे।
होहरूपं शनि कृत्वा स्नाप्य पश्चामृतैनवैः॥१॥
पुष्पैरष्टविधेपूँपैः फलैश्चैव विशेषतः।
मन्त्रैः प्रपूजयेदेतैः क्रमेण ग्रहमुत्तमम्॥२॥
कोणस्तु पित्रहो वभ्रः कृष्णा रौद्रो यमोऽन्तकः।
सौरिः शनैश्वरे। मन्दः पिष्पलादेन संस्तृतः॥३॥
शको देवीति सर्वत्र वैदिकेन च पूजयेत्।
पूजयित्वा च नैवेद्यं ततः कुर्यास्क्रमेण तु॥४॥
समाषभक्तं पथमे द्वितीये पायसं शुभम्।
तृतीये त्विम्बली कार्या चतुर्थे पूरिका शुभा॥ ४॥
इति शनिस्तोत्रम्।

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुति चक्रे स बालकः ।

पिष्पलादा दिजश्रेष्ठः प्रिणपत्य ग्रहुर्गुहुः ॥

नमस्तै कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमाऽस्तु ते ।

नमस्ते वश्रुरूपाय कृष्णाय च नमाऽस्तु ते ॥

नमस्ते रोद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च ।

नमस्ते यहसंद्राय नमस्ते सौरये विभा ! ॥ ३ ॥

नमस्ते मन्दसंद्राय शनैश्रर ! नमोऽस्तु ते ।

प्रसादं कुरु देवेश ! दीनस्य प्रणतस्य च ॥ ४ ॥

श्नैश्वरखवाच-परितृष्टोऽस्मितं वत्स ! स्तोत्रेणाऽनेन साम्प्रतम्।
वरं वस्य भे। वत्स ! येन यच्छापि वाङ्कितम्॥ ५॥
पिप्पलाद खवाच-श्रद्ध प्रभृति ने। पीढा बालानां रविनन्दन !
त्वया कार्या महाभाग ! न स्वकीया कथश्चन ॥ १॥
यावद्वर्षाष्ट्रकं जातं मम बान्येन सूर्यज !
स्तोत्रेणाऽनेन योऽन्यस्त्वां ब्रूयात्प्रातक्ष्यस्थितः॥ सा
तस्य पीढा न कर्त्तव्या देया लाभा महाश्चन !
श्रद्धाष्टिमकया योगे तावके संस्थिते नरः॥ ३॥

सार्द्धसप्तवर्षपर्यन्तं द्वादशजनमद्वितीयराशिमिर्यः शनैश्वरयोगः सोऽर्द्धाष्टमिकया योग इत्युच्यते ।

तन वारे तु सम्माप्ते यस्तिलान होमसंयुतान ।
शक्तिया इदाति हो। तस्य भीदा कार्या त्वया विशेष ! ॥४॥
कुष्णां मां यस्तु विश्राय तवेष शेन यन्छति ।
श्रद्धाष्ट्रमिकया पीढा तस्य कार्या त्वया न च ॥४॥
श्रमीसमिद्धियों होमं तवेष शेन निवेषेत् ।
तथा कृष्णतिलैश्चैव कृष्णपुष्पानुलेषकै ॥ ६॥
पूजां करोति यस्तुभ्यं भूपं वै ग्रग्गुलं दहेत् ।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य त्याज्या तस्य त्वया व्यथा॥७॥
सूत स्वाच-एवम्रक्तः शनिस्तेन वादमित्यवजन्य च ।
नारदं समनुद्धाय जगाम निजसंश्रयम् ॥ = ॥

इति शनैश्वरशान्तिः॥

1 h 1 h de l'en le l'année de l'entre l'entre

अथार्कविवाहः। श्योगस्ते मात्स्ये—

त्तीयां मानुषीं नैव चतुर्थी यः समुद्रहेत्। पुत्रपौत्रादिसम्पनः कुटुम्बी साऽग्निको वरः॥ १॥ ेउद्देदितिसद्भार्थ तृतीयां न कदाचन मेहादक्कानता वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम्।।२॥ नश्यत्येव न सन्देहा गर्भस्य वचनं यथेति । तत्रैव संग्रहे-सृतीयां यदि चोद्दाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत्। चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्क समुद्रहेत् ॥१॥ श्रादित्यदिवसे वाऽपि हस्तर्त्ते वा शनैश्वरे । शुभे दिने वा पूर्वीह कुर्यादर्भविवाहकम् ॥ २ ॥ व्यासः-स्नार्त्वाऽलंकुतवासास्तु रक्तगन्थादिभूषितम् सपुष्वफलशास्त्रैकमकीगुन्मं समाश्रयेत् ॥१॥ सन्तत्त्रारोन संयुक्तमर्के संस्थाप्य यज्ञतः। श्रक्षकन्यामदानार्थमाचार्य कन्पयेत्पुरा ॥ २ ॥ अर्फसिकिधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत् । नान्द्रिशाद्धे हिरण्येन ब्यष्टवर्गान्मपूजयेत् ॥ ३ ॥ पूजयेनमञ्जूपर्केण वर्र विषस्य इस्ततः । यद्गोपकीतं वसं च इस्तकर्णादिभूषणम् ॥ ४॥ ् उष्णीवगन्धमान्यादि वरायाऽसमै मदाप्रयेत्। स्वशास्त्रोक्तमकारेण मधुपर्क समाचरेत्।। ५ ॥

ब्राह्मे-प्रामात्माच्यामुदीच्यां वा सुपुष्पफलसंयुतम्। परीक्ष्य यव्वते।ऽधस्तात्स्थिषडिलादि यथाविधि॥६॥

विक्रिक के किया विति शक्ता के अवस्था

कृत्वार्क पुरतस्तिष्ठन् पार्थयेत्तद्द्विजे।त्तमः । त्रिळेकिवासिन्! सप्तारव ! छायया सहिता रवे ! ॥७॥ तृतीयोद्दाहजं देशं निवारय मुखं कुरु । तत्राऽध्याराप्य देवेशं छायया सहितं रविम् ॥ ८ ॥ बस्त्रैर्मान्येस्तथा गन्धेस्तन्मन्त्रेखेव पूजयेत् तत्रैव श्वेतवस्त्रेण तथा कार्पासतन्तुभिः॥ ६ ॥ गन्धपुष्पैः समभ्यच्ये अन्तिङ्गरिभिष्टिय च । गुडौदनं तु नैवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥ १० ॥ व्यासः-अर्क मदिचाणी कुर्वन् जपेन्मन्त्रमिमं बुधः। मम मीतिकरायेयं मया सृष्टा पुरातनी ॥ ११ ॥ अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं मति रचतु । पुनः पदत्तिणीकुर्यान्मन्त्रे णानेन मन्त्रवित् ॥ १२ ॥ नगस्ते मङ्गळे देवि ! नगः स्वितुरात्मजे ! त्राहि मां कृपया देवि! पत्रीत्वं मे इहागता ॥ १३॥ श्चर्कत्वं ब्रह्मणा सृद्धः सर्वेपाणिहिताय च । वृत्ताणामादिभूतस्त्वं देवानां मीतिवद्धं नः ॥ १४ ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय। ततश्च कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलमुद्धरेत् ॥ १६ ॥ आदित्यः सविता चार्कः पुत्री पौत्री च निष्त्रका । गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत् ॥१६॥ सुमुहुर्ते निरीत्तेत स्वस्तिमुक्तमुदीरयन्। ब्राशीभिः संहितैः कुर्यादाचार्यममुखैद्विजैः ॥१७॥ श्रथाचार्यं समाहृय विधिना तन्मुखाच ताम्। प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिना चरेत् ॥१६॥ व्यासः - अर्बेकन्यामिमां विश्व ! यथाशक्तिविभूपिताम् । गोत्राय शर्मेणे तुभ्यं दत्तां तिमु ! समाश्रय ॥१६॥

श्रद्धान्यत्ततकर्भीणि कृत्वा कङ्कुणपूर्वकम्। यावत्पश्चरता सूत्रं तावदर्क प्रवेष्ट्येत् ॥२०॥ स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण गायत्र्या वाऽथवा जपेत्। पञ्जीकृत्य पुनः सूत्रं स्कन्धे बध्नाति मन्त्रतः ॥२१॥ बृहत्सामेति मन्त्रेण सूत्ररत्तां मकन्पयेत्। अर्थस्य पुरतः पथाद्विणोत्तरतस्तथा।।२२॥ कुम्भांश्र नित्तिपेत्पश्रादाग्नेयादिचतुष्ट्ये । सबस्तं प्रतिकुम्भं च त्रिसूत्रेर्णैव बेष्ट्येत्।।२३॥ हरिद्रा-गन्धसंयुक्तं पूरयेच्छीतलं जलम्। प्रतिक्कम्भं महाविष्णुं सम्पूज्य परमेश्वरम् ॥२४॥ पाद्यार्घादिनिवेद्यान्तं कुर्यात्राम्नैव मन्त्रवित्। श्रत्र शौनकोक्तो होमनकारः-त्तीये स्त्रीविवाहे तु सम्पाप्ते पुरुषस्य तु। अर्क विवाहं वक्ष्यामि शौनकोऽहं विधानतः ॥ १ ॥ अर्कसिनिधिमागत्य तत्र खस्त्यादि वाचयेत्। नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत स्थिएडलं च प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥ श्चर्कमभ्यच्यं सौर्या च गन्धपुष्पात्ततादिभिः। सौर्या = सूर्यदेवत्यया । श्राकृष्णेनेत्यनया । ख्यं बालं कृतस्तद्वत् वस्त्रमान्यादिभिः शुभैः ॥ ३ ॥ श्चर्कस्योत्तरदेशे तु समन्वारब्ध एतया। पतया = श्रर्ककन्यया। चन्छेखनादिकं कुर्यादाघारान्तमतः परम् ॥ ४ ॥ श्राज्याहुति च जुहुयात्संगोभिरनयैकया। यस्मै त्वा कामकामायेत्येतयर्चा ततः परम्।। ४।। व्यस्ताभिश्र समस्ताभिस्ततश्र स्विष्टकुद्भवेत् । .परिषेचनपर्यन्तमयाश्चेत्यादिकं क्रमात् ॥ ६ ॥

प्रार्थनामन्त्रादिविशेषमाह व्यासः--

पुनः मदिन्तगं कृत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।

मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥ ७ ॥

हत्युक्तवा शान्तिस्कानि जप्त्वा तं विस्रजेत्युनः ॥ ८ ॥

गोयुग्मं दिन्तिणां दद्यादाचार्याय च मक्तितः ॥ ६ ॥

इतरेभ्योऽपि विम्रभ्यो दिन्तिणां चाऽपि शक्तितः ॥ ६ ॥

तस्सर्वे गुरवे दद्यादन्ते पुरायाहमाचरेत् ।

श्रथ प्रयोगः ॥ तृतीयोद्वाहात्प्राग्दिनचतुष्टयाधिकव्यवहिते रिवन्त्रारे शिन्त्रारे हस्तनचत्रे श्रभिद्नान्तरे वा प्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा पुष्पफलयुताकोधस्तात्स्थिएडलं कृत्वाऽकेपश्चिमत उपविश्य मास-पद्माद्युव्लिखेय मम तृतीयमानुषीविवाह नदीषायनुत्यर्थमकैविवाहं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजन-वृद्धिश्राद्धाः चार्यवरणानि कुर्यात् । तत्र वृद्धिश्राद्धं हेम्ना । श्रथाचार्येण पूजितो वरः ।

त्रिलोकवासिन ! सप्तान्व ! छायया रहितो रवे ! तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥ १॥

इत्यर्के सप्रार्थ्यांके । ब्राइन्ग्रेनेति छायासिहतं रविमाबाहा श्वेत-बस्नस्त्राभ्यामावेष्ट्य सम्पूज्याऽऽपोहिष्ठेत्यादिभिरभिष्ठय गुडोद-नताम्बुलादि समर्प्य प्रदक्षिणीकुर्वम्—

मम प्रीतिकरायेयं मया सष्टा पुरातनी ।

श्यक्तेजा ब्रह्मणा सष्टा श्रस्माकं प्रतिरत्ततः ॥ १ ॥ इतिपठेत्

द्वितीक्ष्यदेत्तिणायां तु—

नमस्ते मङ्गले । देवि ! नमः सवितुरात्मजे !

श्राहि मां कृपया देवि ! पत्नीत्वं मे इहागता ॥ २ ॥

श्रक्ते ! त्वं ब्रह्मणा सष्टः सर्वेषाणिहिताय च ॥ १००० व्यक्ति । विवर्द्धना ॥ १००० व्यक्ति । विवर्द्धना ॥ १००० व्यक्ति । विवर्द्धना ॥ १००० व्यक्ति ।

तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशुं विनाशय ।। इति तत श्राचार्येण मासपचाद्युझिख्य काश्यपगोत्रामादित्यस्य पुत्रीं सबितुः पौत्रीमर्कस्य प्रपौत्रीमिमामर्ककन्यामित्युक्ते वरः 'स्वस्ति न इन्द्रो बुद्धश्रवा' इति स्कं पठनकं निरोचेत । तत श्राचार्यो विप्रेः सहाशिषो दत्वाऽमुकगोत्रामुकशर्मणे संप्रददे । इत्यर्ककन्यां दत्वा—

श्चर्ककन्यामिमां विष्ठ ! यथाशक्तिविभूषिताम् । गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विष्ठ! समाश्रय ॥ १॥ इति पठेत्—

वरस्तु यशो मे कामः समृद्धवतामिति प्रथमां धर्मो मे इति द्वितीयां यशोमे इति तृतीयाम् इति त्रीनक्षताञ्जलीनकोपिर चिष्ट्या गायत्रया परित्वेत्यादिना वा पञ्चावृता स्त्रेणार्कमावेष्ट्य तत्स्त्रं पुनः पञ्चगुणं कृत्वाऽर्कस्य स्कन्धे वध्वा वृहृत्सामेति रक्तां परिकन्द्रेणार्कस्य दिग्विदित्वष्टी कुम्भान् संस्थाप्य वस्त्रेण त्रिस्त्रेण चावेष्ट्रश्च हरिद्रागन्धाचन्तः श्चिप्त्वा तेषु नाम्ना महाविष्णुमावाहा षोडशोपचा-रैः सम्पूज्य स्थण्डिलेऽश्चि प्रतिष्ठाप्य आधारावाज्येनेत्यन्तमुक्त्वाऽत्र प्रधानं वृह्यपतिमञ्जि वायुं सूर्यं प्रजापति चाज्येन शेषेणत्यायुक्त्वाऽऽ-धारान्तेसंगोमिरक्तिरा बृह्यपतिस्त्रिष्ठुप् अक्तिवाहहोमे विनियोगः ॥

ॐ सङ्गीभिराङ्गिरसो नज्ञमाणो भग इ वेदर्यमणं निनाय । जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजया श्रुरिवाजी स्वाहा॥१॥

षृहस्पतय इदं न ममेति त्यजेत्। यस्मै त्वा वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् अर्थविवाहहोमे विनियोगः॥

ॐ यस्मै त्वा कामकामाय वर्ष संम्राड्यजामहे। तमस्मभ्यं कामंददस्व यथेदंत्वं घृतं पित्र स्वाहा ॥ २ ॥ भ्रानय इदं न मम । ततो व्यस्तसमस्तव्याहतिभिर्द्धत्वा स्विष्ट-कदादि कर्मशेषं समाप्यार्कं प्रवृत्तिणीकृत्य ।

मथा कृतमिदं कमें स्थानरेख जरायुखा। स्रक्रीपत्यानि नो देहि तत्सर्व चन्तुमईसीति॥१॥

१ 🕉 वृहस्पतेति प्रजुर्वेदिनाम् । १ ॐ अग्निन्दूतमिति ।

प्रार्थ्या वार्याय गोयुग्ममन्येभ्यश्च विषेभ्यो यथाशिक दिल्लां दत्वा शान्तिस्कं जप्त्वा पूज्योपस्करानाचार्याय दत्वा दिनचतुष्टयमिन्न कुम्भांश्च रहेत्। कुम्भेषु महाविष्णुं पूजयेश्च पञ्चमदिनकृत्यं ब्राह्मे-

चतुर्थे दिवसेऽतीते पूर्ववत्तां प्रपूच्य च ।। विस्टब्य होमपरिन च विधिना मानुर्धी पराम् । बद्धहेदन्यथा नैव पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ।। १ ॥ इति श्रीभट्टनीलकएटकते भगतन्तभास्करे शान्तिमयूखेऽकंवित्राहः । नारदः-कुलीर-ष्टप-चापान्त्य-नृ-युक्-कन्या-तुला-घटाः ।

राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्शवे ॥१॥ कुलीरः=कर्कटः।चापम्=धनुः। ग्रन्त्यः=मीनः।नृपुङ्= मिथुनम्।घटः=कुम्भः। स्मृतिचन्द्रिकायाम्—

शुक्रपत्ते सुशीला स्यात्कृष्णे पत्ते सा कुलटा भवेत् ।
कृष्णस्य दशमीं यावत् मध्यमं फलमादिशेत् ॥ १ ॥
तथा तत्रैव-श्रमा-रिक्ताऽष्ट्रभी-षष्टी-द्वादशी-प्रतिपत्स्विप ।
परिघस्य च पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ २ ॥
सन्ध्यास्पुस्रवे विष्ट्यामशुभं प्रथमात्त्वम् ।
रोगी पतित्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी ॥ ३ ॥
पतित्रता क्रेशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात् ।
कश्यपस्तु-श्रष्टमी-षष्ट्यमा-रिक्ता-द्वादशी-सङ्क्रमेऽिष वा ।
वैधृतौ व्यतीपाते च ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः ॥ १ ॥
विष्ट्यां सन्ध्यासु निद्रायां दुर्भगा प्रथमात्त्वा ।
नक्त्रफलमाह गर्गः-सुभगा चैव दुःशीला बन्ध्या पुत्रसमन्विता ।
धर्मयुक्ता वेत्र दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा ।
दीना प्रकावती चैव पुत्राख्या चित्रकारिणी ॥ २ ॥

साध्वी पितवता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी।
स्वकर्मनिरता हिंसा पुण्या पौत्रादिसंयुता॥३॥
नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता।
मुकार्थाठ्या धनवती दस्रचाँदेः क्रमात्फलम्॥४॥
स्मृतिरत्ने-शुभं चैव तु पूर्वाह्वे मध्याह्वे मध्यमं फलम्।
अपराह्वे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत्॥४॥

मध्यरात्रे तु मध्यं स्यात्पररात्रे शुभान्विता । कश्यपः-मिलना मन्दवारे तु रात्राविष तथैव चेति । समृत्यन्तरे-मध्याहे तु भवेद्देश्या निशीथे विधवा भवेत्॥ तथा-स्रमा-सङ्क्रान्ति-विष्ट्यां च व्यतीपाते च वैधृतौ।

परिघस्य तु पूर्वार्द्धे षट् षट् गएडातिगएडयोः ॥ १ ॥ व्याघाते नवशुळे तु नाड्यः पश्च चतुर्दश । वैधव्यमर्थहानि च स्नुतनाशं महद्भयम् ॥ २ ॥ वैधव्यं शत्रुष्टद्धं च दारिष्यं ज्ञीराजीवनम् । तेजोहानि समायाति सदा पुष्पवती क्रमात् ॥ ३ ॥ स्थलभेदे फलभेदमाह वशिष्ठः—

ग्रामाद्वहिः परग्रामे वाचेतस्याद्वयभिचारिणी । पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला ग्रहमध्यके ॥ ४ ॥ ग्राममध्ये तु दृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा । परागारे च दुःशोला श्रायुष्यं जलसन्निधी ॥ ४ ॥ वनमध्ये तु कन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ।

परागार इत्यनेनैव पितृभातृगृहे निषिद्धम् । तथा च शिष्टाचारः। विशेषनिषेधस्तु न दश्यते । तथा । चन्द्रे सद्दगुणसंयुक्ते देवरातः मनाच्छुभम् । शाबाशीचेऽपि अञ्चनमिति गुरवः । वस्त्रफलमाह वशिष्ठः – सुभगा श्वेतवस्ता स्याइहेडवस्ता पतिव्रता । चौमबस्ता चितीशा स्यात्रववस्ता सुखानिवता ॥ १ ॥ दुर्भगा जीर्णवस्ता स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरथरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥ २ ॥ मिलनाम्बरतो नारी दरिक्ता स्याद्रजस्वला ।

रजोविन्दुफलमाइ स एव--

वस्रे स्युर्विषमा रक्तविन्द्वः पुत्रमाष्त्रुयात् । समाश्रेत्कन्यका चेति फर्लं स्यात्प्रथमार्चवे ॥ १ ॥ देवरातः-सम्मार्ज्जनी-काष्ठ-तृष्णा-ऽग्नि-सूर्णन्

इस्ते द्धाना कुलटा तदा स्यात्। तन्योपभोगे तपसि स्थिता चेद् दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥ २॥

नारदः-तिथ्यृत्तवारा निन्धारचेत् शेफः कर्म निवारयेत्।
दोषाधिके ग्रुणान्यत्वे तत्तथाऽपि न कारयेत् ॥ १ ॥
दोषान्यत्वे ग्रुणाधिक्ये शेफः कर्म समाचरेत् ।
निन्धर्त्त-तिथिवारेषु यदि पुष्पं मदृश्यते ॥ २ ॥
तत्र शान्ति मकुर्वीत घृत-दूर्वी-तिलाचतैः ।
पत्येकं शतमष्टी च गायत्र्या जुहुयात्तवः ॥ ३ ॥
स्वर्ण-गो-भूतिलान् द द्यात्सर्वदोषापत्रुत्त्ये ।
भर्ता तत्राभिगमनं वर्ष्क्ययेच्छस्तदर्शनात् ॥ ४ ॥

वशिष्ठोपि-प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिककर्म कार्यम् । विवक्त्रयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यघस्त्रे ॥ ४ ॥ आतिवानां द्व नारीणां शान्ति वक्ष्यामि शौनकः । तिथिवारक्षयोगेभ्यो लग्नेशसनवांशकात् ॥ ६ ॥ प्रदेभ्यो दुःस्थितेभ्यश्च तत्तदोषस्रयाय च ।

श्चत्र पुत्रस्य लाभाय दम्पत्योरभिद्वद्ये ॥ ७ ॥ पश्चमेऽह्नि चतुर्थे वा ग्रहयङ्गपुरःसरः । तस्मिन्नहनि कर्त्तव्यमृतुहोमं विधानतः ॥ ८॥ श्राचार्य वर्येत्पातर्भुवनेश्वशितुष्ट्ये । होमार्थ च जवार्थ च वस्येद्दत्विजा बहून्॥ ६ ॥ यजमाना द्विजैः सार्द्धं शान्तिहोमं समाचरेत्। गृहादीशानदिग्भागे देवतापूजनाय च ॥१०॥ द्रोणमगाणधान्येन त्रीहिराशित्रयं भवेत्। कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्रादि-वेष्टितम् ॥११॥ पूरयेत्तीर्थसलिलैः प्रतिक्रमभं पृथक् पृथक्। सुक्तेनाथ नवर्चेन प्रसूव आप इत्यथे॥१२॥ ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्गायत्र्या च ततः ऋगात्। मध्यकुरमें तिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च ॥१३॥ ततश्च पश्चरत्नानि गन्धपुष्पाचतायुतान् । श्रीषधानि च वक्ष्यन्ते मुनिभिः शान्तिकारणात् ॥१४॥ श्रौदुम्बरं कुशा दूर्वी राजीवं चम्पविन्यकाः। विष्णुकान्ताऽथं तुलसी वहिषं शङ्खपुष्पिका ॥१४॥ शतावर्षेश्वगन्था च निगुएडी सर्पपद्वयम् । अवामार्गः पत्ताशश्च पनसो जीवनस्तया ॥१६॥ त्रियङ्गवश्च गोधूमा ब्रीहयोऽरवत्थ एव च । न्नीरान्नद्धिसर्पिश्च पर्यं चैव तथोत्पतान् ॥१७॥ कुर्एटकश्च गुज्जाःच वचा मुस्तकभद्रका इति । द्वात्रिशदौषधानीह गायत्र्या सर्वमाहरेत् ॥१८॥ गजाश्वरथ्यावन्मीकसङ्गम।द्धदगोक्कलात् राजद्वारपदेशाच मृदमानीय नित्तिपेत् ॥१६॥

कुम्भस्थापनमित्याह तत्तन्मन्त्रेण कारयेत्। मृत्तिका श्रीपथादीनि मन्त्रेण पन्निपेत् क्रमात् ॥२०॥ कुम्भोपरि न्यसेत्वात्रं कांस्यं वा ताम्रमेव वा । मृन्मयं वेग्रुवात्रं वा स्वस्ववित्तानुसारतः ॥२१॥ पान्नोपरि न्यसेद्वस्तं प्रतिमां भ्रुवनेश्वरीम् । तन्मूलं वा न्यसेत्पात्रे इन्द्राणी च पुरन्दरम् ॥२२॥ ष्ट्राचार्यः पूजयेदेवीमङ्गाद्यावरणानि अन्यो वा पूजनं कुर्याइ गायत्र्या मन्त्रसारया ॥२३॥ पूजयेदेवीमिन्द्राणीमासु नारिषु । क्रमेख पूजयेदिन्द्रं इन्द्रं त्वा द्वषमं वयम् ॥२४॥ श्रनेन विधिना चाथ पूजयेद्देवतात्रयम्। त्रावाहनादिसकलैरुपचारैः पृथक् पृथक् ॥२५॥ तन्मध्यमं स्पृशन् कुम्भं मन्त्रेण भुवनेश्वरीम्। जपेदाचार्य याहोपाच्छ्रोसुक्तं च जपेत्ततः ॥२६॥ स्पृशन्वे दित्तारां कुम्भमृत्विगेको जपेदथ। चत्वारि रुद्रमुक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च ॥२७॥ संस्पृशन्तुत्तरं क्रम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया। शम इन्द्राग्नीसूक्तं तत्र चैवं स्पृशन् जपेत् ॥२८॥ कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाच्रेत्। अन्वाधानं ततः कुर्याद्धोमतन्त्रं समाच्रेत्।।२६॥ पूर्णपात्रनिधानानतं कृत्वा कार्य द्विजैः सह 🗐 दुर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च ॥३०॥ पायसं अपयेशव सावित्रं च इविश्व तत्ा ः कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं हिवरुद्वासनादिकम् ॥३१॥ तिस्रभित्रैव दुर्वाभिरेकैकावाहुतिर्भवेत् ा श्राभिमन्त्रप्रयुक्ताभिर्गायत्री जुहुयात् क्रमात् ॥३२॥

ब्रष्टोत्तरसहस्रं तु शतमष्टोत्तरं तु वा । तिलमिश्रेश्व गोधूमेईन्घेणाऽप्याङ्कतीहुनेत् ॥३३॥ जुहुयात्पायसेनैव ब्रान्येन च द्भनेत्क्रमात् । हविश्रतुष्टयेनैव मत्येकं शतसंख्यया ॥३४॥ गायत्र्यैव तु होतव्यं इविरत्न चतुष्ट्रयम् । ततः स्विष्ट्रकृतं हुत्वा रज्जुम्हर्स्णं तथा ॥३५॥ अयारचेत्यादिभिहुत्वा समुद्राद्-िंस्कृतः । सन्ततामाज्यधारां तां पूर्णाहुति स्थादरेत् ॥३६॥ परिषेचनपर्यन्तं होमशोषं समापयेत् सहौषधिस्थितस्तत्र प्रतिक्रम्भस्थातोदकैः ॥३७॥ ऋतुमत्याः स्त्रियाः शान्ति दम्पतीभ्य i सुखाय च । भ्रथाऽभिषेकमन्त्राश्च प्रोच्चयन्ते शौन्नकादिभिः ॥३८॥ श्रापोहिष्ठेति नवभिः सुक्तेन च ततः परम्। इन्द्रो अङ्गत्त्वेनैव पावमानीः क्रमेण तु ॥३६॥ उभयं शृण्**व**च नः स्वस्ति दामिकाश एकया। त्रैयम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया ॥४०॥ समुद्रज्येष्ठा इत्यादि चतुर्भिश्च शसिद्धकैः । त्रायन्तामिति मन्त्रैथ त्रिभिथापि यथाक्रमम् ॥४१॥ इमा आपस्त्रचेनीय देवस्य स्वेति पन्त्रतः । मन्त्रेगाऽय तमीशानं त्वमग्ने हुद्र इत्यय ॥४२॥ तमुष्दुहीति मन्त्रेण भ्रुवनस्य पितुस्तथा । या ते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसङ्करूपमन्त्रतः ॥४३॥ इन्द्र त्वा द्वषमं वयं मन्त्रेश्चैवाभिषेवयेत् । सा च वस्नान्तरं धृत्वा पुनरचैवे।पवासिनी ॥४४॥ उपवासोऽत्र समीपावस्थानम् । विमानभ्यर्थे विधिवद्गन्धपुष्पातनादिभिः ।

धेतुं पयस्विनी दद्यादाचार्याय च भूषणैः ।।४५ ॥
सदित्तणमनड्वाहं भदद्याद्वद्रजापिने ।
ऋत्विण्भयश्राय सर्वेभ्यो दद्याद्वे दित्तणां तत ।।४६ ॥
महाशान्ति प्रयच्छाऽथ विप्राशीर्वचनं ततः ।
ब्राह्मणन् भोजयेच्चैय भुद्धीयात्स्वजनैः सह ॥४७ ॥
स्मृतौ-ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दैवहं भोजयेत्ततः।
एवं यः कुरुते शान्ति शौनकोक्तमकारतः।।४८॥।
तद्निष्टं तु सकलं सर्वे चाऽपि विनश्यति ॥ इति ।
इति शौनकोक्तरजोदर्शनदोषशान्तिः।

अथ प्रयोगः--कर्ता देशकाली स्मृत्वा मम परन्याः अधा--रजोदर्शनेऽमुकदुष्टमासादिस्चितारिष्टनिरसनार्थे शास्ति कारिये 💵 इति सङ्कर्ण्य । गरोशपूजन-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाञ्युदं र्रेविका--चार्यर्तिग्वरणानि कुर्यात्। श्रथाऽऽचार्थी गृहेशान्यो प्रत्येकं अना---वृत्या पदार्थानुसमयेन कुम्भत्रयं स्यापयेत् । तद्यथा । 🞾 महीि बी।रति मध्ये तहिन्त्योत्तरश्च स्पृष्ट्वा। ॐ श्रोषध्य इति स्पर्ह्वोत्रोत्ताः तेषु स्थानेषु द्रोणप्रमाणान् बीहीन् राशोहत्य तेनैव क्रमेण रा क्रिक्स श्राक्तेलशेष्विति कुम्भन्नयं संस्थाप्य मध्ये प्रसुव स्नाप इति नाक्षीस्न तद्दिष्णे या प्रवत इत्युचा तदुत्तरे गायत्र्या कलं चिष्या । जिष्टि गन्धद्वारामिति गन्धम्। या श्रोषधीरिति सर्वोषधीः। श्रो पश्यः समिति यवान्दिपत्वा । मध्यम एव यवन्त्रीहि-तिल्माप-कह्गुःः श्यामाक-मुद्रान् ज्ञिष्टबोदुस्वर-कुश-दूर्वा-रक्तोत्पॅल-पश्चवित्व- किंगुः कान्ता-तुलसी-बर्हिप-शङ्खपुष्पी-शतावर्यश्वगन्धा -निर्मुण्डी र स्वापत सर्वपा ऽपामार्ग-पलाश-पनर्स-जीवँक प्रियङ्गु गोधूम-बीह्यश्वस्य स्वान दुम्ध-वृत-पद्मपत्र-नीलोत्पल-सितरक्षीत-कुरंटकं-गुझा-बच्चाभ झसुः स्तकाख्यानि द्वाचिशदीयघानि यथासम्मवं वा गायत्रया चिला।

[्]र'ओ।जिम्ने कछशं०। २ ॐ वहणस्योत्तं०। ३ स्वांगन्धवी०। क्रेन्ड इल----कमक। ५ काले फूळवाले। ६ कटहर । ७ छा उकमले । ८ विज व्यसः । ६ तीनरंग की भिण्डी या पिया वास पीछे फूळवाले।

त्रिषु दूर्वा पञ्चपञ्चव सप्तमृत्तिका फल पञ्चरत्न सुवर्णानि चित्रवा । युवा सुवासा इति वाससा स्त्रेण वा कुम्मकण्डान् वेष्टयित्वा गन्धादिभिरलुकृत्य पूर्णादवीति यवादिपूर्णपात्राणि निधाय तेषु साप्टदलं श्वेतं वस्त्रत्रयं न्यस्य मध्यमे गायद्या विश्वामित्रो सुवनेश्वरी गायत्री भुवनेश्वर्यावाहने विनियोगः। ॐ १ तःस्तिवतुरिति भुवने श्वरीम् । तद्दत्तिण्कुम्भे इन्द्राणीं वृषाकिपरिन्द्राणी पाकः इन्द्रालयाः वाहने विनियोगः। व्हन्द्राणीमाखितीन्द्राणीम् । उत्तरक्रम्भे इन्द्र त्वा विश्वामित्र इन्द्रो गायत्री इन्द्रात्राहने विनियोगः । इन्द्रः त्वेतीन्द्रं प्रतिमासु स्थाप्य षोडशभिः पञ्चभिवींपचारैरभ्यर्च्यं मध्य-मेऽष्टसद्दसमष्टशतं वा गायत्रीं श्रीसूक्तं च जपेत् । तत एकर्त्विक् दित्तगकुम्भे ⁸रुद्रस्कानि जपेत्। तानि च कदुद्रायेत्येकादशचम्। इमा रुद्राय तव स इत्येकादशर्चम् । इमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति पञ्चर्चम् । स्रा ते पितरिति पञ्चदशर्चम् । तमुद्धहीत्येका । भुवनस्य पितरित्येका । श्रथान्यश्चर्तियुत्तरकुम्मे 'एकादशावृत्तिमी रुद्रं शन्न 'इन्द्रास्रोति पञ्चदशर्चे जपेत्। अथाऽऽचार्यः कुम्भपश्चिमेऽसि प्रणीय तदोशान्यां प्रहस्थापनादिप्जान्तं कृत्वा तदीशान्यामेकं कुरमं संस्थाप्य तत्र वरुणावाहनादिपूजान्तं छत्वाऽन्वाद्ध्यात् । तत्राऽस्मि-न्नवाहितेऽग्नावित्यादि चत्तुषी श्राज्येनेत्यन्तमुक्तवा भुवनेश्वरीमिन्द्रा-खीमिन्द्रं च प्रत्येकममुकसंख्यया दूर्वा तिलमिश्रगोधूमपायसाज्येर्प्रहां-धाऽमुकसंख्यया समिचवांच्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि यदय इत्य-न्तमुक्त्या परिस्तरणाद्याज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेनाऽङ्गप्रधानदेवता उद्दिश्येताभ्य इदं न ममेत्युक्ते ऋत्विमिः सहान्वाधानोक्तममेण जुदु-यात्। अन्ये तु गायज्येव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्ट्यम् । ततः स्विष्टकृतं हुत्वेत्यत्रेन्द्राणीन्द्रयोहोंमानभिधानाच तयोहोंमोऽन्वाधाने चाकीर्त्तन नमित्याहुः । ततः स्विष्टकदादि बलिदानान्तं कृत्वा समुद्रादृमिरिति तुचेन पूर्णांदुति दुःबा प्रणोताविमोकं कृत्वा ऋत्विग्मः सह सभार्ये यजमानं कुम्भोदकरिमिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः । आपो हि छेति ६ ऋचः य एक इद्विषं यत इति त्रिभिष्ट्वं देवेति ॥ आ ऋचः - उमयं श्वरायमनेति स्वस्ति दाविशो यमिति। ज्यम्बकमिति। जातवेदस इति।

१ अम्बेडिनिको । २ अदिश्यै रास्ताः । ३ त्रातारमिद्रः । ४ नमस्ते १५ मंत्राः । वा नमस्ते ६६ मन्त्राः । ५ इद्वैकादशिनी । ६ ऋषं वाचम् ।

समुद्र ज्येष्ठा इति ॥४॥ ऋचः । त्रायन्तामिति ३ऋचः । इमा आप इति ३ऋचः। देवस्य त्वेति ३ मन्त्रैः। तमीशानं जगतः। त्वमग्ने रुद्र इत्येकं यजुः। तमुद्धहीति भुवनस्य पितरम्। या ते रुद्रेति। यज्ञात्रत इति ६॥ एते याजुषाः । इन्द्र त्या वृषमं वयमिति ४ऋचः । सुरास्त्वामभिविञ्चन्त्वित्याद्याः ६पौराखाः । पवमभिविकः सुस्नातो धृतग्रुक्कवासाः सपत्नीको यजमानोऽग्निमाचार्यादीश्च ऽऽचार्याय धेरुं ब्रह्मणे ऋत्विग्भ्यश्च यथाशकिद्त्तिणां रुद्रजापिने सद्त्तिणमनड्वाहं भूयसीं च दत्वा प्रहृपीठदेवतानां भुवनेश्वर्यादीनां चोत्तरपूजां कृत्वा । यान्तु देवगणा इति विस्तुज्याऽऽचार्याय प्रतिपाद्य गच्छ गच्छेत्यप्रि विसर्जयेत् । ततो ब्राह्मणाः शान्ति पटेयुः । तत्र म-न्त्राः। ग्रानो भद्रा इति १० ऋचः। स्वस्ति नोमिमीतामिति १४ ऋचः। त्यमूष्टिकति ३ भ्रष्टचः। तच्छं योरिति च। ततो यजमानो द्वादशब्राह्म णान् भोजयित्वा सङ्कब्य वा विप्राशिषोगृहीत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत ॥ **प्रथ चन्द्राकीपरागकालीनाद्यरजादर्शने विशेषः! कर्त्तीककाले** मासपद्माद्युद्धिख्य मम पत्न्याध्वन्द्रस्य सूर्यस्य वा उपरागे प्रथमरज्ञोन दर्शनसूचितानिष्टनिरासार्थे शान्ति करिष्ये। इति सङ्करूप्य प्राग्वत् ऋत्विक्पूजान्तं कुर्यात् । श्रथाचार्यो गोमयोपलिप्ते देशे पञ्चवर्णैर-ष्ट्रक्तं कत्वा तत्र श्वेतवस्त्रमुदग्दशं प्रसार्थ्य तत्र चन्द्रोपरागे आप्या-यस्वेति राजत्यां प्रतिमायां चन्द्रं सूर्योपरागे तु आरुष्योनेति सीवण्यां षा सूर्यं प्रतिमायामावाद्य तदुत्तरतः स्वर्भानो इति सैस्यां प्रतिमायां राहुमाबाह्य यस्मिन् नक्त्रे अहणं तम्मक्त्रदेवतायां सौवर्णप्रतिमायां तत्त्वन्मन्त्रः प्रशावादिनमोन्तैर्नाममन्त्रैर्वाऽऽयाह्य काण्डानुसमयेन षोडशोपचारैः पूजयेत् । तत्र चन्द्राय नत्तत्रदेवताभ्यश्च श्वेतानि गन्धादीनि । सूर्याय रकानि । राहवे छुज्यानि । ततः पश्चिमतोऽसि प्रतिष्ठाप्य पत्ते प्रद्वाबाहनादि-पूजान्तं कृत्याऽन्वादध्यात्। तत्र चलुपी ब्राज्येनेत्यन्तमुक्त्वा चन्द्रं सूर्ये था राहुं नज्ञ बेवतां पत्ते प्रहांश्चामु-कसंख्यया समिवाञ्यवरातलाहुतिभिः शेषेग्रेत्याविसमित्स विशेषः। चन्द्रचीदेवतयोः पालाशः, सूर्यस्यार्कः, राहोर्दुर्वा, ताश्च तिस्र एका SSहुतिः। स्रथाज्यभागान्तं कृत्वा यज्ञमानेन द्रव्ये त्यकेऽन्वाधानक्रमेण र्तिवरिमः सह हत्वा स्विष्टकदादिपूर्णाहुत्यन्तं प्रत्यत्क्रत्वैकस्मिन्कुम्मे जल-पद्रसगब्य-राम-स्त्रक्-प्रज्ञव-सर्वीवधी-कक्कदूर्वी-क्रुशान्त्र निश्चिप्य

सर्त्विक् दम्पती पूर्वदभिषिक्चेत्। तत्र मन्त्राः। श्रापो हिष्ठेति ३ ऋषः। इमं मे गङ्गेत्येका। तत्त्वायामीत्येका। अन्येऽपि समुद्रज्येष्ठा सुरास्त्वामित्यादयश्च शेषं पूर्ववत्। इति दुष्टरजोदशेनशान्तिः प्रयोगः।

त्रय गोमुखप्तसवविधिः **।**

गर्गः—पितरिष्टे सुतारिष्टे मात्ररिष्टे तथैव च । मायश्चित्तं तदा कुर्यात्तस्य दे।षस्य शान्तये ॥ तादशनक्षत्रोत्पत्या सूचिते पित्राद्यरिष्टे प्रायश्चित्तमित्यत्रापि तत्त्वित्यभ्वेति देहलीदीपवत् । तत्त्वहोषशान्त्यै तत्तत्वायश्चित्तं कुर्यादित्यर्थः ।

पूषाश्विनोर्गुरौ सर्पमघाचित्रेन्द्रम्लभे एषु ऋत्तेषु जातस्य कुर्याइगोजननं तथा ॥ १॥ जन्मर्चे वा त्रिजन्मर्चे शुभवारे शुभे दिने। कत्वाऽभ्यङ्गादिकं सर्वे गृहालङ्कारपूर्वकम् ॥ २ ॥ गोमयेने।पलिप्याऽथ गृहस्येशानभागके पङ्कर्ज कर्णिकायुक्तं रजोभिः श्वेतवर्णकैः॥ ३॥ बीहीस्तत्र विनित्तिष्य यथाविशानुसारतः । नवसूर्पे तु तम्मध्ये रक्तवस्त्रं मसारयेत् ॥ ४ ॥ स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत्। प्रार्द्धाः तमवाक्पादं तिलागर्भ गतं शिशुम् ॥ ५ ॥ गामुखं दर्शियत्वाऽथ पुनर्जातं तु गामुखात्। विष्णुर्योनिमिति सुक्तेन गन्येन स्नपयेच्छिशुम् ॥ ६ ॥ गवामक्रीत मन्त्रेण गवामक्रेषु संस्पृशीत् । विष्णाः श्रेष्ठेन मन्त्रेण गोपस्तं तु बालकम् ॥ ७ ॥ श्राचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रे ददेत्तथा । माता जघन्यमागस्था शिशुमानीय ते मुखात् ॥ 🛎 ॥

ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे पदापयेत् । वस्रे स्थाप्य पिताऽस्याऽथ पुत्रस्य ग्रुखमीत्त्रयेत् ॥ ६ ॥ गे।मूत्रं गेामयं चीरं दिध सर्पिश्च संयुत्रम् श्रापा हिष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिषठ्चेत्ततः शिशुम् ॥१०॥ मूर्धिन चाघ्राय तत्पुत्रं तन्मन्त्रेण तदा पिता। श्रङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभि जायसे ॥११॥ श्रात्मा वै पुत्रनामाऽसि सङ्घीव शरदः शतम्। मुद्धीन त्रिरवद्याय तं शिशुं स्थापयेशतः ॥१२॥ पुरायाहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मर्री वेंद्रपार्गैः दरिद्रायाध्य विषाय तां गामभ्यच्ये दाव्येत ॥१३॥ गो-वस्त-स्वर्ण-धान्यानि दद्यादकीदितः कृपात् । यथाशक्ति धनं दद्याइब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ॥१८॥ तता होमं मक्कवींत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः उल्लेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागान्तमाचरेत् ॥१४॥ होमस्यैशानदिग्भागे धान्योपरि शुभं घटम् पश्चगव्यं घटे स्थाप्य तिलाँस्तत्र विनिन्तिपेत् ॥१६॥ चीरिद्रु मकपायांश्व पश्चरत्नानि निचिपेत् वस्त्रयुग्मेन संच्छाद्य गन्धादिभिस्थार्चयेत् विष्णुं बरुणमभ्यच्यं प्रतिमां च विधानतः प्रतिमां यक्ष्महणः अग्रे तहेवत्यहोमविधानात् ॥१८॥ चकाराच-यत इन्द्रादिभिर्मन्त्रैः कुम्भं स्पृष्ट्वाऽभिमन्त्रयेत् । द्धि-मध्वाज्ययुक्तेन होमं कुर्याद्विधानतः ॥१६॥ आपे। हि ष्ठेति तिस्रभिरप्तु मे सीम इत्यथः। तद्विष्णाः परमं पदमज्ञीभ्यां तेऽथ स्कतः॥२०॥

ऋग्भिराभिः मत्यृचं वाऽष्टाविशतिसंख्यया । श्रशक्तश्राष्ट्रसंख्यं वा द्धि-मध्वाज्यसंयुतम् ॥२१॥ श्रादित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्यात्समन्त्रकम् । इति गोप्तस्वयसविधिः ।

श्रथ प्रयोग:-मासपन्नायुवितव्यास्य शिशोरमुकन्नीत्वत्तिस्चिता-ऽरिष्ठशान्त्यर्थं गोमुखप्रसर्वं करिष्ये। इत्युक्त्वा गरीशपू जनाच।र्यवररी कुर्यात्। अयाचार्यः श्वेताष्टदले बीहिस्थगूर्पे रक्तवस्रं विन्यस्य तिला-न्विकीर्यं तत्र पाङ्मुखं शिशुं संस्थाप्य स्त्रेगाऽऽवेष्ट्य गोमुखात् प्रसबं विविन्त्य विब्धुर्योनिमिति सुक्तेन पञ्चगब्येन शिशुं संस्नाप्य गवामङ्गेष्विति गां स्पृष्ट्वा विष्णोः श्रेष्ठेनेति शिशुं गृहीत्वा मात्रे दद्यात्। माता पित्रे दद्यात्। पिता च मात्रे दत्वा तन्मुखं समीदेय पञ्चगव्ये-नाऽऽपी हि ष्ठेति तिस्मिरमिषिच्याङ्गादिति मूर्धिन त्रिरवद्याय मात्रे दत्वा पुष्याहं चाचयित्वा गामाचार्याय दत्वा प्रह्मीत्यर्थ गोवस्त्र-स्वर्ण-घान्यादि दस्त्रा भूयसीं दद्यात्। अथाऽऽचार्योऽग्नि प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी ब्राज्येनेत्यन्ते अप ब्रापो हि ष्ठेति तृचेन ब्रप्सु म इत्युचा च विष्णुं तद्विष्णोरित्यूचा यदमहणमत्त्रीभ्यामिति स्केन प्रहाश्च प्रत्येकमष्टादिसंख्यया देधिमध्याज्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्युक्त्वा-ऽऽज्यभागान्तं कृत्वाऽग्नेरीशान्यां कुम्भं संस्थाप्य तत्र पञ्चगज्य-तिलः बोहि-श्रीर-द्रुम-कर्णायान् ज्ञिप्त्वा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्टय पूर्णपात्र न्यस्य पूर्णपात्रोपरि तद्विष्णोरिति विष्णास्तच्यायामीति वरणस्याचीभ्या-मिति यदमहराश्च प्रतिमा अभ्यर्च्य इन्द्रेति पडुचो जण्वाऽन्वाधा-नक्रमेश हुत्वा कर्मशेषं समापयेदिति गोमुखप्रसंबपयोगः।

श्रथ सदस्तोत्त्पत्तिशान्तिः।

विष्णुधर्मीचरे-

उपरि पथमं यस्य जायन्ते च शिशोद्विजाः। दन्तैर्वो सह यस्य स्याज्जन्म भागवसत्तमः।।। १।। द्विजाः=दन्ताः।

मातरं पितरं वाड्य खादेदात्मानमेव वा । तत्र शान्ति पवध्यामि तां मे निगद्तः शृखु ॥ २ ॥ गजपृष्ठगतं वालं नौस्थं वा स्नापयेद्द्विज ! तद्भावे च सर्वे । काश्चने च वरासने ॥ ३॥ सर्वीषधैः सर्ववीजैः सर्वपुष्पैः फलैस्तथा। पञ्चगच्येन रत्नैश्र मृत्तिकाभिश्र भार्गव!॥४॥ सर्वौषधानि सर्वगन्धाश्च विनायकस्नपनविधौ दर्शिताः। स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम्। सप्ताइं चात्र कर्तव्यं तता ब्राह्मणभाजनम्।। ५॥ अष्टमेऽहिन विपाणां तथा देया च दिचाणा। काश्चनं रजतं गाश्च भुवमागारमेव तु ॥ ६॥ दन्तजन्मनि सामान्ये शृखु स्नानमतः परम्। भद्रासने निवेश्यैनं मृद्धिन मृलैः फलैस्तथा ॥ ७ ॥ सर्वीषधैः सवगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव स्नापयेत्पूजयेचाऽत्र वहिं सेामं समीरणम् ॥ = ॥ पर्वतांश्र तथा ख्यातान् देवदेवं च केशवम्। एतेषामेव जुहुयाद्घुतमग्री यथाविधि ॥ ६ ॥ ब्राह्मणानान्तु दातन्या यथाशक्त्या तु दिन्नणा । ततस्त्वलङ्कतं बालमासने चेापवेशयेत् ॥१०॥ श्रासीनं सूर्यसन्तानवीजैः सुस्नापयेत्ततः। म्रुविमबालकानां च तैथ कार्यं च पूजनम् ॥११॥ पुज्यश्च विधिनाऽऽचार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा । इति सदन्तोत्त्विशान्तिः।

अथ कृष्णचतुदंशीजननशान्तिः। गर्गः-कृष्णपत्ते चतुर्दश्यां प्रसुतेः पड्विधं फलम् चतुर्दशीं च पड्भागां क्रयीदायं शुभं समृतम् ॥ १ ॥ द्वितीये पितरं इन्ति तृतीये मातरं समृतम्। चतुर्थे मातुलं हन्ति पश्चमे वंशनाशनम् ॥ २॥ षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् । तस्मात्सर्वेषयत्रेन शान्ति कुर्योद्विधानतः ॥ ३॥ आचार्य वरयेद्धीमान पुत्रदारसमन्वितम् स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥ ४॥ सर्वाज्ञङ्कारसंयुक्तं सर्वजनणसंयुवम् द्वपभे ेच समासीनं वरदाभयपाणिनम् ॥ ४॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम् । ज्यम्बकेन च मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ॥ ६॥ स्थापयेचतुरः कुम्भाश्रतुर्दिचु यथाक्रमप् पुरुवतीर्थजलोपेतान् धान्यस्योपिः विन्यसेत्। ७॥ तन्मध्ये स्थापयेत्क्रम्भं शतिबद्धसमन्वितम् । पञ्चमृत्पञ्चरज्ञानि पञ्च त्वक् पञ्च पन्लवान्।। = ।। पश्चधान्यं सुवर्णे च तत्तरमन्त्रैर्विनिचिपेत् । सर्वीवधानि निचित्य स्वेतवस्रोण वेष्ट्येत् ॥ ६॥ मुरभीणि च पुष्पाणि श्वेतानि परिवेष्टयेत्। सर्वे समुद्राः सिरतस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥१०॥ श्रायान्द्व यजमानस्य दुरितत्त्वयकारकाः । आवाह्य वारुएँमेन्त्रेरनेन च विधानतः ॥११॥ इमम्मे वरुणेत्यनया तत्त्वायामि ऋचा तथा। त्वन्नो श्रम इत्यनया सत्वन इति मन्त्रतः ॥१२। श्चाग्नेयकुम्भगारभ्य पूर्जा कुर्याद्यशक्रमम् ।

श्रानो भद्राख्यमुक्तं च भद्रा अग्नेश्व मुक्ततः ॥१३॥ जप्त्वातुपौरुषं सुक्तं कट्ट-द्रंतु क्रमाज्जपेत्। ईश्वरस्याऽभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् ॥१४॥ पूजाकमेसु निर्वत्य होमं कुर्याद्विधानतः । गृहादीशानदिग्भागे कुएडं कार्य विधानतः ॥१४॥ विस्तारायामखातं च श्ररत्निद्वयसिम्मतम् । समिदाज्य-चरुश्रैव तिल-माषांश्च सर्पपैः ॥१६॥ अन्तरथ सत्त-पालाश-समिद्धिः खादिरैः शुभैः। अष्टोत्तरसद्दर्भं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥१७॥ अष्टाविंशतिमेतेथ होमं कुर्यात्पृथक् पृथक्। त्रैयम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात् ॥१८॥ कृत्वा होमाश्र कर्त्तव्या श्रस्मदुक्तविधानतः । एवं क्रमेण कर्त्तव्यं होमशेषं समापयेत् ॥१६॥ सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेवनम् चतुर्भिः कलशैरिद्धर्बृहत्कुम्भसमन्वितम् ॥२०॥ त्रयाणाम् = माता-पित्-शिश्र्नाम्। घौताम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्याऽवलोकनम् । पूर्णाहुति च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ॥२१॥ तत्सर्वे परया भवत्या ईश्वराय निवेद्येत् सर्वालङ्कारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥२२॥ मतिमां वस्त्रयुग्मं च श्राचार्याय निवेदयेत् ॥ अन्येषां चैव सर्वेषां कुर्याद्वाह्मणवाचनम् ॥२३॥ तस्मादेतेन विधिना वित्तशाट्यविवर्जितः । पर्व यः कुरुते शान्ति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४॥ सर्वान्कामानवामोति स्थिरजीवी सुखी भवेत्। ा कृष्णचतुर्दशीशानितः।

अथ सिनीवालीकुहूशान्तिः।

गार्ग्यः-सिनीवान्यां प्रस्ता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा । गजाऽश्वा महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १ ॥ ये सन्ति सकलाः पश्चात्तस्यसादोपजीविनः। वर्ज्जयेत्तानशेषांस्तु पशु-पत्ति-मृगादिकान् ॥ २ ॥ कुहूमस्तिरत्यर्थे सर्वदोषकरी स्मृता। प्रस्तिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम् ॥ ३॥ सर्वगण्डसमस्तत्र देाषस्तु पवला भवेत्। तत्र शान्तिविशेषेण परित्यागी विधीयते ॥ ४ ॥ परित्यागात्तत्र शान्ति कुर्योद्धीमान विचन्नणः। परित्यागादिति ल्यप्लोपे पश्चमी। परित्यागं कृत्वेत्यर्थः । तत्त्वणार्द्धेन पुनरेवाऽनुळेपनम् ॥ ५ ॥ न त्यजेत्परिडतो मोहादर्थादज्ञानते।ऽपि वा। तद्योगं नाशयेत्किञ्चित्स्वयं वा नाशमश्चुते ॥ ६ ॥ कल्पोक्तशान्तिः कर्त्तव्या शीघ्रं दे।पापनुत्तये। रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ॥ ७॥ कर्षमात्रमुवर्णेन तदर्खार्द्धेन वा पुनः। श्रयंवा शक्तितः कुर्योद्वित्तशाट्यविवर्णितः ॥ = ॥ प्रतिमां कारयेच्छम्भाश्रद्धजसमन्विताम् । त्रिशुलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमम् ॥ ६॥ श्वेतपुष्पाम्बर्धरां श्वेताम्बर्ष्टपस्थिताम् । त्रियम्बक्तेन मन्त्रेण पूजां कुर्याचथाविधि ॥१०॥ इन्द्रश्रत्धेना वज्राङ्कशचापः स-सायकः। रक्तवर्णी गजारुदो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥११॥

पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुरहेस्ता विमानगाः। गदाऽत्तसूत्र-कमण्डन्वभयस्यैव धारिणः ॥१२॥ ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम् । आग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान् कोरोषु विन्यसेत् ॥१३॥ ये सत्यासो हविरद इत्यादिमन्त्र ऋग्वेदे प्रसिद्धः। तन्मध्ये स्थापयेत्क्रमभं शतच्छिद्रसमन्वितम्। निचिपेत्पञ्चगव्यादींस्तत्तन्यन्त्रेश्च निचिपेत् ॥१४॥ कन्पोक्तशान्तिः कर्तेच्या कुर्याच्छीत्रं स्वशक्तितः। गोदानं बखदानं च सुवर्ख वार्वरां शुभास्।।१४॥ द्शदानानि चेाक्तानि चीरमाज्यं गुडं तथा। आज्यावेचणपात्राणि तत्तन्मन्त्रेश्च कारवेत् ॥१६॥ समिदाञ्यं च होमं च तिलहोमं च सर्पपैः। श्रश्वत्थ-प्लन्त-पालाशसमिद्धिः खादिरैः शुभैः ॥१७॥ ब्रष्टोत्तरशतं मुख्यं मत्येकं जुहुयाद्द्विजैः। , त्रैयम्बकेन मन्त्रेण तिलान ज्याहृतिभिः पुनः ॥१८॥ चतुभिः कलशैर्युक्तं बुहत्कुम्भसमन्वितम् । शान्तिवत् सकलं कार्यमभिषेकं च कारयेत् ॥१६॥ शान्तिवत् = पूर्वोक्तशान्तिवत् । माता-पित-शिश्ननां च अभिषिश्चेतु बारुणैः। शङ्करस्याऽभिषेकं च कुर्योद्ज्ञाह्मणभोजनम् ॥२०॥ ब्रन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च वर्षणम् । यथाशक्तयनुसारेण द्विजवाचनपूर्वेकम् म्राय प्रयोगः - तत्र चतुर्दश्याः षड्शेषु द्वितीय-तृतीय-पष्टांशेषु अन्म चेद्दगोमुखप्रसंबोऽपि कार्यः । कर्ता मासपन्नाचुहिल्ख्याऽस्य शिशोश्रमुद्देश्याद्यमागाविषु सिनीवास्यां कुक्षां वोत्पस्या सूर्वितस्याः ऽलिक्स्य निरासार्थे शास्ति करिष्य इति सङ्ग्रहण्य गामुखपूता-स्व- स्तिवाचनमातृपूजा-वृद्धिश्राद्धाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत् श्रा-चार्यः सर्पपविकिरणादि कत्वा पीठादौ वरदाभयहस्तां वृषस्थां हेर्मी रुद्रप्रतिमां ज्यास्वकमन्त्रेण सम्पूज्य जपेत्। सिनीवालोकुह्रोस्तु रुद्रेन्द्र-पितरः। तत्र रुद्र ईशानोः क्रिक्समात्। त्रिश्लखड्यवरदाभयहस्ता वृषस्थः ज्यम्बकमन्त्रेण । इन्द्रो वज्रांकुशधनुःशरकरो रक्तो गजस्थो यत । इन्द्रेति मन्त्रेण पितरः छन्णवर्णा गदा उत्त-सूत्र-कमण्डल्वभय-करा विमानस्था ये "सत्या इति मन्त्रेण पूज्या इति विशेषः। तत-स्तत्माच्यामीशान्यामुदीच्यां वाऽऽग्नेयादिशु चतुरः कुम्मान् मध्ये च शर्ताद्यद्वं संस्थान्य तेषु पञ्चमृत्-पञ्चरत्न-पञ्चरवक्-पल्लव-धान्यानि सुवर्षे सर्वोषधीश्च द्विपवा श्वेतवस्त्रमालाभिरावेष्ट्य सर्वे समुद्रा इत्यभिमृश्य इमम्मे वरुण तत्त्वायामि त्वन्नो अग्ने सत्वन्नो अग्न इति क्रमेण वरुणमावाह्य सम्पूज्य क्रमेण श्रानो भद्रा भद्रा श्रग्ने सहस्रात्रीर्था कष्टु दायेति स्कानि कमाजन्या महादेवं यथाशकि रुद्राध्यायादिनाऽभिषिच्य प्रहानाबाह्य सम्पूज्य गृहेशान्यामन्त्रि संस्थाप्याऽन्वाद्य्यात्। तत्र चत्तुषी श्राज्येनेत्यन्ते चतुर्दशीशान्तौ रुद्रमश्वतथ प्रक्ष-पलाश-खदिर-समिद्धिराज्य-चर-तिल माप सर्पपैः व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिस्तिलैश्चामुकसंख्यया प्रत्येकममुक**सं**ख्यया यस्य इत्यादि सिनीवाल्यां कुद्धां च रुद्रमिन्द्रं पित्रध्य प्रधानदेवताः व्यम्बकमम्त्रेण च श्रक्तितस्तिखहोमोऽधिक इति विश्रेपः । तत धाज्यभागान्तेऽन्वाधानोक्तक्रमेण होमः । सिनीवाली-कुद्धोस्तु गो-षस्य-सुवर्ण-भू-श्रीराऽऽज्य-गुडान् दत्वा गो-भू-तिल-हिर्ण्या-ऽऽज्य-वस्त्र-धान्य-गुड-रूप्य-लवग्रदानानि च दश कृत्वा होमः कार्य इति विशेषः। ततो बिलदानान्ते कलशोदकैः शतछिद्रेगाउद्देवत्य-मन्त्रेः पत्नी शिशु-सहितोऽभिषिको एजमान आज्यमचेच्य पूर्णा-हुति हुत्वा गुरवे धेनु बासोयुग्मं ऋत्विग्भ्यम् दक्षिणां दत्वा स्वस्तिवाच्यकमेंश्यरापेषं कुर्यादिति रुष्णचतुर्दशीसिनीवालीकुद्व-शास्त्रियोगः।

[.] १ प्राचारिनिक्दः । २ पितृक्षाः स्वभाषिक्षाः । ३ रहसूत्तेव समस्ते १६ सन्ताः । ४ पञ्च १

अथ दर्शजननशान्तिः।

नारदः-ग्रथाऽतो दर्शनातानां मातापित्रोर्दरिदता । तद्दोषपरिद्वारार्थ शान्ति वक्ष्यामि नारदः ॥ १ ॥ पुण्यादं वाचियत्वाऽऽदी क्रतुसङ्कुल्पपूर्वकम् । कुण्डं वा मण्डलं कुर्यात्तदेशे स्थापयेत् घटम् ॥ २ ॥ मण्डलम् = स्थण्डिलम् ।

तत्कुम्भे नित्तिपेद्गव्यं द्धि-त्तीर-घृतादिकम्। न्यग्रोधोदुम्बराऽश्वत्थाः स-चूताः प्लज्ञकस्तथा ॥ ३ ॥ एतेषां द्वमृतानां त्वचादीन् पञ्चवांस्तथा। पश्चरत्नानि निचित्य वस्त्रयुग्मेन वेष्ट्येत् ॥ ४ ॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः। व्यायान्तु यजमानस्य दुरितत्त्वयकारकाः ॥ ५ ॥ श्रापो हि ष्टेति तुचैनाऽथ कयानश्रित्र इत्युचा । यत्किञ्चेदुमृचा चैव समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा ॥ ६ ॥ श्रभिमन्त्र्योदकं पश्चादग्नेः पूर्वपदेशके। हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च जीरकम्।। ७।। एतेषां तएइलैथेव सर्वताभद्रमुखरेत्। दर्शस्य देवतायाश्र सोम-सूर्यस्वरूपकम् ॥ = ॥ प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा। सर्वताभद्रमध्ये तु स्थापयेदर्शदेवताः ॥ ६ ॥ ग्रहवर्षी वस्रयुग्मं तद्वर्षी गन्धपुष्पकम्। श्राप्यायस्वेति मन्त्रेण सविता यत्त्रथैव च ॥१०॥ उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत्। करिवा विक्र मतिष्ठाप्य ऋतुसङ्कल्पमीदशम् ॥११॥ . भाषुरारोग्यसिद्धचर्थ सर्वारिष्टमशान्तये ।

पुत्रस्य 👉 दर्शजननदोषनिईरणाय कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये। - मातापित्रो: तेपामायुः श्रियं चैव शान्तिहोमं करोम्यहम् ॥१३॥ समिधश्र चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयात्कृती। हुनेत्सवितृगन्त्रेण सोमो धेतुं च मन्त्रतः ॥१४॥ प्रत्येकं हुनेदृष्टोत्तरं **एतै**भेन्त्रेश शतम् । ्रदर्शस्य देवताहे।म् अष्टाविंशतिसंख्यया ॥१५॥ होममेवं तु कुत्वाऽथ कुर्याद्वाराऽभिषेचनम्। च समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा ॥१६॥ श्रीस्क्तमायुस्कं एतैर्पन्त्रैरभिषेकं मातापित्रोः शिशोस्तथा। ं ततः स्त्रष्टकृतं द्याद्धोमशेषं समापयेत्।।१७॥ हिरएयं रजतं चैव कृष्णां धेनुं सदन्तिणाम्। अन्ये¥योऽपि यथाशक्त्या दातव्या दिचाणास्तथा।।१८।। ब्राह्मणान् भोजयेदत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम्। इति दर्शजननशान्तिः।

अत्र सिनीबालीकुढोर्दर्शे चोक्तयोः शान्त्योर्व्यवस्थोक्ता झन्द्रोगपरिशिष्टभाष्ये—

चतुर्द्दश्य अन्त्योऽमायाश्चाऽष्टाविति नवपहराश्चन्द्रत्तयकालः। चतुर्द्दश्यष्टमे यामे चीणो भवति चन्द्रमाः।

श्रमावास्याऽष्टमे यामे पुनः किल भवेदखुः।। इति वाक्यात् ।

श्रत्रेन्दुराचे प्रहरेव तिष्ठते चतुर्थमागेन कलावशिष्टः। तदन्त एत्र च्रयमेति कृत्स्ना ज्योतिर्विदश्चकविदो वदन्तीति च वाक्यात्। श्रत्र चतुर्दश्यन्त्याऽमाचयामयोरणुश्चन्द्रः शास्त्रस्य चश्चवोर्वा गोचरो भवति, स कालो दृष्टचन्द्रत्वात् सिनीवाली । श्रमान्त्योपान्त्यया-मयोः शास्त्रचत्रुवोरगोचर इति चीणश्चन्द्रः स कालः कुहुर्मध्यमाः पञ्चयामादर्शं इति व्यवस्थया शान्तिव्यवस्थेति । परे तु चतुर्दशीमा-श्रयुक्तेऽहोरात्रे वर्तिग्यमा सिनीवाली मितपन्मात्रयुतेति कुहः। वार् त्रयस्पश्चिमध्यमाऽहोरात्रवर्तिन्यमा दर्शः । तस्मिन् चतुर्दशीप्रति-पदोरभावेनोभयलज्ञणानाकान्तत्वात् । तथाऽवमवती चामा दर्शः । केवलचतुर्दशी-केवलप्रतिपद्युक्तवाभावात् । स्रतिस्त्रस्पर्शिन्यामबमत्यां वा सिनीवाली कुद्वशान्तिपाण्त्यभावाद्दर्शशान्तिप्राप्तिरितियुक्तमादुः ।

श्रथ द्रश्जननशान्तिपयोगः—कर्त्तांऽस्य कुमारस्य कुमार्याः वा दर्शजनमस्वितानिष्टनिवृत्त्यर्थं शान्ति करिष्य इति सङ्कल्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचनाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात्। श्रथाऽऽचार्यः सर्वपविकिरणं प्रोच्चणादि कृत्वा श्रद्धभूमौ जलापूर्णं पञ्चगद्व-पल्लवन्त्वक्-रल्लयुतं वासोयुग्मवेष्टितं कुम्मं धान्योपिर संस्थाप्यः सर्वे समुद्रा इति तीर्थान्यावाद्याऽऽपो हि ष्टेति तचेन कयानश्चित्र इत्युवा यिकञ्चेदमित्युचा समुद्रज्येष्टा इति तचेन चामि-मन्त्र्य तन्तेश्वरत्यदेशे पञ्चरक्वरिक्षत्वस्त्रुतेः सर्वतोभद्धं कृत्वा स्वर्णप्रतिमयोगं सत्यास इति पितृन् तद्वित्यो कृत्यप्रतिमयामान्त्र्यायस्वेति सामे तदुत्तरे ताम्बन्नितमायां सविता प्रधातादिति सूर्यं चावाद्य सम्पूज्य—

त्रायुरारीग्यसिद्धचर्थे सर्वारिष्टमशान्तर्ये । तेषामायुः श्रिये चैव शान्तिहोमं करोम्यहम्॥

इत्युक्त्वा तत्पश्चिमे कुण्डे स्थण्डिले वार्टानं प्रतिष्ठाच्य तदीशान्यां प्रहान् सम्पूज्याऽन्वाधान आघारावाज्येनेत्युक्त्वा पितृन् समिचरूग्यामष्टाविशतिवारं सोमं सूर्यं वार्रष्ट)त्तरशत्वारं सेषेणौत्पाद्याज्यभागान्तेऽन्याधानक्रमेण पूजामन्त्रेईत्वा माता-पितृ सिश्चन् द्विरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चेनायुष्यं वर्चस्यमिति दशर्चेन समुद्रज्येष्टा इत्यृचा
च जलधारसाऽभिषिच्य स्विष्टकृदादि समापयेत् । यजमानो बलिदानपूर्णोद्धत्यन्ते हेम-रूप्य-कृष्ण्येनुराचार्याय ऋत्विगम्यश्च यथाशिक
दिच्यां दत्त्वा विप्रान् संभोज्य स्वस्तिवाचनं कुर्योदिति दर्शश्चान्तः।

अथ ज्येष्ठाशान्तिः।

घटिकेका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाइयम् । तयोः सन्धिरिति हेयं शिशुगयदं समीरितम् ॥१॥ प्रथमे च द्वितीये च ज्येष्ठर्चे च तृतीयके । पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोऽप्यत्र मजायते ॥२॥ ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशकः। जायते नात्र सन्देहो दशाहाभ्यन्तरे तथा ॥ ३ ॥ ड़येष्ठर्चे कन्यका जाता इन्ति शीघं धवाग्रजम्। तच्छान्ति तस्य वक्ष्यामि गएडदोषमशान्तये॥ ४॥ मुदिने शुभनत्तर्त्रे चन्द्रतारावलान्विते । स्रुतकान्ते तथा कुर्याङ्क्येष्ठाशान्ति विधानतः ॥ ५ ॥ वजाङ्कुशघरं देवं ऐरावतगजान्त्रितम् । क्कर्याच्छचीपति स्म्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥ ६॥ कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्द्धेनाथ पादतः । तद्विधानं प्रक्रवीत वित्तशाट्यं न कारयेत् ॥ ७ ॥ शालि-तगडुलसम्पूर्णं कुम्भस्योपरि पूजयेत् । इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति मन्त्रेण वाग्यतः ॥ ८॥ गन्धपुष्पैर्घूपदीपैर्नानाभस्यनिवेदनैः पूजयेद्विधिना विष ! लोकपालगणान्वितम्।। ६।। रक्तवस्त्रद्वयोपेतं पूजयेत् सुरनायकम् । तत्र संस्थापयेत् कुम्भांश्चतुर्दिज्ञ विशेषतः ॥१०॥ तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं शतबिद्रसमन्वितम्। पुरायोदकसमायुक्तान् बह्मयुग्मेन वेष्टितान् ॥११॥ कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान पश्चगव्यं समन्त्रकम् । पश्चामृतं पश्चरत्नं मृत्तिकाः पञ्चसंख्यकाः ॥१२॥ पञ्चतृत्तकषायांश्च पञ्चपंन्तवकांस्तथा । मुवर्ण-कुश-द्वीश्र शतौषधि विनित्तिपेत् ॥१३॥ पूजयेद्वारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान् धीमात् मयत्रतः ।

त्वन्ना श्रग्ने जपेदादौ सत्वन्नोऽपि द्वितीयकम् ॥१४॥ समुद्रज्येष्ठा इति च इमं मे गङ्गे चतुर्थकम्। पूजयेद्वस्त्रयुग्माट्यैश्रतुरःकत्तशानिष जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिद्विंजात्तमाः । त्राना भद्रा अपं चादौ भद्रा अग्ने द्वितीयकम् ॥१६॥ इन्द्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपं मृत्युञ्जयं ततः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं वरुणं कुम्भसंस्थितम् ॥१७॥ मुसङ्कल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत समिद्धित्रहारुत्तस्य शतमध्योत्तरं तथा ॥१८॥ सर्विषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः। हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इन्द्रभयेति च ॥१६॥ तिलान व्याहृतिभिद्वत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक्। भार्या-शिशु-ंसमापेतं यजमानं विशेषतः ॥२०॥ अभिषेकं प्रकृवींत स्वतैर्वारुणसंज्ञितैः । समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ॥२१॥ द्यौः शान्त्येत्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत्। श्रभिषेकनिष्टत्तौ तु यजमानः समाहितः॥२२॥ शुक्राम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्यावळेकिनम्। रूपं रूपेति मन्त्रेण चित्रं तचचुरेव च ॥२३॥ देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम्। दयाचाचमनं सम्यक् ताम्बुलाऽध्ये तथैव च ॥२४॥ नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते! गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गएडदोषप्रशान्तये ॥२५॥ कार्यं तत्पूजकादीनां कारितं यत्फलं शुभम्। लब्ध्वा तु तत्फलं सर्व देवेन्द्राय समर्पयेत ॥२६॥

श्चाचार्याय च गां दद्यात् सुशीलां च पयस्विनीम् । सर्वातङ्कारभूषिताम् ॥२७॥ वस्रयुतां रक्तवर्णी वस्रयुग्माभिधानां यथाविभवसारतः । च यत्त-गन्धर्व-सिद्धैश्र पूजितोऽसि शचीपते ! ॥२८॥ दानेनाऽनेन देवेश ! गएडदोषं विनाशय। श्रष्टोत्तरशतं संख्यां कुर्याद्वब्राह्मसभोजनम् ॥२६॥ तेभ्योऽपि दिच्चां दत्वा प्रशिपत्य चमाप्येत् । इमां कृत्वा ज्येष्ठाशान्ति यथाविध्युक्तमार्गतः ॥३०॥ गग्रद्दोषं विनिर्जित्य श्रायुष्मान् जायते नरः। **दृद्धगाग्यें**ण शौनकाय विशेषतः ॥३१॥ ज्येष्ठानेत्त्रत्रसम्भूतगएडदे।षपशान्तये श्रज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्पाद्वा धनस्य च ॥३२॥ वा तत्सर्वे चन्तुमईसि । यन्न्यूनमतिरिक्तं

अथ प्रयोगः —गोमुखप्रसवं कृत्वा श्रस्य शिशोज्येष्ठाजननस्चितसकलारिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थे शान्ति करिष्य
इति सङ्गरुव।गण्पतिपूजन-पुण्याहवाचन-नान्दीश्राद्धाचार्यऋत्विक्चतुष्टयवरणानि कुर्यात् । तत श्राचार्यः सर्वपविकिरणभूमिप्रोच्चणे
कृत्वा महीद्यौरित्यादि-विधिना शालितण्डलपूर्णे कुम्मं संस्थाण्य
पूर्णपात्रोपरि हैमीमिन्द्रप्रतिमां 'इन्द्रायेन्दा मक्त्वत इति मन्त्रेण
रक्तवस्त्रद्वयेन गन्धादिभिश्च वाग्यतः पूजयेत् । तत इन्द्रभिन्नान्
लोकपालान् समन्तादावाद्य पूजयेत् । ततः पूर्वादिदिचु चतुरः
कुम्मान्मध्ये शतिखद्वं पुण्योदकवस्त्रमार्व्ययुतं संस्थाप्य दिक्कुम्मेषु
पञ्चगव्य-पञ्चामृत-पञ्चरत्न-पञ्चमृत्तिका-पञ्चवृत्तकषाय-पञ्चपञ्चवसुवर्ण-कुश-वृर्वा-शतीषधीश्च दत्वा पूर्वकलशे त्वत्रो अग्न इति स
त्वन्नो श्चन्न इति दिन्न्णे इमं मे वरुण इति पश्चिमे तत्त्वायामीत्युत्तरः
च वरुणमावाद्य वस्त्रपुष्पाद्यः पृजयेत् । ततश्चत्वारः ऋतिवजः।
श्चानो भद्रान्ते श्चन्ने पुरुषस्तः 'कद्भद्वायेति स्कानि जपयुः।

⁽¹⁾ त्रातारमिन्द्र । (१) वस्यूक्तम् ।

श्राचार्यो मूलमन्त्रं 'इन्द्रं विश्वा श्रवीवृधमित्यष्टर्च इन्द्रस्कं स्द्रं मृत्युअयं व जपेत्। ततोऽक्षि ब्रहांश्च प्रतिष्ठाप्याऽन्वादध्यात्।

श्रत्र प्रधानिमन्द्रं पलाशसमिदाज्यचरुद्व्यैरष्टशतसंख्ययाऽष्ट-सहस्रसंख्यया वा प्रजापित तिलद्व्येणाऽष्टशतसंख्यया व्याहृतिभिः शेषेण स्विष्टशतमित्यादियल्यन्ते पूर्णांहुति पूर्णपात्रविमोकं च स्त्वा सभार्ये सिशशुं यजमानं वारुणैः स्कः समुद्रज्येष्टा इमं मे वरुण द्यौः शान्त्येत्यादिभिरभिषिञ्चेत् । ततो क्रपं क्रपमित्याज्यमवलोक्य तत्वात्रं सद्त्तिणं ब्राह्मणाय दत्वा इन्द्रं सम्पूज्य नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते !। गृहाणार्थ्यं मया दत्तं गरुडदोषपशान्तये । इत्यर्घे दत्वाऽऽचार्थ्यत्वगादिभ्यः श्रेयो गृहीत्वा इन्द्राय समर्प्या-ऽऽचार्थ्याय पर्यास्वनः गां रक्तवस्त्रह्यं च दत्वोत्तरपूजान्ते इन्द्रं विस्तुज्य प्रतिमाम्—

यत्त-गन्धर्व-सिद्धेश्च पूजितोऽसि श्वीपते ! दानेनाऽनेन देवेश ! गएडदोषं विनाशय ॥१॥ स्रज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्पाद्वा धनस्य च । यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वे त्तन्तुमर्हसि ॥२॥ इति मन्त्रेण स्राचार्यायैव दत्वा ऋत्विग्भ्योऽपि यथाशक्ति दत्तिणां दत्वाऽग्नि विस्तुन्याऽष्टशतं ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

अथ मूलशान्तिः।

शौनकः—ग्रथाऽतः सम्मवक्ष्यामि मृत्तजातहिताय वै ।

माता-पित्रोर्धनस्यापि कुलज्ञातिहिताय च ॥१॥
त्यागो वा मृत्तजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम् ।
अञ्चलम् लजातानां परित्यागो विधीयते ॥२॥
श्रदर्शनाद्वाऽपि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् ।
प्रवं दुहितरि मोक्तं मृत्तजायां फलं बुधैः ॥३॥

⁽१) सयोका इन्द्र० । (२) व्यवस्त्रम् ६ ।

कन्यायां तु विशेषः---

न वाला इन्ति मूलर्ने पितरं मातरं तथा । मृताजा श्वशुरं हन्ति न्यालेजा च तदङ्गनाम् ॥ ४॥ माहेन्द्रैजाऽग्रजं हन्ति देवरं च द्विदैवैजा। शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तिहिं दोषो न कश्चन ॥ ४ ॥ मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमजपं ततः जातस्य द्वादशाहेच जन्मर्त्ते वा शुभे दिने ॥६॥ समाष्टके द्वादशाब्दे कुर्याच्छान्तिकमादरात् । यदैव शान्तिकं क्रुर्यात् कर्म तत्र मचक्ष्महे ॥ ७॥ संस्कृते पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद्बुधः । पुण्यिभिर्मिन्त्रितैस्तोयैः प्रोत्तितायां चितौ ततः ॥ = ॥ तत्रोदकुम्भं सुरतक्ष्णं रक्तं व्रखविवर्जितम् सुवर्जुलं च निर्धिक्तं पूरयेन्निर्मलाम्भसा ॥ ६॥ वस्रावग्रणिटतं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा कूर्चे हेमसमायुक्तं चूतपल्लवसंयुतम् ॥१०॥ स्वस्तिके।परि विन्यस्य सन्तीरद्रुमपन्लवैः द्रोणं बीहींश्व नित्तिष्य ईशाने च निवापयेत् ॥११॥ पञ्चरत्नानि निद्धिप्य सर्वीपधिसमन्वितम् । श्रक्तिं पुष्पगन्धाद्यैः श्रीरुद्रं च पृथक् जपेत् ॥१२॥ पडक्रसहितं सम्यक् जपेद्वे रुद्रसंख्यया । बहुत्वा रुद्रस्वतैर्वा बन्दोगारुद्रसामिशः ॥१३॥ स्कानि सामानि च त्रीएयेव। कविक्जलन्यायात्। एकावशाध-त्रिद्धये कसंस्थया शकितो जपेस् ।

१ व्याखना=श्राश्केषायामुश्यक्षा । २ माहेन्द्रना = ज्येष्ठायां जाता । १ द्विदै∙ बना # विशाक्षायां समुत्यक्षा ।

तत्राऽप्रतिरथं स्वतं शतरुद्राज्ज्वाककम् ।
रुद्राज्ज्वाकं तथा पुरुषं रच्चोध्नं च स्पृशञ्जपेत् ॥१४॥
त्रैयम्बकं जपेत्सम्यक् अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
एकवारं तथा चाऽपि पात्रमानीं स्पृशञ्जपेत् ॥१४॥
जपस्य पञ्चकुम्भाः स्युद्धं यं ना तदलाभतः ।
श्रीरुद्धस्यैककुम्भश्च सर्वस्रकानि तत्र तु ॥१६॥
तथाऽन्यं च शुभं कुम्भं पूर्वोक्तिलक्षायौर्युतम् ।
चतुःमस्रवर्षां कुर्यात्पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेत् ॥१७॥

श्रत्राऽयं साम्प्रदायिकोऽर्थः । श्राद्यपत्ते पट्कम्भाः । एको रुद्रस्य तस्मिन् शतरुद्रियं रुद्रस्कानि सामानि वा जण्यानि । श्रिभिन्द्यार्थे पञ्चक्रम्भाः । तत्र पूर्वादिकुम्भचतुष्टे तत्राऽमितर्थमित्यादिना क्रमात्स्कचतुष्टयिविधिः । मध्ये च ज्यम्बकमन्त्रपावमानी अपविधिः । पवं पञ्चकुम्भाशकौ चतुःप्रस्नवण एक एव । द्वयमिति द्वित्वं तु रुद्धकुम्भादाय । श्रत एव श्रीरुद्धस्येति क्ष्णोकार्द्धेन रुद्धकुम्भ एव पूर्वोक्तो द्वित्वसंख्या पूरणायाऽन्यते । चतुःप्रस्नवण एव तु पञ्चकुम्भस्थाने विधीयते । एवं पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेदिति पञ्चवक्त्रतो-किरिप पञ्चकुम्भस्थानापत्या सङ्गच्छते ।

वस्नावग्रस्टितं कुर्यात् पूरयेत्तीर्थेवारिणा ।
पश्चरतं समादाय ताम्रपन्तवसंग्रतम् ॥ १ ॥
गजारवरथ्यावन्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदगोक्कतात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय नित्तिपेत् ॥ २ ॥
कुम्भस्य नैर्म्यते देशे होमदेशं मकन्पयेत् ।
गोमयाछेपिते देशे कुर्यात् स्थिगिडलम्रुत्तमम् ॥ ३ ॥
कुत्वाऽमिमुखपर्यन्तमुन्छेखादि स्वशक्तितः ।
पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥ ४ ॥
नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन मयन्नतः ।
निष्कमात्रेण वाद्धेन पादेनाऽथ स्वशक्तितः ॥ ४ ॥

पतिमां लक्षाणोपेतां कारियत्वा विचत्तरणः । यद्वाः मूलं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥ मूलं मृलाकारं मूल्यमिति कचित्पाठः। तदाप्रतिमामूल्यमित्यर्यः। सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनताः । सुवर्ष सर्वदेवात्मको विमः सर्वदेवमयो हरिः॥७॥ संस्मरेभिऋति श्यामं सुमुखं नरवाहनम्। रच्चोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥ ८ ॥ प्रतिमापूजनार्थीय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत् । पङ्कुजं कारयेद्भूमौ रक्ताभैर्वीहितएडुलैः ॥ ६ ॥ चतुर्विशह्छोपेतं शुक्लीर्वा कर्णिकान्वितम् । तस्यापरि न्यसेत्पात्रं स्वर्धा वा रौप्यमृन्मयम् ॥१०॥ शुद्धवस्त्रेण सञ्ज्ञाच तत्र मृतानि निचिपेत्। मूलानि शतमूलानि तानि सर्वे च वक्ष्यते ॥११॥ स्वयमुत्पाटयेत्पाङ्गो मूलानां च शतं पिता। मङ्गल्यारच पवित्रारच त्रोषध्यः कथयाम्यहम् ॥१२॥ लक्ष्मणा शतमूला च शिरीषो वेतसस्तथा। सहाका खेतमूला च विष्णुकान्ताव्य शहिनी ॥१३॥ सर्पाची मोननेत्रा च पुत्रपारी कृताझली । पालाशो विल्वकश्चैव रोचना चन्दनद्वयम् ॥१४॥ कृष्णामांसी मुरोशीरं बालकं च तथाऽऽमली। गोजिहा तुलसी ईव्या शतपुष्पी सलाङ्गली ॥१५॥ ब्रह्मद्वही द्रोणपुष्पी वियद्गुः सितसर्पपाः। पिप्पत्ती काकजङ्घा च त्रायमाणा हुहूस्तथा।।१६॥ ज्योतिष्पती च गन्धारी निर्गन्धा पूर्णकोशिका । भगन्तमा सुभद्रा च गुडूची सेन्द्रवारुणी ॥१७॥

अलम्बुकाऽरुदन्ती च कदली केतकी तथा । गोत्तुरं शतपर्वा च श्ररिष्टिकाऽपराजिता ॥१८॥ ः वित्ररुद्धा शतपर्वा निकुम्भा च सुवर्चेला । अथगन्या हस्तिकर्णा हरिद्राद्वित्यं तथा ॥१६॥ जष्ट्रवो मधुकारश्च अन्तरथो बकुलस्तथा । सर्पेचीरा ह्यपामार्गी मन्दारश्राऽतिमुक्तकः ॥२०॥ मालती स्वर्णपुष्पा च श्रीपणी श्रीफलं तथा। दर्भमूलं करवीरं मदयन्ती विकङ्कतः ॥२१॥ पाटलाः सुरदास्त्र अर्दसूदनिकस्तथा । फलं मन्मथरुक्तस्य पलाशस्य च परतवाः ॥२२॥ रास्त्रा नदीवृत्तमूलं सुरदारुविदारिका । रवेतवीर्या रवेतपाका नीलोत्पत्तं तथैव च ॥२३॥ नागकेशरमिन्दोरी कुमारी चैव निचिपेत्। तीर्थाम्बु पश्चगव्यं च सर्वीपध्यश्च काञ्चनम् ॥२४॥ यथासम्भवते। वाऽपि ग्राह्मं मूलं शतं शुभम् । वीरत्वचा समेतं च शतिबद्धे घटे न्यसेत्।।२४॥

शतम् ला=शतावरी । वेतसम् वञ्जुलः । सहका=सहदेवी । श्वेतमूला=पुनर्नवा । मीननेत्रा=मत्स्याज्ञी । पुत्रपारा=पुत्रजीवा । कृताञ्जली
=श्रञ्जलिनी 'हाथा होडा' इति प्रसिद्धा । विख्यः । चन्दनहयम्=श्वेतं
पीतं च । धामला=भूम्यामलको । गोजिहा=गजिलमीति प्रसिद्धा ।
लाङ्गली=किलहारीति प्रसिद्धा । ब्रह्मदग्रडी = श्रधःपुष्पी । करम्बुकः ।
काकजहा=काकाङ्गो । ज्योतिष्मती = कङ्गुका । गान्धारी=देवगान्धारी ।
पूर्णकोशिका=कौशातको । भगज्ञमा=शिग्रुः । सुभद्रा=सारिवा ।
श्रतम्बुका=तुम्बो । विशालपर्वा=वचा । श्ररिष्टिका = नागवला । ख्रिन्नकहा=पिण्डगुह्रची । शतपत्रा=कमिलनी । निकुम्भा=दन्तिमेदः । सुवचेला=सूर्यभका । हस्तिकर्णा=परगडः । उष्ट्रवः=पीलुः । मधुकारः=
मधुका । सर्जरा=वीजकः । श्रतिमुक्तकः=मध्यवी । मालती=जातो ।

स्वर्णपुर्वा=कुशली । श्रोफलम्=विरुवम् । मदयन्ती=यूथिका । विकङ्कतः=स्नुववृत्तः। श्रर्दस्द्निका=पालव्या । मन्मथवृत्तः=श्राम्तः । सुरदारः = देवदारः । विदारिका = भूकूष्मागदी । श्वेतवीर्या = गिरिकर्णी । श्वेतपाका = गुआ । श्रेषाणि स्पष्टानि ।

विष्णुकान्ता सहदेवी तुलसी तु शतावरी । मृलानीमानि गृह्धीयाच्छताऽलाभे विशेषतः ॥१॥ स्थापयेत्कर्णिकामध्ये वस्त्रगन्धाय लङ्कृतम् कुङ्कुमौषधिसंयुतम् ॥२॥ कूर्म हेमजलोपेतं कुम्भोपरि न्यसेदिद्दान् मूलं नत्तत्रदैवतम् श्रिध-मत्यधिदेवौ च देनियोत्तरदेशयोः ॥ ३॥ यजेदादौ ज्येष्ठान चत्रदैवतम् श्रधिदेवं **उत्तराषादऋजादि श्रनुराधान्तमर्चयेत् ॥४॥** ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत् स्व-स्वनामतः स्वलिङगोक्तैश्र मन्त्रेश्च प्रधानादीन प्रपूज्येत्।। ५ ॥ पञ्चामृतेन संस्थाप्य आवाह्याऽथ समर्चयेत् । उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥ ६॥ रक्तचन्दनगन्धाढ्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः। घृतदीपैस्तथैव च मेषशृङ्गादि-धूपैश्र सुरापोलिकमांसाचै−ने वेद्यै रोदनादिभिः मत्स्य-मांस सुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्षयेत्॥ ८॥ सुरास्थाने मदातव्यं चीरं सैन्धवमिश्रितम्। पायसं लवणापेतं मांसस्थाने पकन्पयेत् ॥ ६॥ उक्तं गन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्चेयेत् । पुष्पान्तं तु समभ्यच्ये होमं कुर्याद्यथोदितम् ॥१०॥ निर्वापमोत्तरणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि । इतिर्प हीत्वा विधिवन्नैत्रमृत्यैव ऋचा हुनेत् ॥११॥

माषुणः परापरेति यसे देवीति वा पुनः । थायसं घृतसंमिश्रं हुनेदृष्टोचारं शतम् ॥१२॥ समिदाज्य-चरून् पश्चाच्छान्तितः संख्यया हुनेत् । श्रिधदेवतयात्रापि जुहुगात् स्व-स्वपन्त्रतः ॥१३॥ चतुर्थ्यन्तैर्नमाऽन्तैश्र स्वाहान्तैः स्व-स्वमन्त्रकैः। नचेत्रदेवताभ्यश्र पायसेन तु हामयेत् ॥१४॥ कुणुष्वेति पश्चदशर्गिमर्जुहुयात्कुशरं ततः । गायत्र्या जातवेदसे त्रैयम्बकमिति क्रमात् ॥१५॥ सीरा युद्धनित तामग्नि वास्ताष्पत्यग्निमेव च । क्षेत्रस्य पतिना गृणानामग्नि दृतं तथैव च ॥१६॥ श्रीसक्तेन तथा विद्वान समिदाज्यचरून क्रमात्। ब्रष्टोत्तरशतैर्वाऽपि ब्रष्टाविंशतिभिः क्रमात् ॥१७॥ अष्टाष्ट्रसंख्यया वाऽपि जुहुयाच्छक्तितो बुधेः। त्वनः सोमेन पायसं जुहुयाचु त्रयोदश ।।१८॥ चतुर्यहीतमाञ्यं च यातेरुद्रेति मन्त्रतः । सुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात् ॥१६॥ हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात्मायश्चित्ताहुतिहुनेत् । श्राचार्यो यजमाना वा अग्नौ पूर्णाहुति हुनेत् ॥२०॥ समुद्रादिति स्कोन प्राजापत्यत्रस्या तथा । पूर्णादिनि सप्त ते एतैः पूर्णाहुति हुनेत् ॥२१॥ होमशेषं समाष्याऽथ विद्वमारापयेद्वुषः । कुम्भाऽभियन्त्रखं कुर्याद्दत्तिरोनाऽभिवर्शयेत् ॥२२॥ मृत्युप्रशमनार्थाय जपेत्त्रैयम्बकं शतम् । रुद्रकुम्भोक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशन जपेत् ॥२३॥ धूर्प दीपं च नैवेद्यं क्रम्भयुग्मे निवेदयेत् । मुसाद्येचते। देवमभिषेकार्थमादरात् ॥२४॥

तस्मिन् काळे ग्रहातिथ्यं कर्राव्यं भूतिमिच्छता । पृथक् प्रशस्तं तेनैव नत्तत्रेष्ट्या सहैव च ॥२५॥ अभिषेकविधि वक्ष्ये पूर्वाचार्येरुदाहृतम् । भद्रासने।पविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ॥२६॥ दारपुत्रसमेतस्य कुर्धः सर्वेऽभिषेचनम् । श्रनीभ्यामिति सुक्तेन पावमानीभिरेव च ॥२७॥ श्रापा हि होति नवभियत इन्द्रद्वयेन च। सहस्राज्ञतृचेनाऽपि देवस्य त्वेति मन्त्रकैः ॥२८॥ शिवसङ्करूपमन्त्रेश्च वस्यमार्णेश्च मन्त्रकैः। योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ॥ मुलजातशिशोदोंपं माता-पित्रोर्व्यपोहतु ॥२८॥ योऽसौ शक्तिधरो देवों हुतभुद्धोषवाहनः । सप्तिनहः स देवोऽग्निम् लदोषं व्यपोहतु ॥३०॥ योऽसौ दगढधरी देवी धर्मी महिषवाहनः । मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोद्द यमस्तथा ॥३१॥ योऽसौ खद्रधरो देवो निर्ऋती राचसाधिपः। पशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ॥३२॥ योऽसौ पाश्रभरो देवो वरुएश्च जलेश्वरः । नक्रवाहः मचेताहो मूलोत्थायं व्यपोहतु ॥३३॥ योऽसौ देवो जगत्माखा मारुतो मुगवाहनः। त्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गएडान्तसम्भवम् ॥३४॥ योऽसौ निधिपतिर्देवी गदाशृत्रस्वाहनः । माता-पित्रोः शिशोश्रेव मृत्तदोषं न्यपोहतु ॥१५॥ योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी द्रषवाहनः। अवस्थेषा-मूल-गयदान्तं दोषमाश्च व्यपोइतः ॥३६॥ विघ्नेशः सेत्रपो देवो पिनाकी दृषवाहनः।
श्रारकेषा-मूल-गर्छान्तं दोषमाश्च व्यपोहतु ॥३७॥
सर्वदोषभश्मनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः ।
तच्छं योरिषभेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥३८॥
सर्वकामप्रदं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
वस्नान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चाचु तपयेद्रबुधः ॥३८॥
ततः शुक्काम्बर्धरः शुक्कमान्यानुकेपनः ।
यजमानो दिच्याभिस्तोषयेद्दिवगादिकान् ॥४०॥
धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्यय सवत्सकाम् ।
निर्द्यतिप्रतिमां वस्तं कुम्भं हेम च दापयेत् ॥४१॥
ग्रहार्थे वस्त्रपतिमां तत्तद्गी-भूश्च दापयेत् ।
ग्रहहोत्वष्ठ द्यापयेदिति किचित्पाठः।

श्रीख्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वान् प्रयत्नतः ॥४२॥
तत्कुम्भवस्त्रपतिमां तस्मै द्यात्प्रयत्नतः ।
इतरेभ्योऽपि विष्रभ्यः शक्त्या द्याच दिन्नणाम्॥४३॥
छक्ताऽलाभे ततो द्यादाचार्य-ब्रह्म-ऋत्विजाम् ।
तत्तन्मून्यं प्रदातव्यं शक्त्या वाऽथ प्रदापयेत् ॥४४॥
श्राचार्याय ब्रह्मणोऽर्द्धे ऋत्विग्भ्यश्च तदर्द्धेकम् ॥४४॥
यह्मीयादाशिषस्तेभ्यः प्रणम्याऽथ स्त्रमापयेत् ।
द्यादश्चं पायसादि ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम् ॥४६॥
श्रत्वाभे सति पश्चाशद्दशकं तदभावतः ।
सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणौराशिषस्तथा ॥४७॥
यह्म स्त्रमापयेद्दमान् निर्द्धं तिः प्रीयतामिति ।
विश्राने सरितेऽस्मिस्तु ततो शान्तिभवद्भवन् ॥४६॥

गरडान्तेष्वेवमेवं स्यात्पुष्पाद्येष्वेवमेव तु । समाष्टके द्वादशाहे कुर्याद्वे शान्तिमादरात् ॥४६॥

अथ मूलाश्लेपाशान्त्योः प्रयोगः-तत्र कत्त्रोंककाले मास-पत्तायुक्तिक्य ममाऽस्य शिशोः कुमार्या वा मूलाद्यपादादिष्वाश्ले-षायां वा जन्मना स्चितिपत्राद्यरिष्टशान्त्यर्थे शान्ति करिष्य, इत्युक्त्वा गणेशपूजन-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाभ्युद्यिकानि कृत्वाऽऽचार्य-ब्रह्मसदस्यान् ऋत्विज्ञश्चाष्टी पद् चतुरो वा वृत्वा यथाविभव-मर्चयेत् । तथाऽऽचार्यं श्राचार्यकर्म करिष्य, इत्युक्त्वा । यदत्र संस्थितमिति सर्पपान्विकीर्याऽऽपो हि ष्टेत्यादिभिभु वं प्रोद्येशान्यां महोद्यौरिति स्पृष्ट्वोषधयः समिति द्रोणपरिमितं वीद्यादि क्षिप्त्वा कलरोष्टिति रुद्रकुम्मं संस्थाप्येमं गङ्गेत्युदकेनापूर्यं गन्धद्वारा-मिति गन्धं या श्रोषधीरित्यौषधीरोषधयः समिति यवान् काण्डा-दिति दूर्वा श्रंश्वत्थे व इति पञ्च पल्लवान् रुवती भीम इति पञ्च रवचः स्योना पृथिवीति सप्त मृदो याः फलिनीरिति फलं स हि रह्नानी-ति पञ्चरतानि हिरएयरूप इति हिरण्यं गायत्र्येति गोमूत्रं पुनर्मनेति गोमयम। प्यायस्वेति पयः दिधकाव्ण इति दिध तेजोसीत्याज्यं देवस्य त्वेति कौशं कूर्चं मधुवातेति मधु स्वादुरिति शर्करां चिलवा युवा सु-बासा इति बस्त्रेण स्त्रेण वा कुम्मकण्डमावेष्ट्य पूर्णादविरिति पूर्ण-पात्रेण पिधाय ततः प्रागुद्ग्वा चतुर्दिच्च चतुरः कुम्भान् मध्ये चैकं कुम्भं प्रत्येकं मन्त्रावृत्या पदार्थानुसमयेन जपार्थं संस्थाप्य रुद्धः कुम्मे सौवर्णप्रतिमायां ज्यम्बकं वशिष्ठो स्द्रोऽनुब्हुप् सदाबाहने विनियोगः। त्र्यम्बकमिति रुद्रमाबाह्य पूत्रयेत्। ततो रुद्रकुम्भं स्पृन ष्ट्रैकर्त्विक् याज्यश्चेदुद्रैकादशिनीं वहवृवश्चेत् त्रीणि रुद्रस्कानि छ्र-न्दोगश्चेदुद्रसामानि जपेत्। स्कसामामेकद्विज्यैकादशावृत्तिः शक्तितो श्चेया । कदुद्राय घोरः कत्वो रुद्रो गायत्री इमा रुद्राय कुत्स रुद्र श्राद्या नव जगत्योऽन्तेऽनुष्डभी आते पितर्गृतसमदो सद्राख्निष्डप् जपे विनियोगः । सामानिति आवो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्दुप् तमु-ष्टुहि भौमो त्री रुद्रस्त्रिष्टुप् भुवनस्य पितरमृतिश्चारुद्रस्त्रिष्टुप् अपे बिनियोगः। ततोऽन्य ऋत्विक् जपार्थकुम्भपञ्चके प्राक् क्रमेश जपेत्। आशुः शिशानेति त्रयोदशर्चस्येन्द्रोऽप्रतिरथ ऋषिरिन्द्रो देवता चतुथ्या बृहस्पतिस्त्रिष्द्वप् जपे विनियोगः। त्वमन्ने रुद्ग इत्य-

नुवाकस्य दृष्यवार् रुद्रो जगती जपे विनियोगः। त्वमग्ने वामदेवो-ऽग्निस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः। रच्चोद्दणमिति पञ्चविश्वर्चस्याङ्गिरसः वायुरिनासिष्टुप् जपे विनियोगः। ततो मध्यकुम्से जपेत्। ज्यम्बकं वसिष्ठोऽनुष्टुप् जपे विनियोगः ॥ ११ ॥ अत्रैय पवमानमपि सरुज्ञपेत् । पर्वं षट्कुम्भाशकौ रुद्रकुम्भं चतुःश्रस्त्रवर्णं चेति कुम्मद्वयं संस्थाप्य रुद्रैकादशिन्यादि रुद्रकुम्भे जप्रवाऽप्रतिरथा-दोनि चत्वारि प्रस्नवरोषु ज्यम्बकमन्त्रं पावमानीश्च मध्यमुखे जपेत् । श्रथाचार्यो स्द्रकुम्भान्नैऋत्ये स्थिविडलेऽग्नि तदीशान्यां नवप्रहस्थापनं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तद्यथा । समिद्रह्रय-मादायाऽस्थां मूलशान्ती देवतापरिष्रहाथमन्वाधास्येऽस्मिन्नन्वा-हितेऽग्नावित्यादि चञ्चषी श्राज्येनेत्यन्तमुक्त्वा नवग्रहानधिदैवता-प्रत्याधदेवता-लोकपालान् विनायकादीश्च प्रत्येकममुकसंख्यया समि-चर्वाज्यैनिंऋति प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रत्येकमन ष्टाविशतिसंख्यया घृताकपायस-समिदाज्यच्यमिविश्वेदेवाद्याश्चतु-विंशति ऋचदेवता अष्टाष्टलंख्यया पायसेन रचोहरां क्रयुष्वेति पञ्चदश्मिः क्रशरान्नेन सवितारं दुर्गा जातवेद मि रुद्रं ऋत्विक् अति दुर्गा वास्तोष्पतिमग्नि चेत्राधिपति मित्रावरुणौ श्रश्निमेताश्चाऽरे ष्ट्राऽष्टसंख्यया इसरान्नेन श्रियन्तामित्रवर्णामिति पञ्चदशिमः प्रत्यूचमष्टसंख्यया समिदाल्यचहिमः सोमं त्रयोदशवारं पायसेन रुद्रं चतुर्रं हीतेनाज्येन अग्नि वायुं सूर्यं प्रजापति बृहस्पतिमिन्द्रं विश्वान्देवान्महाज्याद्वतिभिराज्येन शेषेण स्विष्ठकृतमित्यावि सद्यो यस्य इत्यन्तमुक्त्वा समस्तब्याहृतिभिः समिद्वद्यमग्रावाद्ध्यात्। आरहेपाशान्ती तु सर्पप्रधानदेवतामधिदेवतां बृहस्पति प्रत्यधि-वेषतान, पितृत् भगाद्यदित्यचंदिवताश्चेति विशेषः। ततः परिसम् इनादिपूर्णपात्रिनिधानान्तं करवाऽग्नेः प्रागुदग्वा रक्तैः युक्कवेर्गं तण्डुलै-श्चतुर्वि शहलं पद्मं करवा तत्र प्राग्वत्कुम्भं संस्थाप्य तस्मिन् या भावभारिति शतमूलानि तदलामे विष्णुकान्ता-सहदेवी-तुलसी-गताबरी कुशमूलानि जिल्वा पूर्णपात्रं निधाय तत्र साध्दलं वासो बितत्य तत्किथिकायां निष्कं तद्दीमतां निम्हतिप्रतिमामन्युक्तार्यः पूर्वकं पत्रचासूतस्नापितां मोष्ठुगो। ब्राँदः कर्यवा निम्नुतिर्गायकी मे। खुव इति संस्थाप्य --

संस्मरेनिऋति श्यामं सुमुखं नरवाहनम् । स्त्रोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ।।

—इति ध्यारवा। तद्द ज्ञिणत इन्द्रं वे मधुछन्दा इन्द्रो गायत्रीतीन्द्रस्य तदुत्तरतक्षाऽण्सु मे मेधातिथिरापोऽजुष्टुवित्यपां च सौवर्ण-प्रतिमे सस्थाप्य पदार्थानुसमयेन स्वस्वमन्त्रस्ताः पूजयेत्। तत्र वस्त्रयुग्मम् । रक्तचन्दनम् । रुष्णपुष्पाणि । मेषश्रक्षस्य धूपः। आज्यस्य दीपः । पोलिकोदनादि नैवेद्यं ब्राह्मणानां सुरास्थाने सैन्धविमश्चं द्वीरं मांसस्थाने लवण्युक्तं पायसम् । च्रत्रियादीनां तु मुख्यमेव ततः । चतुर्विंशहलेषु प्रागादितो विश्वेदेवाः । विष्णुः । वस्त्रः । वद्याः । श्रज्ञैकपात् । श्रद्धिर्वु ध्वयः । पूषा । श्रव्रिवनौ । यमः । श्रद्धिः । प्रजापतिः । सोमः । रुद्रः । श्रदितिः । वृहस्पतिः । सर्पाः । श्रद्धिः । भगः । श्रर्थमा । सविता । त्वष्टा । वायुः । इन्द्राग्नी मित्र इत्येताश्चतुर्थन्तनमोऽन्तैर्नामभिः क्रमेणाऽऽवाद्य पूजयेत् । आन्द्रेषा-श्रान्तौ तु सर्पप्रितमां नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यावाद्य —

सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः । फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिन्याभरणभूषितः ॥ इति ध्यात्वा ।

तद्दक्षिणते। वृहस्पते गृत्समदो वृहस्पतिस्त्रष्टुविति वृहस्पतिम् ।
तदुत्तरतश्चोदीरतां शङ्काः स्वधा त्रिष्टुविति पितृनावाद्य चतुर्विंशतिदलेषु प्रागादितो भगाद्यदित्यन्तर्त्तदेवता श्रावाद्य प्रजयेत् । ततोऽन्वाधानक्रमेण् पायस-चर्य-क्रसरान् श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वा
यज्ञमानेन सर्वदेवतोद्देशेन द्रव्ये त्यक्ते सर्त्विगन्वाधानोक्तक्रमेण्क्तदेवतां
तत्तम्मन्त्रेर्द्धत्वा रक्तोहाद्यान् वस्यमाणिर्भर्जुद्धयात् । ताश्च । क्रणुष्वेतिः
पञ्चद्यर्थस्य वामदेवो रक्तोहा त्रिष्टुप् कृसरहोमे विनियोगः । पवं
सर्वत्र । गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री । जातवेदसे कश्यपो
दुर्गा त्रिष्टुप् । त्र्यम्बक् वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् । सीरा युक्षन्ती बुध
स्रित्वक् श्रुतिर्गायत्री । तामग्निवर्णां सौभरिदुर्गा त्रिष्टुप् । वास्तोष्पते वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप् । श्रग्ने नयानस्त्योऽग्निस्त्रिष्टुप् ।
स्रेत्रस्य वामदेवः स्त्रपालोऽनुष्टुप् । गृणाना जमदग्निमित्रावरुणी
गायत्री । श्रग्नि दूतं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री । हिरगयवर्णामिति पञ्चदश्चस्य कर्दमानदिचिक्तितेन्दरास्रता ऋष्यः श्रीदेवता

बाद्यास्तिस्रोऽतुष्टुभः तुर्या प्रस्तारपङ्किः पञ्चमी-षष्ट्यौ त्रिष्टुभौ ततोऽष्टावनुष्टभावन्त्या पस्तारपंक्तिः प्रत्यृचं समिदाज्यचहहोमे विनि-योगः। त्वन्नः सोमेति त्रयोदशर्चस्य प्रगाथः सोमस्त्रिष्टुप् पायसहोमे विनियोगः। या ते रुद्रेति कश्यपो रुद्रस्वराडनुष्टुप् चतुर्रु हीताज्य-होमे विनियोगः। सप्तमहान्याहृतीनां विश्वामित्राह्ये ऋषयोऽग्न्याः दयो देवताः गायज्यादीनि छन्दांसि श्राज्यहोमे विनियोगः । एवं हुत्वा स्विष्टकृदादिवायश्चित्ताहुत्यन्तं कृत्वा लोकपाल-नवब्रह-विना-यकादिभ्यो निऋतीन्द्राङ्गचो रुद्रचेत्रपालयोश्च बलीन् दत्वा पूर्णा-हुति जुहुयात्। तत्र मन्त्राः । समुद्रादृर्मिरित्येकादशर्चस्य वामदेव श्रापित्रष्टुप् । अन्त्याजगती प्रजापते हिरएयगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् । पूर्णाद्वि विश्वेदेवाः शतकतुरनुद्धप्। सप्त ते श्रग्ने सप्तवानग्निर्जगती पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः । एवं सर्वत्र । ततो होमशेषं समाप्य प्रधानकुम्भं दक्तिणतः स्पृष्ट्वा शतवारं ज्यम्बकमन्त्रं जप्तवा तथैव रुद्रकुम्मं च स्पृष्ट्वोक्तरीत्या रुद्रैकादशिन्यादि जप्त्वा गन्धा-दिभिः कुम्मद्वयगतनिऋतिरुद्रावश्यच्यं सर्विगाचार्यः सर्वकुम्मो-दकैर्भद्रासनोपविष्टं सापत्यकलत्रं यजमानमभिषिञ्चेत्। तत्र मन्त्राः। श्रज्ञीभ्यामिति षर्गां कश्यपो यदमहाऽनुष्टुप् श्रमिषेके विनियोगः। एवमुत्तरत्र । पवस्वविश्वचर्षण इति त्रिशर्चस्य शतं वैखानसाः पव-मानसोमो गायत्री। श्रापो हि छेति नवर्चस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप मापो गायत्र्यंत्ये हेऽनुषुभौ पञ्चमीवर्द्धमाना सप्तमीप्रतिष्ठा। यत इन्द्रेति द्वयोः सप्तर्थयो विश्वेदेवा श्रनुष्टुप् सहस्राचेगेति तचस्य प्राजापत्यो यदमनाशनो यदमहा त्रिष्टुप् द्वयोरन्त्या जुष्टुप्। देवस्य त्वेति त्रिभिर्यज्ञर्भिश्च यज्जाप्रतेति पएणां शिवसङ्करपमन्त्राणां प्रजापति-र्मनस्त्रिष्टुप्। तत्तत्पुरायोक्तमन्त्राः—

योऽसौ वजधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ।
मूलजातशिशोहींषं माता-पित्रोट्यपोहतु ॥१॥
योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतश्चक् मेषवाहनः ।
सप्तजिहश्च देवोऽग्निम् लदोषं व्यपोहतु ॥२॥
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मी महिषवाहनः ।
मूलजातशिशोहींषं माता-पित्रोट्यपोहतु ॥३॥

योऽसौ खड्गधरो देवो निऋती राचसाधियः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं देशं गएडान्तसम्भवम् ॥ ४ ॥
योऽसौ पाश्धरो देवो वरुणश्र जळेश्वरः ।
नक्रवाहः प्रचेतारूये। मूळेात्थाघं व्यपाहतु ॥ ४ ॥
योऽसौ देवो जगत्पाणा मारुतो मृगवाहनः ।
प्रशामयतु मूळेात्थं देशं वालस्य शान्तिदः ॥ ६ ॥
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभुद्राजिवाहनः ।
माता-पित्रोः शिशोश्चैव मृलदेशं व्यपाहतु ॥ ७ ॥
योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी दृषवाहनः ।
श्राश्लेषा-मूल-गण्डान्तं देशमाशु व्यपाहतु ॥ ८ ॥
विघ्नेशः चेत्रपा दुर्गा ळेशकपाला नवग्रहाः ।
सर्वदेशपत्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः ॥ ६ ॥

श्रारलेषाशान्तौ तु--श्रारलेषाऋज्ञजातस्य माता-पित्रोर्धनस्य च ।

योऽसौ वागीश्वरा नाम श्रिधदेवी बृहस्पतिः।
माता-पित्रोः शिशोश्चेव गण्डान्तस्य व्यपाहत् ॥११॥
पितरः सर्वभूतानां रत्तन्तु पितरं सदा।
सर्पनत्तत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान्॥१२॥ इति विशेषः
ततः तच्छं योः शंयुविश्वेदेवाः शकरी श्रभिषेके विनियोगः।
ततो वस्त्रान्तरितनित्रृतिरुद्रकुम्भोदकेन स्नापितो यजमानो धृतधौतवासाः साऽपत्यकलतः कांस्यपात्रस्थाऽऽज्यं रूपं रूपमित्यवेषय
विश्राय दत्वाऽऽचार्यादीनभ्यच्यांचार्याय गां ब्रह्मणे वृषं सदस्यायाऽश्वं
रुद्रजापिने कृष्णवृषं धेन्वाद्यलामे तत्तन्मूल्यं वा दत्वा स्वशक्त्या
त्रमृत्विग्भ्यो भूयसीं च दत्त्वोत्तरपूजां रुत्वा यान्त्विति विस्तुत्याऽऽचाः
र्याय नित्रृतिग्रह्मतिमाकुम्भाविरुद्रजापिने रुद्रभतिमाकुम्भावि
सङ्गरूपपूर्वकं दत्वाऽग्निमभ्यच्यं गच्छ गच्छेति विस्तुत्य शतं तद्दर्भ

भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां देाषं सर्वं व्यपाहतु ॥१०॥

दश वा ब्राह्मणान्मोजयित्वा शान्त्याशीर्वाचयित्वा यस्य समृत्येत्या-द्युक्तवा स-स्वजनो भुजीत ।

इति श्रीभद्दनीलकण्ठकते भगवन्तभास्करे शान्तिमयु ले . मूलाश्लेषाशान्तिपयोगः।

अथ वैषृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तिः।

शौनकः-कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्र वैधृतिः। सङ्क्रमञ्ज रवेस्तत्र जाता दारिद्यकारकः ॥ १ ॥ दरिद्राणां महादुःखं व्याधिपीडासमुद्भवम् । अश्रिया मृत्युपाप्नोति नाऽत्र कार्या विचार्णा ॥ २ ॥ स्रीणां च शाकं दुःखं च सर्वनाशकरा भवेत्। शान्तिर्वा पुष्कला कार्या तस्य दोषा न कथन ॥ ३॥ गोम्रुखमसर्वं कुर्याच्छान्ति कुर्यात्त्रयत्नतः। जपाऽभिषेकदानैश्र होमादपि विशेषतः ॥ ४॥ नवग्रहमस्त्रं कुर्यात्तस्य देश्पेश्यशान्तये । प्रथम गामुखं जन्म ततः शान्ति समाचरेत् ॥ ५ ॥ गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनाऽनुतिष्य च। अलङ्कृते सुदेशे तु ब्रीहिराशि पकन्पयेत् ॥ ६ ॥ पञ्चद्रोणिमतं धान्यं तदर्दे तगडुळेन च । तदर्द्धे तु तिलैः कुर्योदन्याऽन्या परिकल्पयेत् ॥ ७॥ द्रव्यत्रितयराशौ तु अष्टपत्रं लिखेद्बुधः। पुरुषाहं वाचियत्वा तु श्राचार्य हुणुयात्पुरा ॥ ८॥ श्राचारवन्तं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुम्बिनम् । मन्त्रतस्वार्थतस्वज्ञं शान्तिकर्मिण काविदम्।। १।। पञ्चाङ्गभूषणं दद्यात्पद्दवस्ताङ्गुलीयकम् क्राण राश्रो प्रतिष्ठितं क्रम्भमवर्षं स्वयने।इसम् ॥१ ।।।

तीर्थोदकेन सङ्गृह्य समृदौषिषव्रवस् । सगब्य-गन्ध-रत्नं च बस्नयुग्मेन बेष्ट्येत् ॥११॥ न्यसेत्पात्रं सूक्ष्ममत्रण्संयुतम्। त्रस्यापरि प्रतिमां स्थापयेद्धीमान्साधि-प्रत्यधिदैवताम् ॥१२॥ चन्द्राऽऽदित्याऽऽकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् । एवमेव व्यतीपाते शान्ती सङ्क्रमणस्य तु ॥१३॥ भानोरुत्तरता रुद्रमग्नि दत्त्रिणता यजेत्। निष्कमात्रेण वारुद्धेन पादेनाऽपि स्वशक्तितः ॥१४॥ प्रतिमां कारयेद्धीमान् तत्तल्लचणलचिताम्। प्रतिमां पूजनार्थीय बह्मयुग्मं निवेदयेत् ॥१५॥ . प्रत्यधिदैवतम् । भवेत्सूर्यश्चन्द्रः श्रधिदेवा ततो व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत् ॥१६॥ त्रैयम्बकेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां यजेत्। तत्सूर्य इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ॥१७॥ आप्यायस्वेति मन्त्रेण सोमपूजां समाचरेत्। षाडशभिर्यद्वा पश्चोपचारकैः। **उ**पचारैः श्रिचित्वा गन्धपुष्पाद्यैः फलं नैवेद्यमर्पयेत् ॥१८॥ मृत्युद्धयेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां स्पृशेत्। प्रष्टोत्तरसहस्रं वा श्रष्टोत्तरशतं तु वा॥१६॥ श्रष्टाविंशति वा चाऽथ पूजायां च खशक्तितः। सर्वसौरं प्रजप्याध्य सोमोध्य सोमपन्त्रतः ॥२०॥ आना भद्रेति सक्तं च भद्रा अग्नेश सक्तकम्। जपेत पौरुषं सक्तं त्रैयम्बकमतः परम् ॥२१॥ कुम्भं स्पृष्टा चतुहिस्तु जपं कुर्युस्त्वथर्तिकः। क्रुम्भस्य पश्चिमे देशे स्थिएडलेऽग्नि मकल्पयेत ॥२२॥ स्रमुद्धोक्तविधानेन कारपेरसंस्कृताञ्चलम् । त्रैयम्बकेन मन्त्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् ॥२३॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा। अष्टाविंशति वा क्वर्यात्स्वस्य शक्त्यनुसारतः॥२४॥ मृत्युद्धयेन मन्त्रेण तिलहोमं समाचरेत् । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा अभिषेकं च कारयेत् ॥२४॥ सम्रद्भव्येष्ठासूक्तेन आपो हि ष्टेत्यृचेन च । अत्रीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥२६॥ वैयम्बकेन तत्सूर्य आप्यायस्वेति मन्त्रतः । सुरास्त्वामिति मन्त्रेण अभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामिति मन्त्रेण अभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामिति मन्त्रेण अभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामिति मन्त्रेण अभिषेकं समाचरेत् ॥२०॥ सुरास्त्वामिति व्यन्त्वत्यादिकोऽभिषेकमन्त्रसमुदायोऽयुतहोम-विधाने द्रष्टव्यः।

श्रभिषेकाप्तुतं वस्नमाचार्यय निवेदयेत् ।

रवेतवस्रवरो भूत्वा भूषणाचैरलङ्कृतः ॥१॥

यजमानः स्निया युक्त श्राज्याऽवेच्चणमाचरेत् ।

श्राचार्य पूजयेत्पश्चाद्वस्रहेमाङ्गुलीयकैः ॥२॥

गोदानं वस्नदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ।

तद्दोषशमनार्थाय श्राचार्याय प्रदापयेत् ॥३॥

पञ्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिभवेदिति ।

जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दिच्चणाः प्रतिपादयेत् ॥४॥

दीनान्धकुपणेभ्यश्च पद्याद्भृरिद्चिणाम् ।

बाह्मणान् शतसंख्याकान् मिष्ठान्नौभीजयेच तान्॥५॥

बन्धुभिः सह भुञ्जीत यथाविभवसारतः ।

एवं यः कुरुते मत्त्यों नैव दुःखमवाप्नुयात् ॥६॥

श्रायुरारोग्यमैशवर्य माताः पित्रोः शिशोरि ।

श्रायुरारोग्यमैशवर्य माताः पित्रोः शिशोरि ।

श्रायुरारोग्यमैशवर्य माताः पित्रोः शिशोरि ।

ष्टस्य निरासार्थे शान्ति करिष्य इति सङ्कल्प गणेशपुजा-स्वस्तिः वाचन-मातृपूजा-वृद्धिश्राद्धाचार्यादि वरणानि कुर्यात् । अथाचार्यः सर्पपत्रिकरणादि कत्वा माच्यां गोमयोपलित्रभुवि पश्चद्रोखतदर्ई-मितनीहि-तगडुल-तिलानन्योन्योपरि राशीकृत्य तत्राऽष्टदलं विरच्य तत्कर्णिकायां कुम्मं संस्थाप्य तीर्थोदकेनाऽऽपूर्य्य तत्र सप्तमृत्-पञ्च-परुलव-रत्न-गब्याष्ट्रगन्ध-सर्वोषधीः चिप्तवा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्ण-पात्रं निधाय तत्र वैधृतिशान्तौ मध्ये ज्यम्बकमिति रुद्रं तहन्त्रिणत उत्सूर्य इति सूर्यमुत्तरतश्चाप्यायस्वेति सोमं व्यतीपात-सङ्कान्तिशा-न्त्योस्तु मध्ये सूर्यं तहन्नितोऽग्निं दूतमित्यग्निमुत्तरतो रुद्रं तत्तत्प्रति-मास्वावाह्य षोडशभिः पञ्चभिवौपचारैः सम्पूज्य रुद्र-सूर्य-सोमप्रतिमाः स्पृष्ट्राऽष्टसहस्राष्टशताष्टाविंशत्यन्यतरसंख्यया मृत्युअयमन्त्रमुद्यन्न• द्येत्यादिसर्वसीरमन्त्रानाप्यायस्वेति च क्रमाज्ञपत् । सङ्कान्तिशान्त्योस्तु पूर्व सौरजपस्ततो मृत्युअयजपः।ततो ऋत्विजः प्रागादि दिक्वतुर्धं क्रमेण ब्रानो भद्रा भद्रा अग्ने सहस्रशीर्धं कटु-द्रायेति स्कानि जप्त्वा श्राचार्यस्तु कुम्भात्पश्चिमेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रद्रा-वाह्नादि प्रानान्तं कृत्वाऽन्वादध्यात्। तत्र चचुषी आज्येनेत्यन्ते रुद्र-सूर्यसोमान् समिचर्वाज्येस्तत्तनमन्त्रेम् त्युअयमन्त्रेण च तिलाहुति-भिरष्टसद्दसाऽष्टशताष्टाविशति अन्यतरसङ्ख्ययाऽशेषेण सिष्टकत-मित्यादिब्यतीपातसङ्कान्तिशान्त्योस्तु स्वीग्निरुद्रानिति विशेषः। तत आज्यभागान्तेऽन्त्राधानोकक्रमेण हत्वा बलिदानान्ते कलशोदकैः समुद्रज्येष्ठा इति स्केन श्रापो हि ष्ठेति त्चेनाऽज्ञीभ्यामिति स्केन पावमानीभिः प्रधानाधिप्रत्यधिदेवतामन्त्रैः सुरास्त्वेत्यादिपौराण-मन्त्रीसाभिषिको यजमानोऽभिषेकवस्त्रमाचार्याय निवेदाऽऽज्यमवेदय पूर्णांदुति दुरवाऽऽचार्याय घेनुं वस्त्रयुग्माऽङ्गुलीयकादि ऋत्विग्भ्यश्च दित्तणां दत्वाऽन्येभ्यश्च भूरिदित्तिणां दत्वा शतं शक्त्या वा बाह्मणान् भोजयित्वा बन्धुभिः सह भुजीत इति वैधृति व्यतीपात-सङ्कान्ति-शान्तयः।

अर्थैकनचत्रजन्मशान्तिः।

गर्गः-एकस्मिन्नेव नत्तत्रे भ्रात्रोर्वा पितृ-पुत्रयोः । त्रस्तिरचेत्तयोर्मस्युर्भवेदेकस्य निश्चयः ॥१॥

तद्दोषनाशाय तदा प्रशस्तां शान्ति च क्रुर्यादभिषेचनं च । सम्पूच्य ऋचप्रतिमां तद्ये दानं च कुर्याद्विभवानुरूपम्।।२॥ तत्र शान्ति प्रवस्यामि सर्वाचार्यमतेन तु । शुभवारे च चन्द्र-तारावलान्विते ॥ ३ ॥ रिक्ता-विष्टी विवर्ण्ये तु प्रारभेद्विभवे सुधीः। श्राचार्यं वरयेत्पूर्वं चतुरश्र द्विजात्तमान् ॥ ४ ॥ पुरायाहं वाचियत्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत्। श्चरनेरीशानदिरभागे नत्तत्रप्रतिमां ततः ॥ ४ ॥ तन्ननत्रोक्तमार्गेख श्रर्चयेत्कलशापरि रक्तवस्रोण सञ्जाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्ट्रयेत् ॥ ६ ॥ स्वशाखे केन मार्गेण कुर्यादिनमुखं ततः। अनेनैव तु मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम्॥७॥ मत्येकं समिद्ञाज्यैः पायश्विनांतमेव अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः॥ =॥ वस्रालङ्कारगोदानैराचार्यं पूजयेत्पुनः अग्रत्विकां दिल्लां द्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥ ६ ॥ देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह । यान-शय्या-ऽऽसनादीनि द्यानाद्दापशान्तये ॥१०॥ भाजयेइ बाझणानसर्वान् विराशाठ्यविवर्जितः।

मय मयोगः — कर्ता मास-पन्नामुक्तिक्याऽस्य कुमारस्य वि-भाग्रेकचीत्विस् चितारिष्ठशान्त्यर्थमेकनचत्रशान्ति करित्य इति सङ्ग्रस्य गणेशपूजन-स्वस्तिवाचनाऽऽभ्युद्यकाऽऽचार्यत्विंग्वरणानि कुर्यात् । अथाऽऽवार्योऽग्नेरीशान्यां कुम्भं संस्थाप्य रक्तवस्त्रयुग्मेना-ऽऽच्छाच तस्मिन् पूर्णपात्रोपरि तत्तन्नचात्रोक्तमन्त्रेण प्रतिमायां तन्न-चत्रं तद्वतां साऽऽवाद्य सम्बुज्य अग्नि प्रतिष्ठाप्याऽन्वांभाव साज्य-भागान्तं कृत्वा तत्त्वस्त्रवात्रमन्त्रेण समिन्दव्यांभ्याति प्रत्येक महोत्तरशतं हुत्वा होमशेषं समाप्य शिशुं तिवित्रादीश्चाऽभिषिश्चेत् । ततः कर्ती-त्तरपूजां कृत्वा विस्तृत्य प्रतिमादिकं गवादि चाऽऽचार्याय दत्वा ऋत्विग्भ्यश्च प्रत्येकं सीवर्णमाषत्रयात्मिकां यथाशक्ति दिवाणां दत्वा यथाविभवं यान-शय्या-ऽऽसनादीनि च दत्वा बाह्यणान्भोजयित्वा स्वयं भुश्जीत । इत्येकननात्रशान्तिप्रयोगः ।

श्रथ ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः ।

शौनकः — ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य पस्तिर्यदि जायते। व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ १ ॥ इत्थं सञ्जायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः व्याधिपीडा च दारिष्टं शोकश्च कलहो भवेत् ॥ २॥ शान्ति तेषां प्रवश्यामि नराणां हितकाम्यया । यस्मिन ऋसे विशेषेण ग्रहणं संप्रजायते ॥३॥ तद्वाधिपते रूपं सुवर्णेन विशेषतः चन्द्रं चन्द्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ॥ ४ ॥ राहुरूपं पकुर्वीत नागेनैव विचन्नएः शुनी देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् नागेन = सीसेन । तस्योपरि न्यसेद्धीमात्रववस्त्रं सुशोभनम् त्रयाणां चैकरूपाणां स्थापनं तप्र कारयेत् रक्ताचं तं रक्तगन्धं रक्तपुष्पाम्बराणि च सूर्यप्रहें पदातव्यं सूर्यभीतिकराय रवेतवस्त्रं रवेतमाल्यं रवेतगन्धात्ततादिभिः चन्द्रग्रहे पदातव्यं चन्द्रमीतिकराय च राहवे चैव दातव्यं कुष्णपुष्पाम्बराणि द्याञ्चन्ननाथाय रवेतगन्धानुळेवने

सूर्य सम्पूजयेद्धीमात्राकुष्णेनेति मन्त्रतः । चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्धिर्जुहुयान्नरः ॥१०॥ दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान् राहोः सम्भीणनाय च । समिद्धिर्जलहत्तोत्यैभेशाय जुहुयाद्दुषः ॥११॥ मेशाय=नदात्राधिपतये । व्याज्येन चरुणा चैव तिलेश्च जुहुयात्तरः। पञ्चगच्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चलक् पञ्चपल्लवैः ॥१२॥ जलैरीपधकन्त्रेश सहितैः कलशादकैः भीवधकरकैः = सर्वोषधिकरकैः । श्रभिषेकं पञ्जवीत यजमाने पयत्नतः 118311 मन्त्रैर्वरुणदेवत्यैरापो हि छादिभिस्त्रिभिः इमं मे गङ्गे पितरस्तलायामीति मन्त्रकैः ॥१४॥ श्रभिषेके निष्टत्ते तु यजमानः समाहितः श्राचार्य पूजयेत्पश्चात् सुशान्ता नियतेन्द्रिय ॥१४॥ तस्मै दद्यात्मयत्रोन भक्तचा प्रतिकृतित्रयम् । दित्तिणाभिश्र संयुक्तं यथाशक्तचनुसारतः ॥१६॥ ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रणिपत्य समापयेत्। तेभ्योऽपि दिचाणां दद्यायजमानः समाहितः ॥१७॥ श्रनेन विधिना शान्ति कत्वा सम्यग्विशेषतः। श्रकालमृत्युशोकं च व्याविपीटा न चाप्तुयात् ॥१८॥ सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः। इत्थं प्रहराजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् ॥१६॥ कथितं भागवेणेदं शौनकाय महात्मने । इति चन्द्र-सूर्यग्रहणमस्तिशान्तिः।

HISH PRESENTED THE PROPERTY OF

अथ विषघटिकाशान्तिविधिः।

तत्र दुद्धगार्ग्यः—

विषनाडीषु सञ्जातः विद्य-भ्रात्-धनात्मनाम् । नाशकु द्विषशस्त्राद्यैः ऋरत्तरनेऽष्ट मेऽपि वा ॥ १ ॥ तद्दोषपरिहाराय शान्तिकर्म समारभेत रुद्रो यमे।ऽग्निम् त्युश्च देवताः परिकीर्तिताः ॥ २ ॥ मुवर्णेन यथाशक्तवा तत्तन्तत्तवासंयुताः । प्रतिमाः कारियत्वा तु स्राहकत्रोहिभिः स्थले ॥ ३ ॥ स्थिएडलं परिकल्प्याऽथ कुम्भमौषधिसंयुतम् । जलैः सम्पूर्य्य संस्थाप्य मृदादि प्रत्तिपेरातः ॥ ४ ॥ बस्रद्वयेन संवेष्ट्य पश्चरत्नानि नित्तिपेत् । कुम्भोपरि तु संस्थाप्य चतस्रः प्रतिमास्तथा ॥ ५ ॥ तत्तनमन्त्रीश्च सम्पूच्य गन्धपुष्पे।पहारकैः । कदुद्वायेति मन्त्रेरा यमाय सोममित्यथ ॥६॥ अप्रिर्मूर्द्धेति मन्त्रेण परं मृत्ये। इति त्वथ। एतेश्चतुर्भिर्मन्त्रेस्त क्रमादर्चेद्धुनेराथा ॥ ७॥ समिन्चरुष्टतद्रव्यैः पत्येकं च यथाक्रमम् । ऋत्विग्भिश्च सहाचार्यो हुनेदष्टसहस्रकम् ॥ ८॥ श्रष्टोत्तरशतं वाऽथ श्रष्टाविंशतिमेव वा । ततस्तिलौहुनेदेवांस्तरान्मन्त्रैश्च कल्पवित् ॥ ९ ॥ तताऽभिषञ्चयेदेनं मन्त्रैः पौराणिकैः क्रमात् । प्रार्थ्यता भगवानीशः पिनाकी सर्वतामुखः ॥१०॥ तव मूर्तिपदानेन समस्ताऽभीष्टदे भव । ईषत्पीना यमः काला दग्डहस्तः प्रशान्तधीः ॥११॥ रक्तद्दक् पाशभुत्कुष्णा महिषस्थः शिवं कुरुँ।

पिङ्गलरमश्रुकेशात्तः विङ्गालचतुरीहरणः ॥१२॥ छागस्थः सात्तसूत्रश्च सप्ताविः शक्तिधारकः। तव मृतिंपदानेन मम पापं विनाशस ॥१३॥ दंष्ट्राकरालवदना नीलाञ्जनसमाकृतिः । टक खड्ग-गदापाणिर्मृत्युमी पातु सर्वदा ॥१४॥ इत्थमेवं विधेर्मन्त्रैर्पथाविधिसमाहितः। गी-भू-हिरएय-वस्त्रैश्च आचार्य पूज्येत्सुधीः तारुप्र॥ पुर्व कुर्योत्भदानेन विषदेशः मशाम्यति ।

इति विषघटीशान्तिः ।

अथ भ-गएडान्तशान्तिः।

गर्भ-अश्विनी मघ मृलादौ त्रि वेद-नवनाहिका । रेवती सर्प-शकान्ते मास छद्र-रसाः कमात्॥१॥ श्रिविनी-मध मुलादौ नाडिका द्वितयं तथा। अश्विनी-मध-मूलानां पूर्वीर्द्धे बाध्यते पिता ॥ २ ॥ पूर्वादिसर्पपश्चार्द्धे जननी वाध्यते शिशोः ! पितृप्रथ दिवाजाता रात्रिकातस्तु मातृहा ॥ ३ ॥ अप्रत्महा सन्ध्ययोर्जाता नास्ति गएडे निरामयः । सर्वेषां गएडजातानां परित्यागो विश्रीयते ॥ 😵 ॥ विज्ञयेदर्शनं यावदर्षे पायमासिकं भवेत्। तस्य शान्ति प्रवश्यामि सेममन्त्रेण भक्तिमान् ॥ ॥॥ कांस्यपात्रं प्रकृतीत पत्तीः प्राडशभिनेत्रम् । अष्टभिश्र वत्भिश्र दाभ्यां वा शोभनं तथा ॥ ६॥ . तत्मध्ये पायसं शुःश्रं नवनीतेन पूरितम् 🗤 राजतै ः चन्द्रभचेतः सित्युष्यसहस्रकैः ॥ ५॥

देवज्ञः सौमवासाश्च शुक्रमान्याम्बरावितः।
सोमोऽहमिति सश्चिन्त्य पूजां कुर्यादतन्द्रितः॥ = ॥
जपैत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्दथानः समाहितः।
श्चाप्यायस्वेति मन्त्रेण पूजां कुर्यात्समाहितः॥ ६॥
दचाद्वे दिस्णामिष्टां गण्डदेषपशान्तये।
शुक्रं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम्॥१०॥
गण्डदेषिपशान्त्यर्थं दचाद्वेदविदे शुचिः।

इति भ-गएडान्तशान्तिः।

अथ दिनच्यादिशान्तिः।

गर्गः-दिनच्चये व्यतीपाते व्याघाते विष्टि-वैधृतौ ।

मुळे गराडेऽतिगराडे च परिघे यमघराटके ॥१॥

कालदराडे मृत्युयोगे दुष्ट्योगे सुद्दारुरो ।

तिस्मन् गराडदिने माप्ते प्रमुतिर्यदि जायते ॥२॥

श्रतिदेश्वकरी प्रोक्ता तत्र पापसुते सति ।

विचाय तत्र दैवहां शान्ति कृत्वा यथाविधि ॥३॥

यजमाना देवताना ग्रहारां चैव पूजनम् ।

दीपं शिवालये भवत्या घृतेन परिदापयेत् ॥ ॥॥

श्रमिषेकं शङ्करस्य श्रम्वत्थस्य पदिचाराम् ॥ ॥॥

श्रमिषेकं शङ्करस्य श्रम्वत्थस्य पदिचाराम् ॥ ॥॥

श्रमुद्देदिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशानम् ॥ ॥॥

गुरु दैवत-विमार्णा पूजनं गोश्व वद्धनम् ।

पुष्टचासुन्द्रष्टिशान्त्यर्थमभीष्टपालसिद्ध्ये ॥६॥

सर्वारिष्टहरार्थाय ग्रह्यशं समाचरेत्।

श्रिवाय विभिक्तसक्ताया दीपदानं करोति यः ॥ ७॥।

श्रावाय विभिक्तसक्ताया दीपदानं करोति यः ॥ ७॥।

श्रावाय विभिक्तसक्ताया दीपदानं करोति यः ॥ ७॥।

विष्णुमूर्तिं महापुण्यमश्वत्थं श्रीकरं सदा॥ = ॥

मद्त्तिणं नरे। भक्त्या कृत्वा मृत्युं जयेक्षरः ।

सर्वसम्पत्समृध्यर्थं नित्यं कन्याणहृद्ध्ये॥ ६॥

श्रभीष्ठफलसिध्यर्थं कुर्योद्द्वाह्मणभाजनम् ।

श्रभिषेकं शिवे शान्ति कृत्वा भक्त्या नरे।त्तमः ॥१०॥

श्रकालमृत्युं निर्क्तित्य दीर्घायुर्जायते नरः ।

गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युङ्घयं शुभम् ॥११॥

शान्तिजाप्यं कद्रनाप्यं कृत्वा मृत्युङ्घया भवेत् ।

मूले वा सर्पगण्डे वा कुर्यादेतानि यत्नतः ॥१२॥

श्रायुद्धदिकरार्थाय गण्डदे।पमशान्तये ।

हति गर्गोकगण्डजननशान्तिः ।

अथ त्रिकशान्तिः।

शान्तिसर्वस्वे---

मुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुता यदि ।
माता-पित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महद्भवेत् ॥ १ ॥
ज्येष्ठनाशो धने हानिदुःखं वा सुमहद्भवेत् ।
तत्र शान्ति मकुर्वति वित्तशाट्यविवर्णितः ॥ २ ॥
जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने ।
आचार्यमृत्विजो दृत्वा ग्रह्यक्षपुरःसरम् ॥ ३ ॥
सह वा ग्रह्यक्षः स्यात्स्वस्य वित्तानुसारतः ।
जन्न-विष्णु-महेशेन्द्रमतिमाः स्वर्णतः कृताः ॥ ४ ॥
पूजयेद्धान्यराशिस्थ — कलशोपरि शक्तितः ।
पश्चमे कलशो रुदं पूजयेद्वुद्रसङ्ख्या ॥ ४ ॥
रद्रमुक्तानि चत्वारि शान्तिस्कानि सर्वशः ।

द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिः समाहितः॥६॥
श्राचार्यो जुहुयात्तत्र सिवदाज्यित लांश्रहम्।
श्रष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा विंशति तु वा॥७॥
देवताभ्यश्रत्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम्।
श्रह्मादि-मन्त्रेरिन्द्रस्य यत इन्द्रभजामहे॥ =॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलि पूर्णाहुति ततः।
श्रभिषेकं कुडुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्य पपूज्येत्॥६॥
हिरएयं धेनुरेका च ऋत्वाऽऽचार्य पपूज्येत्॥६॥
प्रतिमा ग्रस्वे देया उपस्कारसमन्विताः॥१०॥
कांस्यास्य वीच्नणं दत्वा शान्तिपाठं तु कार्येत्।
श्राह्मणान् भोजयेच्छ्वन्त्या दीनानाथांश्र तपयेत्॥११॥
एषं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं विलीयते ।

इति त्रिकशान्तिः।

श्रथ प्रसववैकृतशान्तिविधिरुच्यते ।

श्रकालमसवा नार्यः कालातीतमजास्तथा । विकृतमसवाश्चैव युग्ममसवनास्तथा ॥१॥ श्रमानुषा श्रखण्डाश्च श्रजातव्यं जनास्तथा । श्रीनाङ्गा श्रधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥२॥ पश्चः पित्तणश्चैव तथैव च सरीस्रपाः । विनासं तस्य देहस्य कुलस्य च विनिर्द्दिशेत् ॥३॥ विचित्तस्येत्तां नृपतिः स्वराष्ट्रात्स्त्रयश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः। चिकित्सनैर्ज्ञाद्मणतप्रयोश्च ततोऽस्य शान्ति समुपैति पापम्॥४॥

अथ यमलशान्तिविधिः।

श्रत्र ब्राह्मणं तदाहुर्य श्राहितासिर्यस्य भार्या गीर्वा यमी जन-येत्का तत्र प्रायश्चित्तिरिति ? सोऽसये मरुत्वते त्रयोदशक्तपालं पुरो-डाशं निर्वपेत्तस्य याज्यानुवाक्ये मरुतो यस्य हि त्त्येरा इ वेद चरमा श्रहे वेत्याहुर्ति वाऽऽहवनीये ज्ञुहुयादसये मरुत्वते स्वाहेति सा तत्र प्रायश्चित्तिरिति ।

कारिका-श्रथ यस्य वधूर्गी वा जनयेच्चेद्यमी ततः। समरुद्भयक्षरं कुर्यात् पूर्णाद्वतिनथापि वा ॥ १ ॥ इति श्रथ प्रथमदिनादिषु देवीगृहीतवालकरक्तणम्।

मदनरत्ने योगसागरे-

प्रथमेऽहिन गृह्णाति वालकं वालिनी ग्रही । वालिनीस्थाने पाथिनीग्रहीति नारायणीये पाठः। गन्धिनीति गुणोत्तरे।

तया शृहीतमात्रस्य चेष्टितान्युपलत्त्वयेत् ।
गात्रो द्वे गोनिराहारो लालाग्रीवानिवर्तनम् ।
लिम्पेत धातकी-लेष्ट्र-मञ्जिष्ठा-ताल चन्दनैः ॥१॥
धूपयेन्महिषात्तेण ततो मुखति सा ग्रही ।
लेपनधूपने बालस्य नारायणीय बलिदानानुकृती—
मत्स्य-मास-मुरामक्य-गन्धा-ऽसक्-धूप-दीपकैः ।
बलि दद्यादिति शेषा।

यित्रमन्त्रः प्रयोगसारे—ॐ नमश्चामुएडे भगवति विद्युक्तिन्द्रे हाँ २ ही २ अपसरन्तु दुष्टग्रहा हुँ । तद्यथा—गण्डन्तु यातान्यतः स्थाने रुद्धो बापयति स्वाहा विद्युक्तित्वे हाँ ही हु हु सुन्ने सुन्न स्वाहति ।

बीलग्रहाणी विधेयं शस्ता बलिनिर्वेदने पितास रवेदवयेऽस्ते दिनाई वा देयः।

बिलस्थानानि प्रयोगसारे-

कद्म्बश्च करङ्ग्य विनीतो निम्ब एव च ।

श्चर्वत्थोद्भुम्बररचेव रहेष्मान्तक वटौ तथा ॥ १ ॥

मास्ट्रह्माः क्रमेणाक्ताः पूर्वादीशान्तदिग्गताः ।

तेषामेकं समाश्चित्य वर्लि द्याद्यथादितम् ॥ २ ॥

मतिस्यूलं मत्युदकं मतिट्रम्मथाऽपि वा ।

स्यूलम् = तटम्। ववचित्तु कुलमित्येव पाठः ।

श्रत्राशायामतुक्तायां प्राक्ष्मोक्तात्रानुसारतः ॥ ३ ॥ यत्र वा रेश्चते तत्र मातृष्णां वित्तमाहरेत् । कृत्वा नीराजनान्तं वित्तमिति विधिवद्वालमाहृय संस्पृश्या-ऽद्धिस्तत्सर्वगात्रं शिरस्ति सकुसुमैरखतैर्झामियत्वा । क्तिप्त्वाऽग्रे देवताया विधिवदुपहितैस्तत्र गीतैः सुमन्त्रैः

कुर्योद्रत्तां समीक्ष्य चरणिय विलयं याति दुष्ट्रप्रहातिः॥ नीराजनमन्त्रोद्धारो नारायणीये—

त्रह्मा विष्णुश्च स्द्रश्च स्कन्दे। वैश्रवणस्तया। रच्चन्तु त्वरितं वालं मुश्च मुश्च कुपारकम्॥१॥ कालगुणाचरे–

पलाशा-ऽश्वत्थ-कपित्थ-विन्वीदुम्बर्-पन्लवाः । प्रविभाषाः स्मृता हाते बालानां हितकारकाः ॥ २ ॥ स्नापितं भूषितं वालं तता सुरुवति सा ग्रही । प्रयोगसारेऽपि-

पताशोदुम्बरा-ऽश्वत्थ-विन्व-न्यग्रोध-पन्तवाः । इथितेन कपायेन परिषिञ्चेत्पशान्तये ॥ परिषिञ्चेत् =कावयेदिति मदनः। इथि मन्त्रः-ॐ नमञ्ज्यमुग्डे इत्यादिवैक्तिकाने पूर्वमुकः। रत्तामन्त्रः प्रयोगसारे---

रत्त रत्त महादेव ! नीलग्रीव ! जटाधर ! ग्रहेस्तु सहितो रत्त ग्रुश्च ग्रुश्च कुमारकम् ॥ १॥

श्रमुं मन्त्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे वश्नीयादिति मदनः। वालकशिखास्पर्शपूर्वकं जपे मन्त्र उक्तः प्रयोगसारे— के सर्वमातर इमं ग्रहं संहरन्तु हुरोदय २ स्फोटय २ स्वाहा २ गर्ज २ सर गृह २ श्रामह्य २ हिम २ हन । एवं सिद्धि रुद्रो झापयति स्वाहा । श्रत्र होमोऽपि प्रयोगसारे—ॐ कृष्माणिड भगवति ! सुरागिणि ! संमु- विडते ! मुश्च २ दह २ एच सर २ गच्छ स्वाहा २ ।

कृत्वा चतुष्पथे कुएडं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रविष् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सहस्रं जुहुयात्तिलैः ॥१॥ यात्ति दुष्टग्रहाः शान्ति बलिना चाऽतुमे।दिताः।

बालरोदनपरिहारार्थं यन्त्रमुक्तं प्रयोगसारे—पड्सं मध्ये हीं-कारस्तनमध्ये शिशोनीम विलिख्य पदसु श्रस्तेषु ॐ लुलुव स्वाहेति मन्त्रस्य पडचराणि विलिख्य तद्वहिनीमच द्वितयं विलिख्य तद्वि-हिरधोमुखैरर्द्धचन्द्रैरावेष्टच पञ्चोपचारैः सभ्पूच्य बालहस्ते बध्नी-यादिति ॥

अथ बालग्रहस्तवः । ---

प्रयोगसारे-प्रणम्य शिरसा शान्तं गरोशाऽनन्तमीरवरम्।
वालग्रहस्तवं वक्ष्ये समस्ताऽभ्युद्यपदम् ॥ १॥
तपसा यशसा दोप्त्या वपुषा विक्रमेश च।
निर्दिष्टो यः सदा स्कन्दः स ना देवः प्रसीदतुः ॥ २॥
रक्तमान्याम्बर्धरा रक्तगन्धानुष्ठेपनः ।
रक्तादित्योष्डवलः शान्तिः स ना देवः प्रसीदतु ॥ ३॥
यो नन्दनः पशुपतेर्मातृष्णां पावकस्य च।
गक्नोमाकृत्तिकानां च स ना देवः प्रसीदतु ॥ ३॥

देवसेनापरिव्रता देवसेनाऽर्चितः सदा। देवसेनापतिः श्रीमान् स ना देवः मसीदत् ॥ ॥ शक्तिः शक्तिथरापूरः कुमारः शिखिवाहनः। सुरारिहा महासेनः स ना देवः प्रसीदतु ॥ ६॥ प्रकृत्या सुन्दरे। दान्ता देवैश्वर्योदयान्वितः। नानाविनादसम्पन्नः स ना देवः पसीदतु ॥ ७॥ मबोधा सुमबोधा च बोधना सुमबोधना । पर्दुदाच प्रवेशा च सुपीता सुपनास्तथा॥ द्या। मनान्मनीति विख्याता योगिन्यः पान्तु बालकम् । सुत्रता रुक्मिणी चैव मन्द्वेगा विभीषणा॥६॥ विद्युज्जिहा महानासा शतानन्दा तथाऽपरा । बार्लदा प्रमदा चेति योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥१०॥ इरिंगी चाऽथ वाराही वानरी क्रोप्टकी तथा। कुवेरी केाटराची च कुम्भकर्णा च चिषडनी ॥११॥ बलाद्विकारिणी चेति योगिन्यः पान्तु बालकम्। शुद्धा विशुद्धा श्रद्धा च योगासिद्धा मितम्बदा ॥१२॥ सुभगा शुभदा गौरी बलाविकरिणीति च। नानाविज्ञानविख्याता योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥१३॥ लम्बा प्रलम्बा च तथा लम्बकर्णा च लम्बिका। ज्वालाकराली कालिन्दी कालिकेति यथोदिताः ॥१४॥ स्वरुद्धन्दाऽऽचारसम्बना योगिन्यः पानतु बालक्रम् ।ः प्रणीता सुप्रणीता च पालिनी विश्वपालिनी ॥१५॥ विमला कमला माली छाला रौद्री च विश्वदा । विचरन्त्यो यथा कार्मं ये।गिन्यः पान्तु वालकम् ॥१६॥ वायुवेगा महावेगा सुवेगा वेगवाहिनी।

शशिनी हंसिनी हृष्टिः पुष्टिः पौष्टिकसिद्धिदा ॥१७॥ ' दिव्यानुभावाबाहिन्यो योगिन्यः पान्तु बालकम् । भ्रमिनी भामिनी निरंवा निर्भिन्ना सुभगा गुहा ॥१८॥ क्रीदिनी द्राविणी वामा योगिन्यः पान्तु बालकम् । रुद्रशक्तिविनिष्क्रान्तमेकाशीति-क्रमोदितम् ॥१६॥ योगिनीष्टन्दमेतिद्ध सिद्धविद्याधराऽर्चितम्। स्कन्दग्रहाभिदेवं तद्वालकं पातु सर्वदा ॥२०॥ शङ्कनी रेवती देवी शिखा च मुखमण्डिका। प्रलम्बा पूतनारूया च कटपूतनिका पुनः ॥२१॥ ित्रिजया गे।मुखी घूम्रा मुख्डमाला तथाऽपरा । श्रधीलम्बा च पद्मा च कुमुदाऽप्यथ चाऽम्बिका ॥२२॥ भानिनी चैत्र काली च देनी मेत्रमुखी तथा। ऐन्द्री मार्जीरेका भूयः कुरुणी च शुभाक्रशा ॥२३॥ कालरात्रिश्च माया च छोहिता पिलिपिञ्चिका । भीतारणी चक्रवादा भीषणा दुर्ज्जवापरा ॥ २४॥ तापनी कटकोली च मुक्तकेशी महायला । श्रहङ्कारी जया तद्वदजमेषा त्रिदण्डिका ॥२५॥ ेरें(दनी मुकुटाभिख्या ललाटा पिङ्गला तथा। शीतला बालिनी चैव तापसी पापराज्ञसी ॥२६॥ . भानसा धनदा देवी वलानावर्त्तिनी तथा। 🗩 यमुनाः जातवेदाः च मानिनीः कलहंसिनी ॥२०॥ बालिका देवद्ती च वायसी यन्निणी तथा। स्वच्छन्दा पालिका चैव वासिनी चाम्बिकेति च॥२८॥ पंश्चाराचु कुळीत्पन्नाश्चतुष्पष्ठि समीरिताः । योगिन्या नित्यसन्तृष्टाः स्कन्दाऽगरमारदेवताः ॥२६॥

ं नानारचाधिकारस्था बालकं पान्तु सर्वेदा । महालक्ष्मीर्महातङ्गा महासेना महावला । हुवा। भहाकम्पा महाभीमा महातेजा महात्सवा । महासेना महाचएडा मोहिनी वीरनायका ॥३१॥ ्रपक्रवीरा विशालाची सुकेशी सुमनास्तथा। मुकेशिनी च सन्तुष्टा दण्डिनी च विलम्बिनी ॥३२॥ भामिनी चाऽथ सौवर्णी सिंहवक्त्रा कटङ्किनी । भ्रमरा चश्चला चम्पा सिद्धिदा च तथाऽपरा ॥३३॥ शातादरी पृतिः स्वाहा स्वधाख्या च सनातनी । शम्बरा च तथा देवी नीलग्रीवा तथाऽम्बिका ॥३४॥ वितत्ता गन्धिनी वामा क्रीडन्ती चैव वाहिनी। कर्षिणी मालती फुन्ला कालकर्णी च चरिडका ॥३५॥ चित्रानना गुहा चेति पार्वती सङ्गतिर्गता । पश्चाशत्रवसम्पन्ना शकुनी दैवतिमया ॥३६॥ यागिन्यः कामरूपिएया बालकं पान्तु सर्वदा। विश्वन्तवा प्रभावज्ञा सर्वज्ञा सर्वगा ग्रहा ॥३७॥ दुर्गा सरस्वती ज्येष्ठा श्रेष्ठा पद्मा पराऽपरा । ममदा राहिणी शीता मही महादिनी विभा ॥३८॥ 🖰 विभूतिर्विततिः 🦠 शीतिः 🏸 मक्ठतिममतिर्येथ 🗀 🍃 पता भगवता सृष्टा योगिन्यो योगसिद्धिदाः ॥३६॥ पश्चविशतिराख्याता रेवती शक्तिगादरा। जगदाप्यायनकराः बालकं पान्तु सर्वदा ॥४०॥ ्नन्दश्चैवे।पनन्दश्च गेामतिः सुमतिस्त्था । ः विद्युजिहो महाकालः करालस्तिमिळाचनः॥४१॥ ितेत्रहोडा विरूपाची गोप्रुखे। वडवाप्रुखः 🎏

कालानमः करालश्र शङ्ककर्णो विभीषणः ॥४२॥ एते शक्तुन्दनोत्पना चीराः पोडश**ास्**साः । पूतना देवता गुष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ॥४३॥ विजिएो शक्तिनी चाट्या दिखडनी खिन्ननी तथा । पाशिनी ध्वजिनी देवी गदिनी शुलिनी परा ॥४४॥ पविनी चक्रिणी चेति सर्वाकारा भयपदाः। एता दिङ्निर्मिता देव्या यागिन्या देवकीत्तिताः ॥४४॥ अधिभूतप्रधाना या पायात्सा शान्तपृतना। प्रसन्ता मातरः सर्वी वालकं पान्तु सर्वदा ॥४६॥ धर्थको जलको भूमा उग्रः स्कन्दश्र कीर्तितः। वीरेशाः पितृभिः सष्टा नैजमेषाधिदेवताः ॥४७॥ पश्चधाक्तिमधानास्ते बालकं पान्तु सर्वदा। श्चादित्या वसवा रुद्धाः पितरी मुरुतस्तथा ॥४८॥ **ग्र**नया मनवः काला ग्रहयोगाः सनातनाः । सिद्धाः साध्याश्र गन्धर्वा देव्यश्रा इप्सरसां वराः ॥४६॥ विद्याधरा महादैत्या बालकं पाम्ब सर्वदा। सहजा यागजा चैव वीरजा मन्त्रजा तथा ॥५०॥ योगिन्यो योगवनिता नानाविभवगोचराः। भवानी नाम सन्दृष्टा वालकं पान्तु सर्वदा राधशा भूर्लीके च भ्रुवर्लीके स्वर्लीके याश्र मातरः। 🏸 श्रमश्रोध्व च तिर्यक् च क्रीडन्त्योऽनन्तमूर्तयः ॥५२॥ असभयोगसम्बना दिन्यैश्वर्यसमन्विताः। स्वच्छन्दपदसम्भूतैर्भैरवैः परिवारिताः ॥५३॥ ्रमान्तु बालकं भीताः शान्तिर्भयतुः चेतसा । दिव्यं स्तोत्रमिदं पुण्यं वालरकाधिकारकम् ॥५४॥

जपेस्सन्तानरसार्थं बालद्रोहेापशान्तिदम् ॥ इति बालस्तवः ।

इदं च स्तवान्तं कृत्यमाद्यमासवर्षयोद्वितीयादि दिन-मास-वर्षेष्वपि कार्यं विशेषस्त्च्यते --कुमारतन्त्रे-प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा योगिनी तदा। व्यथवा नन्दिनी नाम्ना पूतनाऽऽक्रमते शिशुप्।। १ ॥ तद्दगृहीतस्य बालस्य ज्वरः स्यात्मथमं ततः । गात्रशोषश्च वैवएर्य नाऽऽहारेच्छा भृशं भवेत् ॥ २॥ द्धर्दि-मृच्र्डा च कम्पश्च हीनज्वरयुतस्तथा । विधानं तत्र वस्थामि येन मुश्राति पूतना ॥ ३ ॥ नदी मृत्तिकया क्वर्याच्छे।भनां पुत्रिकां ततः। शुक्रीदनं शुक्रगन्धस्तथा शुक्राऽनुकेवनम् ॥ ४ ॥ शक्कपुर्वाणि वै पञ्च ध्वजाः पञ्च पदीपिकाः। स्वस्तिकाः पश्चपूर्वाह्वे पूर्वस्यां दिशि संयतः॥ ५॥ द्घाद्या श्वेतसर्पपाशीरमेव वा शिवनिर्मान्य-मार्जीर-तृकेशानिम्बपत्रकम् ॥६॥ र्गच्यं घृतं चेत्येतेन धूपयेच्चैव बालकम् । एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे शान्तिवारिया।। ७॥ स्नापयेद्वालकं पश्चाद्वीजयेचापि भिन्नुकम् । न्तीरेण भोजयेदेव ग्रुस्था भवति बालकः ॥ दा।

शास्तिवारियोति शत्र इन्द्राप्ती शत्नो वात इत्यादिकैः स्व-स्व-शासापंडितेमैं औरमिमन्त्रितं वारि शान्तिवारि। अथवा वस्यमाण-मन्त्रेण शतकुरबोऽभिमन्त्रितं चारि शान्तिवारि॥ १॥

द्वितीयदिवसे सासे हायने ना सनन्दना ।
 गृह्वाति पूतना पालं ये।गिनी स्वस्तनाऽपि वा ॥ १॥
 ततो अवेडण्वरः पूर्व सङ्कोचे। इस्त-पादयोः।

दन्तान्मखादत्यनिशं निमीलयति चच्चुपी ॥ २ ॥ आहारं च न गृह्वाति दिवारात्रं च रोदिति। श्रिचरोगं छर्दनं च भवेद्भीतिः पुनः पुनः ॥३॥ कुशत्वं च मजायेत इत्येतिच्छश्चलत्तराम् । तराडुलप्रस्थिपष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम् ॥ ४॥ त्रयादशध्वजा दोषाः स्वस्तिकाय बलादना । प्रस्थप्रमारापिष्टेन सिद्धापूराश्च मत्स्यकाः ॥ ५ ॥ मांसं चेत्येतदखिलं पश्चिमायां दिशि चिपेत्। पश्चिमार्यां च सन्ध्यायामेतद्दद्याद्दिनत्रयम् ॥ ६॥ धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ॥ २ ॥ तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा पूतनाऽभिधा । गृह्वीयाद्योगिनी बालं ततः पूर्व ज्वरी भवेत्।। १।। प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां कारयेत्रतः । रक्तीदनं ध्वजा रक्तः स्वस्तिको रक्त एव च ॥२॥ रक्तपुष्पं रक्तगन्धस्तथा रक्ताऽनुळेपनम् पश्चिमायां च सन्ध्यायामुदीच्यां निच्चिपेद्वलिम् ॥ ३ ॥ धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनःनि च पूर्ववत् ॥ ३ ॥ चतुर्थेऽहिन मासे तु वर्षे गृह्णाति बालकम्। तुषमण्डनिका माम पूतना चाऽथ यागिनी ॥ १॥ भीषणाख्या ततस्तस्य जायते प्रथमं ज्वरः। गात्रभङ्गो स्थितिर्मुद्धी वैवएर्य चाऽचिमीलनम् ॥ २॥ वैकर्पं श्यामता श्वासः कासी रुचिरितिङ्गितम् । तिलिपिष्टमयैः कत्वा पुत्रिकां विज्वकएटकैः॥३॥ । अष्टाङ्गं रचयेत्पुष्प-युक्तं शुक्रध्वजे।ऽर्जुनः 🖙 स्वस्तिके।ऽर्द्रमस्थितादं भक्तं तावदपूरकाः ॥ ४॥

त्रिसन्ध्यं पश्चिमाऽऽशायां वर्ति दद्यास्प्रयस्नतः। ताब्रद्रष्पका इति श्रर्द्धप्रस्थपरमितेनाऽन्त्रेन कृता इत्यर्थः । ग्रोश्टकं सर्पनिर्मीकं लशुनं निम्बयत्रकम् ॥ ५ ॥ मनुष्यकेश∹मार्जार−छे।मान्याज−घृतं तथा एतैश्र धृपयेदेकनिशि सन्ध्यात्रयेऽपि च ॥६॥ एकनिशि एकस्मिन्नेव दिने बलिरित्यर्थः । शान्तिस्नानमन्त्रब्राह्मणुभोजनानि च पूर्ववत् ॥ ४ ॥ पश्चमे दिवसे मासे वर्षे वा पूतना शिशुम्। . विदालिकारूया गृह्वीयात्प्रथमं जायते ज्वरः ॥ **१**॥ हिका श्वासश्च शूलंच गात्रभक्को रुचिस्तथा। त्रण्डुलपस्थिषष्ट्रेन निर्मायाऽथारुपुत्रिकाम् ॥ २ ॥ शुक्लोदनं ध्वजाःपञ्च स्वस्तिकाः पञ्च चे।ज्ज्वलाः । ्र पञ्च दे।पास्त्रशुक्रानि कुसुमानि च चन्दनम् ॥ ३ ॥ श्चपराक्के दृत्तमूले पश्चिमायां दिशि त्तिपेत्। धूपस्तु गोश्टङ्गं लग्रनमित्यादिकः। शान्तिस्नानमन्त्रबाह्मणभोजनानि ॥ ४ ॥ षष्ठेऽहनि तथा मासे हायने चापि वालकम्। पूतना शक्कनीर्नाम गृह्वीयोत्तदनन्तरम् ॥ १ ॥ ज्वर उद्देजनं गात्रे शोषः श्वासीऽरुचिस्तथा। काशश्रहस्त-पादा-अन्निसङ्कोचश्चेति लन्नणम् ॥ २ ॥ त्तगडुल्तपस्थिषष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम्। कुष्णादनं ध्वजाः पश्च कृष्णाः स्वस्तिकपञ्चकम् ॥ ३॥ कृष्णमेवाऽथ मतस्यांश्च पायसं दुग्धमेव च । ः मांसं 🚬 चाऽपूपकास्त्वर्द्धप्रस्थिषष्टविनिर्मिताः ॥ ४ ॥ श्चपराह्ये पश्चिमायां निज्ञिपेद्धलिपुत्रिकाम् । पुत्रिकां पूर्ववत्कत्वा प्रलखं श्रूलपाचित्रम् ॥ ५ ॥

मत्स्याः पर्दिकाश्चैव रक्तं च मस्थसम्मितम् । उदीच्यां पूर्वसन्ध्यायां बलिर्देयः मशान्तये॥६॥ अत्र यलिदानयोविकल्पः । तयोरेव कालयोवीलकस्य श्रूपो देयः गोश्टङ्गलग्रनमित्यादिकः। तथा शान्तिस्तानं ब्राह्मणभोजनं च॥०॥ बलिदानपूजायां मन्त्रस्तु —ॐ फट् २ स्वाहा ।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा शुब्करेवती। गृह्याति पूतना वालंततः स्यात्मथमं ज्वरः ॥ १:॥ गात्रभक्तोऽय विद्वेष स्त्राहारे कम्परादने। इत्येतन्त्वत्तरणं तत्र बलिर्देयः प्रशान्तये ॥ ३ ॥ पस्थसम्मितविष्टेन सम्यक् कृत्वाऽथ पुत्रिकाम् । सप्त प्रजाः सप्त दीपाः स्वस्तिकाः सप्त वैतथा ॥ ३ ॥ पुष्पांखि मत्स्य-मांसं च भक्तं चेत्युदगाहरेत्। धूपस्तु गोभ्यक्कलशुनमित्यादिकः। शान्तिस्नानं ब्राह्मणुक्षोजनम्।

मन्त्रस्तु-ॐ हीं फट् स्वाहा ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे चाऽऽक्रमते शिशुम्। विडालिका नामधेया पूतनाऽस्य ततो ज्वरः ॥१॥ गात्रभेदोऽत्र रुदितं रोदनं नेत्रमीलनम्। जिहाशोषः शिरस्फोट आहारद्वेष एव च ॥ २॥ श्रक्तिरागो भवेदेतदिङ्गितं तद्दग्रहान्छिशोः। तरहुल्पस्थ(पष्टेन पुत्तलां कारयेत्रतः ॥ ३ ॥ पायसं मधु-सर्पिश्च चीर-लाजारच शष्कुली। गुरगुर्खं मेषमांसं च तथा पर्पटिका आपि ॥ ।।।। ध्वजा दोपारच चत्वारे। गन्धा नानाविधा श्रपि । स्रुमनांसि च रक्तानीत्येवं मन्त्रोदिता वितः ॥ ४ ॥ अमुं समाहरेत्पूर्व सन्त्यायां दक्षिणादिशि । कृष्णाश्यम्यां वृक्ष्यमाण्याननेत्रणाऽनेन स्यतः ॥ ६ ॥

ॐ नमो नारायणाय त्रैलोक्यविद्गावणाय । ॐ हीं फट् स्वाहा । श्रनेनेव च मन्त्रेण पूजादिवलिहरणान्तं कर्म कुर्यात् । धूपस्तु गोश्टङ्ग-लश्चनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च । श्रत्र रुष्णाष्टम्यां बलिहरणमिति न नियमार्थम् । किन्तु स्रति सम्भवे प्राशस्त्यार्थम् । श्रन्यथा तत्मतीचायां शिश्चविनाशापत्तेः ॥ = ॥

नवमे दिवसे मासे हायने वाऽिष वालकम्।

गृह्वाति मदना नाम्नी पूतना तदनन्तरम्॥१॥

व्वरश्व्वदिर्वणाऽऽध्मानं कास-श्वासश्च तृष्णता।

गात्रभङ्गश्च ग्रूलं च चिद्वान्येतानि वालके॥२॥

मस्थमात्रेण षिष्टेन विनिर्माय च पुत्रिकाम्।

श्रोदनं मत्स्य-मांसं च पर्पटी चेन्नुमृलिकाम्॥३॥

निचिषेत्पूर्वसन्ध्यायाम्रत्तरस्यां बर्लि दिशि।

अत्र मन्त्रः—ॐ नमी भगवते वासुदेवाय छब्बमण्डले बलिमा-दाय हर हुं फट् स्वाहा । धूपस्तु गोश्टङ्गलश्चनमित्यादिकः। शान्ति-स्नानं ब्राह्मणुभोजनं च ॥६॥

दशमे दिवसे मासे हायने वाऽथ वालकम्।
पूतना रेवती नाम्ना गृह्वीयाद्वालकं ततः ॥१॥
ण्वरः छदिः कास-श्वासौ ग्रूलं चेत्येतदीरितम्।
यत्र द्वेषश्च तत्राऽयं विलर्देयो विचन्नणैः ॥२॥
प्रस्थप्रमाणिष्टेन पुत्रिकां तत्र प्रकल्ययेत् ।
श्रष्टाङ्गं छेखयेत्तत्र विल्वद्वन्तस्य कएटकैः ॥३॥
गुडादनं च सर्विश्च ध्वजानां पश्चविंशतिः ।
स्वस्तिकानां पदीपानां पश्चविंशतिरेव च ॥४॥
चत्वारि रक्तपुष्पणि ह्येतहन्तिणदिग्गतः ।
सन्ध्यात्रये वक्ष्यमाण-मन्त्रेणाऽनेन निन्निपेत् ॥४॥

श्रत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हन५ हुं फट् स्बाहा । धूपो गोश्टङ्गलश्चनमित्यादिकः। शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥१०॥ प्कादशदिने मासे हायने पूतनाऽचिका

गृह्णाति बालकं पश्चाज्जवरस्तस्य प्रजायते ॥ १ ॥

श्रुश्चद्वेषो मुले शोषो गात्रभङ्गश्च रोदनम् ।

अध्वदृष्टिरपीत्येतन्त्वचर्णा तद्गृहाच्छिशोः ॥ २ ॥

पुत्रिका माषपिष्टेन रचित्वा सुक्रमोदनम् ।

पुष्पारयपि च सुक्रानि ध्वजानां पञ्चविंशतिः ॥ ३ ॥

स्वस्तिकानां पदीपानां पश्चविंशतिरेव च ।

प्तरप्तर्वे यमाशायां सन्ध्यायां प्रातराहरेत् ॥ ४ ॥

श्रुष्प मन्त्रः—ॐ नमो भगवते ताराय चन्द्रद्वास वज्रहस्ताय

ज्वल हुष्टग्रहाय ॐ पद स्वाहा । धूपस्तु-गोश्वललस्त्वमित्यादिकः ।

शान्तिस्नानं ब्राह्मस्यभोजनं च । प्रथमदिवस मास वर्षग्रहीतपुतनाहरोक्तं दृष्ट्यम् ॥ ११ ॥

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे या पूतना शिशुम्।
अद्भुताख्या प्रगृह्णाति ज्वरः स्थात्मथमं ततः ॥ १ ॥
रे।दनं सर्वदा दन्त-खादनं रक्तनेश्रता।
रे।माञ्चास्ताप इत्येतदिखलं तस्य लक्षणम् ॥ २ ॥
तण्डलप्रस्थिष्टेन कृत्वा तन्नाम पुत्रिकाम् ।
त्रयोदश स्वस्तिकाश्चा ध्वजा दीपास्त्रयोदश ॥ ३ ॥
त्रयोदश स्वस्तिकाश्चा ध्वजा दीपास्त्रयोदश ॥ ३ ॥
त्रपूपा मत्स्य-मांसं चा तथा पपटिका श्रपि ।
एतत्सर्व दक्षिणस्यां दिशि मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥ ४ ॥
मन्त्रस्तु—ॐ नमो नारायणाय ज्वल वज्रहस्ताय हर हर शोषय
२ मर्दय २ पात्रय हन हन दुष्टसत्वानां हुँ फट् स्वाहा । गोश्यक्षमित्यादिको धूपः । शान्तिस्नानं बाह्यस्यभोजनं च ॥ १२ ॥

अथ बौधायनोक्ता ज्वराद्युत्पत्ती शान्तयः।

मितपदि कष्टं सन्देहो वा दिनान्यष्टादश । श्रीसर्वेवता श्रीसर-स्मीति पूजामन्त्रः । हैमीप्रतिमा । घृत-धूपो घृत-दीपश्च । यथा- सम्भवं नैवेदां घृतं होमद्रव्यं शान्तिर्भवति । श्रत्र सर्वत्र प्रथमं तत्त-चिथिदेवतामन्त्रजपः। सहस्रादि-सङ्ख्याकः पश्चात्पूजा होमदानादि-होमसंख्या चाऽष्टोत्तरशतादिव्याधितारतम्येन कल्प्या । सहस्रां मृत्युनिर्देशः ॥ १ ॥ द्वितीयायां दिनानि षोडश ब्रह्मा देवता ब्रह्म-जज्ञानमिति जप-पूजा-होममन्त्रः । अगुरुधू पः घृतदीपः सवत्र शर्करानैवेद्यं तिल-यवा-ऽऽज्यानि होमद्रव्यं प्रतिमा च हैमी॥२॥ तृतीयायां दिनानि नवपार्वत।देवता गौरीर्मिमायेति मन्त्रः। दुर्वाभिः पूजा कुङ्कुम-धूपः । गुग्गुलुर्वा धूपो घृतदीपः । द्वाचा चीराऽऽज्य नैवेद्यम् । पायसं मधुराकं दूर्वाश्च होमद्रव्यं प्रतिमा हैमी॥३॥ चतुर्थ्या विनानि षोडशगणपतिर्देवता गणानान्त्वेति पूजा होमादि-मन्त्रः । हैमीप्रतिमा कुङ्कुमं रक्तचन्दनं गन्धः करवीरादीनि पुष्पाणि अगुरुधू पो घृतदीपो लड्डुका इत्तुखएडानि नैवेद्यं नारिकेर-शकलानि कदलीफलानि च होमद्रव्यम् ॥ ४॥ पश्चम्यां दिनान्येकः विश्वतिर्नागा देवताः हैमीप्रतिमा नमोऽस्तु सपेंभ्य इति मन्त्रः । चन्दनं गन्धः सुरभिषुष्पाणि घृत-धूपः पयो नैवेद्यं तिल-यवाऽऽज्य-पायस-शक्करा-मधुनि यथायोगं होमद्रव्यम् ॥ ४॥ षष्टश्यां दिनानि द्वादश स्कन्दो देवता द्रप्तश्च स्कन्देति पूजामन्त्रः । पीतं चन्दनं रकं वा गन्धः रक्तानि पुष्पाणि जातीपुष्पाणि वा । जटामांसी धूपः । लड्डुकादिनैवेदां फलानि वा तिल यवाऽऽज्यं होमद्रव्यं हैभीप्रतिमा शान्तिर्भवति ॥ ६ ॥ सप्तम्यां दिनान्यष्टी दिननाथो देवता । आस-त्येन श्राकृष्णेनेति वा मन्त्रः । हैमी ताम्रजा वा प्रतिमा कुङ्कुमं गन्धः करवीरादोनि पुष्पाणि गुग्गुलो धूपः शर्कराघृतसंयुतं पायसं नानाफलानि च नैवेद्यमर्कसमिधः पायसं होमद्रव्यम् ॥ ७ ॥

अष्टम्यां दिनानि त्रयोदश ईश्वरो देवता तमाशानमिति पूजा-मन्त्रः। राजती प्रतिमा कर्पूरमिश्रितं चन्दनं गन्धः विश्वदलानि सर्कपुष्पणि नालात्पलानि च पुष्पणि । जटामांसी धूपः पायसं नानाभन्नास्य नैवेद्यं मधुराकास्तिला होमद्रव्यं साङ्गशान्तिर्भवति ॥=॥ नवस्यां दिनान्यष्टादश भगवती दुर्गादेवता जातवेदस इति पूजा-मन्त्रः । हैमीप्रतिमा रक्तं चन्दनं गन्धः कुङ्कुमादिकं वा। जपा-कुसुमादिकं पुष्पं गुग्गुलुधू पः घृतपकं नैवेद्यं त्रिमधुराकं पायस्यं होमद्रव्यं देव्यं दिवनकपात्रदानं तद्भकाय वा॥ ६॥ दशस्यां दिनानि पञ्चिविश्वतिः यमो देवता हैमी लीही वा प्रतिमा यमाय त्वेति पूजा-मन्त्रः। चन्दनं सृगमदश्च गन्धः मधुसर्ज्जरसश्च धूपः तिलतैलदीपः। विल्वपत्राणि कृष्णतिलाश्च पूजाद्रव्यं क्रशरान्नं नैवेदां घृतं मधु-तिल-मुदुगा होमद्रव्यम् ॥ १० ॥ एकादश्यां दिनानि सप्त विश्वेदेवा देवता विश्वे देवास इति मन्त्रः हैमी प्रतिमा श्वेतचन्दनगन्धः कृष्णाऽगुरु-धू पः घृतदीपः तुलसीपत्राणि पूजायां यवमोदकं नैवेद्यं तिल-यव-म-ध्वाज्यं होमद्रव्यम् ॥ ११ ॥ द्वादश्यां दिनानि दश रुद्रो देवता या ते रुद्रेति मन्त्रः । हैमीप्रतिमा चन्दनं श्रीखएडं श्रगुरुधू पो घृतदीपः पा-यसं नैवेदां चम्पकं पुष्पं कमलं वा । पूजायां तिल-यवा-ऽऽल्य-ब्रीहि-मधूनि होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ १२ ॥ त्रयोदश्यां दिनान्यष्टी शशी देवता रीक्मी राजती वा मूर्तिः आप्यायस्वेति मन्त्रः। पूजादी श्वेतचन्दनं गन्धः चन्दनधूपः घृतदीपः। दधि-शर्करा-नैवेद्यं तिल-ययास्त्रिमध्वका होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ १३ ॥ चतुर्दश्यां दिनानि द्वाविंशतिः शम्भुदेवता शम्भवायेति मन्त्रः। रीक्मी राजती वा मूर्तिः श्वेतचन्दनं गन्धः, श्रकंपुष्पं विलवदलानि वा अगुरुधूपः पायसं नैवेद्यं त्रिमध्वकास्तिला होमद्रव्यम् ॥ १४ ॥

श्रमायां दिनान्यष्टादश शचीदेवता होता यत्तदिति मन्त्रः। हैमो प्रतिमा कुङ्कुमादि गन्धः नानासुगन्धपुष्पाणि हुल्लाऽगुरुधूपः फेलिका-पुरिकादिनैवेदां शर्कराष्ट्रतपायसं होमद्रव्यम् ॥१४॥

पूर्शिमायां विनानि पोडश चन्द्रो देवता दमनकं पूजार्थमन्यत्सर्वे त्रयोदशीशान्ताञ्चकं प्राह्मम् ॥ १६ ॥ इति दोषशान्तिः ।

श्रथाऽऽश्वलायनोक्ता वारशान्तिः।

आदित्यवारस्य रहो देवता या ते रहेति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः चन्दनं गन्धः अगुरुधू पः घृतदीपः पायसं नैवेदां होम-इस्यं च ॥ १ ॥

स्रोमवारस्य पार्वतीदेवता गीरीर्मिमायेति मन्त्रः हैमी राजती बा मूर्तिः कुङ्कुमगन्धः सुगन्धिपुष्पम् । अगुरुधूपः । घृतदीपः । नानाभृदयाणि नैवेधं तिलयमा होमद्रस्य देवभकसन्तर्पणं च ॥ २ ॥

भीमस्य स्कन्दो देवताऽन्यत्सर्व पष्टीशान्तिवत् ॥ ३ ॥

बुधवारस्य विष्णुर्देवता विष्णो रराटमसीति मन्त्रः । हैमं स्वरूपं पीतचन्दनं पीतपुष्पाणि कमलानि च अगुरुध् पो घृतदीयः यव-लड्डका नैवेदां तिल-यवा ऽऽज्यहोमः ॥ ४ ॥

गुरुवासरस्य ब्रह्मादेवता ब्रह्म जञ्जानमिति मन्त्रः । हैमी प्रतिमा कुङ्कुमगन्धः पर्णपुष्पं गुग्गुलुधू पः शर्कराऽऽज्यं नैवेद्यं तिल-यव-धाना घृतं होमद्रव्यम् ॥ ४॥

ग्रुकवासस्य इन्द्रो देवता त्रातारिमन्द्रिमिति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः चन्दनं गन्धः चम्पकं पुष्पं श्रगुरुधूपः घृतपक्वं नैवेद्यं तिल-यवाऽऽज्यं मधूनि होमद्रव्यम् ॥ ६॥

शनिवारस्य यमो देवता यमेन दत्तमिति मन्त्रः हैमी लौही वा मूर्तिः । ताम्रजेति केचित् । चन्दनगन्धः पुष्पं ऋष्णं मधु घूपः तिल-तैलदीपः । मधु-मत्स्याश्च नैवेद्यं तिला मधु च होमद्रव्यं सान्ति-भविति ॥ ७ ॥ इति वारशान्तयः ।

अथ नत्तत्रशान्तयः।

दृद्धविशष्टः-रोगशान्ति प्रवक्ष्यामि रोगार्त्तानां शरीरिखाम् । वितपूजाङ्गहोमैश्च जपब्राह्मणभोजनैः ॥ १ ॥ यस्मिन् धिष्एये यदा नृष्णं रोगः सञ्जायते तदा । तत्तदीश्वरतृष्ट्ये ।। २ ।। तद्धिष्णयपूजा कर्त्तेव्या ममारोन तद्धिंऽर्द्धेन वा पुनः। सुवर्णेन धिष्ययेशमतिमा कल्प्या यथावित्तानुसारतः॥३॥ ईशान्यामथवा पाच्यामुदीच्यां दिशि संलिखेत्। तराडुळापर्यष्टदलं पर्य गामयमराहळे पञ्चामृतैः सल्लेपेश्च तत्तनमन्त्रैः पृथक् पृथक् । स्नाप्य कल्पे।क्तमन्त्रेण मतिमां स्थापयेत्युनः ॥ ४॥ किंगिकायां सुसंस्थाप्य ध्यात्वा देवं समर्चयेत्। तद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यै रक्तधूपे।पहारकैः ॥ ६ ॥ आरक्तवर्णं कुम्भं च पञ्चत्वक् पन्तवेयुतम्।

शुक्रवस्त्र-स्वर्णरत्न-सर्वोषधि-समन्वतम् ॥ ७॥ मृत्वञ्च ग्वय-सद्दोज-फल-चौद्र-कुशान्वितम् । देवस्य पूर्वतः स्थाप्यं जलमन्त्रैः समर्चयेत्।। ८॥ पतीच्यां स्थिएडले विद्या विधिवतस्थापयेचातः। मुखान्ते जुहुयादुक्त-द्रव्येणाऽष्टसहस्रकम् ॥ ६॥ तिलहोमं व्याहृतिभिर्ष्टोशरसहस्रकृष् पूर्णाहुति च जुहुयात्सम्यक्-जपादिपूर्वकम् ॥१०॥ ततः शुद्धोपविष्टस्य रागियाः पाड्यखस्य च। मन्त्रपूर्तः कुम्भजलैरव्लिङ्गविरिमन्त्रकः ॥११॥ मार्जने कारयेशस्य सम्यक् सङ्कल्पपूर्वकम् । नीराजनं च शुद्धात्मा पूजास्थानं समागतः ॥१२॥ देवं हुताशनं भक्तया मसम्य मार्थयेदिति। श्रमृते। द्भवधिष्ययेश ! यतस्त्वं शङ्करात्मकः ॥१३॥ रोगादस्माच मां रत्न तव वश्यश्र विष्एयवः। इति मार्थ्यं ततो दद्यात्मतिमां वस्त्रसंयुताम् ॥१४॥ दित्तिणासहितां भक्तचा आचार्याय कुटुम्बने। बाह्यसाय यथाशक्तचा बाह्यसान भेजियेत्ततः॥१४॥ कृत्वा नचत्रपूजान्तं तिथिवासर्यारपि । सर्वान्कामानवामोति रोगी रोगात्मग्रुच्यते ॥१६॥ अश्विन्यामुस्थितो व्याधिनवरात्रेण मुख्रति । देवस्य त्वेति मन्त्रस्य गायत्री कश्यपे।अश्वनौ ॥१७॥ श्वेतवर्णी सुधापूर्ण-कलशाम्भाजधरी पृथक्। चन्द्रनेत्रवत्त-पुष्पा-ऽऽज्य-ग्रस्तुत्ती तु गुडिमियी ॥१८॥ चीर लंदहरभोकारी समिधः चीरहचनाः । प्रदेश्वनवित्तं दयादीपैः सार्द्धं निशास्त्रे ॥१९॥ (१)

भरगयामुस्थितो व्याधिरचिरात्रिधनपदः । मासेन मुखत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः ॥२०॥ जैयम्बकस्य मन्त्रस्य प्रोक्तारखन्द्षिदेवताः । गन्धोऽगरुकरवीरं पुष्पं घृपश्च गुग्गुलः ॥२१॥ अष्टदीपं च सर्वेषां नैवेषं च गुडौदनम् । पाशदयडघरो रक्तस्त्वाज्य-मध्वाचतेईविः ॥२२॥ ं महिपीनायकारूटः कुसराश्चं बर्लि हरेत् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बल्ति सम्यक् मदापयेत् ॥२३॥ (२) कृतिकासृत्थिता व्याधिद्शरात्रेण मुञ्चति । सुकु स्रवाभयवरदः स्ववर्णो मेषवाहनः ॥२४॥ मेथातिथिर्जगत्यग्री पुनन्तु मामित्यस्य च 📙 चन्दनं यथिकापुष्प-घृत-दीपः सुगुग्गुलुः ॥२५॥ ं नैवेर्द तिल्लमाषात्रं वरकात्रेन संयुत्स् । गुडे।दनं इविस्तत्र पायसेन बलि इरेत् ॥२६॥(३) रे।हिएयामुत्यितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति । नमा ब्रह्मणमन्त्रस्य गायत्रीविधिरीश्वरः ॥२७॥ शुक्राः कमगडलुस्त्वच-सूत्राभयवरपदः । चन्दनं कमलं पुष्पं सदशाङ्गं च गुग्गुलम् ॥२८।। - नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं सर्वदा तेहे विभवेद् । द्धि-चीर-छत-चौद्र-शाल्यक्रेन बर्लि हरेत् ॥२६॥ (४) चन्द्रभे चेास्थिता व्याधिः पञ्चरात्रेण सुञ्चति । 🤝 गदावरदपाखिश्र श्वेतो सौरथवाहनः ॥३०॥ नवे नवे भवत्यस्य मायत्री गौतमः शशी। चन्दनं क्रमुदं पुष्पं दशाङ्गं पायसादनम् ॥३१॥ ् नेष्ठेचं मण्डका-Sपूप-घृत-चौदसमन्वितम् ।

शर्करा-दक्षिपञ्जेण शुक्रानेन वर्ति हरेत् ॥३२॥(५) आद्वीयामुत्यितो व्याधिरचिरात्रिधनमदः मासेन मुक्रात्यथवा दैवस्य क्रुटिला गतिः ॥३३॥ शुद्ध स्फटिक सङ्काश-ग्रलखड्गाभयेष्टदः नमः शङ्करायेत्यस्य बृहतीशो विधी ऋषिः ॥३४॥ चन्दनं सौरभं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम् । सन्मध्वाष्ट्यं इविस्तत्र दध्योदनवर्ति हरेत् ॥३४॥(६) ्र पुनर्वसौ भवेद्दव्याधीनेवरात्रेण ग्रुञ्चति । कमण्डन्बन्तसुत्रेध्मदर्भासुक्सुवस्त् सदा ॥३६॥ श्रदितिर्धीश्र मन्त्रस्य त्रिष्टुभो द्वृहिर्णोऽदितिः। हरिद्रा-कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं सेवन्तिकाह्यम् ॥३०॥ धूपी मलयजं पिष्टं घृतान्नं पीतवर्णकम् । घृताक्ततपडुलहिनः पीताऽस्रेन बलिं हरेत् ।।३८।।(७) ं पुष्ये सम्रस्थितो च्याधिः सप्तरात्रेण मुश्चति । पीतो दगड-कमण्डन्वत्त - सूत्राभयवरोद्यतः ॥३६॥ बृहस्पते परीत्यस्य त्रिष्टुप् जीवोऽङ्गिरा ऋषिः। कुङ्कुमं वारिजं पुष्पं नैवेद्यं घृतपायसम् ॥४०॥ मर्डका-गुडमंयुक्तमेतदेव इविभवत् समग्रहक-घृताञ्चेन धलि तत्र मदापयेत् ॥४९॥(८) ् श्रारछेवास् त्थितो न्याधिः क्लेशान्मासेन सुञ्चति । नमो श्रस्त्वित मन्त्रस्य विराडग्निश्च सर्पराट् ॥४२॥ मधुवर्णी भोगयुक्तः खङ्गचर्मधरः शुभः सकुङ्कमाऽगरुर्गन्धपुष्पं चाऽगस्तिसम्भवम् ॥४३॥ घृत गुगाल-धूपोऽत्र नैवेद्यं चीर-सर्पिषा इविः साज्यं सुद्ध्यत्रं दृध्योदनवर्ति हरेत् ॥४४॥(६)

मघायां चोत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः । श्रथवा सार्द्धमासेन भूत्रो दग्डवित्रधृक् ॥४४॥ आयन्तु नस्त्विति चाऽस्य जगती पितरोत्तजः। चन्दनं चम्पकं पुष्पं भूपः सघृत गुगगुलः ॥४६॥ नैबेयं घृतिषष्टात्रं तिला^{ड्}यं सघृतं हविः । सतिलान्नं च ग्रुद्गान्नं वृक्तिं च पितृतुप्तये ॥४७॥(१०) पूर्वाफान्ग्रनभे न्याधिरर्द्धमासेन मुश्रति । भग एव भगवानित्यस्याऽनुष्दुप् भगो विधिः ॥४८॥ यथाऽभयकरः पद्म-वर्णः सिंहासने स्थितः। चन्दनं पालतीपुष्पं विन्व दीयो वृतोदनम् ॥४६॥ नैवेद्यं शर्करायथलहडुकाभिश्च संयुतम् । घृतोदनं इविस्तत्र पायसेन वर्लि हरेत् ॥५०॥ (११) ग्रयमर्चे भवेद्व्याधिरद्वमासेन ग्रञ्चति पद्मवर्णः पद्मसंस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥५१॥ श्चर्यमायाति मन्त्रस्य श्चर्यमा त्रिष्टुवज्वनः । कर्पूरं कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं धूपकसंज्ञकम् ॥५२॥ ृ वृत्तागुल-धूपे।ऽत्र नैवेदं घृतपायसम् होमद्रव्यं घृतांश्र्नं स्याच्छान्यन्नेन वर्लि हरेत् ॥५२॥(१२) इस्ते समुस्थिता ज्याधिनवरात्रेण मुञ्चति । उदुस्यमिति हिर्णयस्तुपे। गायत्र्याऽदितिर्जपेत् ॥५४॥ रक्तगन्धं कुल्कुमं च पुष्पं राजीवसंबद्धम् । स-गन्धगुगाुळो घूपे। नैवेद्यं घृतपायसम् ॥४४॥ मधुपुष्पं तिला-ऽऽज्या-मं दूर्वाभिः सहितं हविः। गुड-शकर-मध्वाज्यपिष्टाऽन्नेन वर्लि हरेत् ॥५६॥ (१३) चित्रायाम्रुत्थिता व्याधिर्दशस्त्रत्रेण मुञ्चति ।

चित्रं देवानामित्यस्य त्वष्टाऽनुब्दुष् वितामहः ॥५०॥
श्राच्यस्त्राभयकरिश्वनवर्णः शिवे रतः ।
स-कुङ्कुमाऽगरुर्गन्ध-कुम्रुमं चित्रवर्णकम् ॥५८॥
नैवेद्यं मोदकान्नाऽऽब्यं चित्राऽन्नं स-घृतं हविः ।
तदन्नेन वित्तं द्यात्सर्वरे।गापनुत्तये ।५६॥ (१४)
स्वात्यन्ते चे।त्थिते। व्याधिः सर्वदा निधनपदः ।
एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चामासैर्वाऽपि विमुञ्चति ॥६०॥
स नः पितेति मन्त्रस्य गायत्री मरुदङ्गिराः ।
खद्गचर्मधरः कुष्णा गन्धः कुष्णाऽगरुष्ट् शम् ॥६१॥
पुष्पं दमनकं धूषः चन्दनाऽगुरुगुगुनुः ।
नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविस्तेन वित्तं हरेत् ॥६२॥(१४)

्रिद्विस्म भवेद्वयाधिर्मासेनैकेन मुश्चित । इन्द्राग्री आगतमिति गायत्री वाऽस्य चैव हि ॥६३॥ मधुच्छन्द ऋषीन्द्राग्री तयोध्यानं चा पूर्ववत् । श्रीखण्डकुङ्कुमं गन्धं तयोः पुष्पं सरोक्हम् ॥६४॥ देवदाक्स्तयोधूपा नैवेद्यं छतपायसम् । तदेवाऽन्नं हविस्तत्र चित्राऽन्नेन विल हरेत् ॥६४॥ (१६) श्रित्रभे चेर्िश्यता व्याधिदशरात्रेण मुञ्चित ।

भित्रस्य चर्षणीरेति गायजी चाऽस्य चौव हि ॥६६॥
त्रष्टिषिहिरणयस्तूपारूयस्तत्र मित्रे।ऽधिदेवता ।
दिश्रजः पद्मगर्भाभः पद्मभृत् पद्मसंस्थितः ॥६७॥
कुङ्कुमं पुण्डरीकारूयं पुष्पं घूपं च चन्दनम् ।
नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविः कन्दं च सुरणम् ॥६८॥
(५) बिलस्तत्र भदातव्यो मञ्जु-शक्तर पायसम् ।
घृत-पूरक माचाऽन्नं सुद्गमभैत्र संयुत्तम् ॥६६॥(१७)

ज्येष्ठायामुत्थितो व्याधिर्मृत्युरेव न संशयः अथवा मासमेकं वा मुञ्चत्येव न संशयः ॥७०॥ इन्द्रं च इति मन्त्रेस्य गायत्रीन्द्रोऽङ्गिरा ऋषिः । इन्द्राय पूर्ववद्गन्धं च चन्दनं कुसुमं शुभम् ॥७१॥ कर्पूरधूपो नैवेद्यं चित्राऽन्नं सुमनोहरम् । इविस्तु सूरणं कन्दं मधु-कन्दं सुपायसम् ॥७२॥ विचित्र-पुष्पगन्धेन दध्यन्नेन वर्लि इरेत् । (१८) मृत्तभे चोत्थितो व्याधिर्मासाऽर्द्धेन विमुखति ॥७३॥ खङ्गचर्मधरः कृष्णः करालवदनः प्र**धः** । मोषुणोऽस्य च गायत्री घोरः कणवोऽय नैऋतिः। ७४॥ गन्धः कृष्णाऽगरुः पुष्पं पद्मं नीलोत्पलं श्रुभम् । धृपः कृष्णाऽगरुमीपमिश्रास्त्रपुपहारकम् ॥७५॥ तदेवाऽन्नं इविस्तत्र माषाऽन्नेव बलि इरेत् । (१६) वारिभे चोस्थितो व्याधि रोगिएो निधनप्रदः ॥७६॥ विम्रुअत्यथवा मासैद्वि-त्रि-षड्-नव-सप्तभिः । श्चाप्यायस्वेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो जलम् ॥७७॥ सुवर्णो द्विश्वजः पद्म-पाणिर्गन्धस्तु चन्दनम् । हिविर्मसुरिष्टात्रं तदन्नेन वर्ति हरेत् । (२०) विश्वभे चोत्थिता व्याधिः सार्द्धमासेन मुश्चति ॥७६॥ विश्वेदेवास इत्यस्य गायत्र्या विश्वदेवता । क्रमएडल्बभयाम्भोजवरदश्च क्रशासनः ।।८०॥ चन्दनं कमलं पुष्पं धूपं सप्ततः गुग्गुलुः। नैवेदं पायसाऽऽज्यानं हविरप्येतदेव हि । ८१॥ समिज्ञितिञ्जलैः सार्दे तदशेन वर्ति हरेत् । (२१)

श्रवणे चोत्थितो व्याधिर्देशरात्रेण मुश्रवित ॥द्धरा। श्रतो देवेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो इतिः । पीताम्बरः कृष्णवर्णः शङ्खचकगदाम्बुजः ॥⊏३॥ चन्दनं मालतीपुष्पं घूषः कपूरगुग्तः शाल्यतं षड्सोपेतं भक्ष्य-भोज्यादिभिः सह ॥८४॥ नैबेद्यं इविर्प्येतत्पायसेन बलिं इरेत् । (२२) ं, वसुभे चीत्थिती व्याधिर्दशरात्रीण सुश्चति ॥ ध्या। शपन्ताभिति मन्त्रास्याऽनुष्टुब् व्यासो वसुस्ततः । चाप-वाराधरः शुक्रमन्ध-कपूर-चान्दनम् ॥८६॥ वारितं गुगगुलुर्भूपा नैवेदं घृतपायसम्। इविश्रोदुम्बर-समिद्-गुढ-पायससंयुतम् ॥८७॥ सह्दुका-धृप-मध्वाज्य-तिस-पिष्ट्यसि हरेत् । (२३) े बाहरो चेात्थिता व्याधिरष्टरात्रेण मुश्चित ॥ 🖂 🗀 । इमं मे वरुण इत्यस्य गायत्री करववारियः। नाग-पाशधरः श्रीमान् वररत्नविभूषितः ॥ है।। मक्रस्था गुरुर्गन्थः पुरुषं च कमले।स्पलम् । कर्पूरं चन्दर्न भूपा नैवेद्यं घृतपे।लिका ॥६०॥ इबिरश्वत्थसमिधश्रित्राज्नेन वर्ति हरेत्। (२४) अजनान्त्रे भवेद्रव्याधिः सर्वदा निधनपदः ॥६१॥ अध्यवा बहुभिर्मासैदिवसैर्वा विसुश्रति। वामपादकरं भूम्यामाकाशे स्वपरद्वयम् ॥६२॥ प्रसार्य पाञ्जलिः सामादोष्यरं चिन्तयेत्स्थतः । श्रामग्रिरित्यस्याऽजवाद्गायत्रीचतुराननः ।।६३१। इक्टूमं चन्दनं गन्धे पुष्पं श्वेताकसम्भवस् । ं धूर्वः । शतीषधीषित्री जैयेयं दिव-पायसम् अध्या

हिनः कूष्माग्रह-गन्धः स्याद्दध्यन्नेन बर्लि हरेत् । (२४)
श्रृहिर्नुध्न्ये भवेद्द्व्याधिः साद्धमासेन मुश्र्वित ॥६४॥
नमस्ते रुद्र इत्यस्य सर्व तत्रैव संस्थितम् ।
गन्ध-चन्दन-कपूरैः पुष्पं पद्मोत्पत्तं शुभम् ॥६६॥
स-चिन्व-गुग्गुलु-धूपा नैवेद्यं घृतपायसम् ।
मुद्रग-माष-तिलान्नाच्य-यव-त्रीहिमयं हिनः ॥६७॥
पूषा च देवताम्भाज-वर्णो भाजधरं शुभम् ।
रक्तचन्दनगन्धे।ऽत्र पुष्पं मन्दार-संज्ञकम् ॥६८॥
धूपस्तु गुग्गुलुः साख्या नैवेद्यं घृतपायसम् ।
हिवस्तदेव स-जलं दध्यन्नेन वर्लि हरेत् ॥६६॥(२६)
भूतेशानुगता यसमाद्रागनाथमहाज्वरः ।
रोगादस्माच मां त्राहि त्वं गृहीत्वोत्तमं वित्तम् ॥१००॥

जन्मसन्धिषु नज्ञ-राशि-लग्नेषु यमध्यदेषु प्रत्यरेनैधनतार-केऽधमचन्द्रे रोगोत्पत्ती मृत्युः। रिव-मधा-द्वादशी-सोम-विशासका-दशीनां भीमा-ऽऽद्रां-पञ्चमीनां बुधात्तराषाढा तृतीयानां गुरु-शतिम-पक्षितां शकाऽश्विन्यधमीनां शिन-पूर्वाषाढा-नवमीनां च यागो सृत्युः। भर्षयञ्जराधा वा चन्द्रे, स्राद्रोत्तराषाढा वा सोमे, मधा शतिभव्या भीमे, श्राश्वनी विशासा बुधे, ज्येष्टा सगशिते वा गुरी, अवग सारतेषा वा भूगी, पूर्वाभाद्रपदा शनी चेन्सृत्युयोगः। स्रतोऽ-श्रोकाक्तिथ-वार-नज्ञशान्तयां विस्तृताः कार्याः।

भ्रथ तिथि-वार-र्नेषु साधारणः मयोगः--

मासपद्माद्युन्तिक्य ममोत्पन्नस्य व्याधेर्जीवच्छराराविरोधेन सम्मूलनाशार्थममुकनद्मनाऽमुकदेवताल्यं जपं करित्य इति सङ्ग्र-स्थाऽष्टशताष्ट्रसदस्ययुताऽन्यतमसंख्यया तत्तद्देवतामन्त्रस्य जपं कृष्याऽम्येन कारियत्वा वा मास-पद्माद्युन्तिल्य ममोत्यन्नव्याधेर्जीव-च्छरीराविरोधेन समूलनिवृत्तयेऽमुकशान्ति करिष्य इति सङ्गरूप्य । गर्मेशपूजा-ऽऽचार्यवरणान्तं कृत्वाऽऽचार्य पूजयेत् । तत आचार्यो मूमी तर्गदुतिश्चतुरस्रं मर्ग्यलं कृत्वा तत्र हैर्मी तत्तन्नद्मनदेवतां

वस्त्रद्वयपरिवृत्तां वस्यमागतत्तदुगन्धः धूपादिभिः पूजयेत् । तदी-शान्यां धान्ये कुम्भं संस्थाप्य जलेनाऽऽपूर्य्य गन्ध-सर्वोषधि-दूर्वा-पञ्जव-पञ्चत्वक् सप्तमृत्-फलं पञ्चरत्न-पञ्चगव्य-हिरएयानि तत्तनमन्त्रैः चिप्त्वा वस्त्रद्वयेनाऽऽवेष्ट्य सर्वे समुद्रा इति तत्र तीर्थान्याबाह्य तत्त्वा-यामीति तत्र वरुणमावाद्य सम्पूज्याऽग्नि महांश्च मतिष्ठाप्याऽऽज्यः भागान्ते तत्तन्न त्रत्रवतामन्त्रेण तत्तत्तद्भवयेण चाऽष्टोत्तरसहस्राः-ऽष्टोः त्तरशता-धार्विशत्यन्यतरसङ्ख्यया होमं कृत्वा शान्तिकलशेन यज-मानाऽभिषेके विहिते तां प्रतिमां रोगो ब्राह्मणाय दद्यात्। उक्तगन्धा-भावे चन्दनं पुष्पाभावे शतपत्रं धूपाभावे गुग्गुलुः । नैवेद्याभावे घृतो-दनम् । होमद्रव्याभावे तिलाः । मन्त्राविज्ञाने गायत्री अष्टोत्तरसहस्र मृत्युनिर्देशेऽष्टोत्तरशतमन्यत्र जुडुयात् । ततः कुशोदकैर्वरुषस्कैः पुराणमन्त्रेश्चाऽभिषेकं कुर्यात् । पूर्णांहुति वसोद्धारां च कत्वा शान्तिपाठं कृत्वाऽऽशिषं दयात् । अतः सर्वशान्तिर्भवति । तत श्राचार्याय सुवर्णपतिमां वस्त्रयुग्मेन वेष्टितां सवत्वां गां साऽलङ्कारां द्यात् । इतरेभ्योऽपि द्जिणां द्यादुवाहाणांश्च भोजयेत् । इति रोगो-त्पत्तिशान्तिप्रयोगः । मदनरत्ते-त्रिषु सर्वनज्ञत्रशान्तिषु गायत्र्या यमोद्देशेन होमोऽष्टसङ्ख्यः बलिश्च तत्तन्नन्नन्नदेवतायै सोऽपि होमावशिष्टद्रव्येण कचिद्न्येन । तच तत्र वस्यते । अत्र रोहिणी-पुष्या- ऽऽश्लेषा-पूर्वा-हस्त-स्वाती-विशाखा-ऽनुराधा-ज्येष्ठा-मूलीसरा-षाढा पूर्वामाद्रपदोत्तरामाद्रपदासु घृतमेव हामद्रव्यमनुराधावितरिप तेनैवाऽन्यत्र तु होमे वली च विशेषस्तत्र वस्यते । द्रव्ये तु विशेषो-ऽिवन्यादिकमेण दुग्धाकाः जीरवृज्ञसमिध्रो होमे दध्योदनं बली मध्वकास्तिलाः घृतं वध्योदनं च चीराश्चं वली ४ मुद्र-तिला-घृत-मञ्ज घृताका अक्षता ३ होमे गन्धं शाल्योदनं बली ॥७॥ गन्य माल्यो-दनं बली भिनायं बली ॥६॥ घृताका अज्ञत-तिला होमे । अक्षत-तिला बली ॥१०॥ गन्ध-पुष्पाणि बली ॥११॥ तिल-माषाः ॥१२॥ गन्ध्रपुष्पबली ॥१३॥ जलयुतं होमे॥ सञ्चता मुद्रा वलौ ॥१४॥ गन्ध-पुष्पाणि बलौ ॥१४॥ दुरघाकाऽस्र गन्ध माल्यानि वली ॥१६-१७॥ गन्ध माल्यं बली ॥१८॥ पायसं वली ॥१६॥ शालयो होमे । पायसं वली ॥२०॥ होमे पायसं बली ॥२१॥ बीजाऽज्ञता होमे ॥ गन्ध-पुष्पाणि बली ॥२२॥ अश्वत्यस-मिथो होमे । घृताकमुद्रुगा यली ॥२३॥ जल-पुष्पाणि होमे ॥ पायसं

बली ॥२४॥ गन्ध-माल्योदनं बली ॥२४॥ पकविंशतिः (२१) पकविंशतिः (२८) नव (६) दश (१०) मृत्यु (१०) विंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः (२७)। सत्त(९) श्रष्टौ(८) दश (१०) श्रष्टौ(८) अष्टौ(८) दश (१०) श्रष्टौ(८) अष्टौ(तः(२८) पकविंशतिः विंशतिः विंशतिः (२०)विंशतिः पञ्चविंशतिः (२४) विकल्पतः पञ्चत्रयोदशदिनमासाः द्वादश (१२) दश (१०) दश (१०) श्रष्टाविंशतिः (२८) दिनानि कमात्पोडा उन्ते सुलम्। श्राश्लेषा-मघा-पूर्वा-पूर्वाभाद्रपदासु पद्ये मृत्युरिं सम्भाव्यते ।

अथ प्रहणशान्तिः

मत्स्यप्रराणे-

होरायां ग्रस्यते यस्य नत्तत्रे वा निशाकरः। **पाणसन्देहमाप्नोति स वा मरणमृ**च्छति ॥ १ ॥ यस्याऽत्र जन्मनत्त्रत्रे ग्रस्येते शशि-भास्करौ तज्जनानां भवेत्पीडा ये जनाः शान्तिवर्जिताः॥२॥ यस्य राशि समासाद्य भवेद्वग्रहणसम्भवः तस्य स्नानं मवक्ष्यामि मन्त्रीपधिसमन्वितम् ॥३॥ चन्द्रोपरागे सम्प्राप्ते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् सम्पूड्य चतुरी विपान् शुक्कमान्याऽनुहेपनैः ॥ ४ ॥ समानीयौषधादिकम् पूर्वमेवोपरागस्य " स्थापयेचतुरः कुम्भानप्रतः सागरानिव गर्जा-ऽश्व-रथ्या-वन्मीक-सङ्गमाद्-हृद-गोकुलात् निचिपेत् राजद्वारपदेशाच्च मृदमानीय पश्चगव्यं पश्चरत्नं पश्चरवक् पश्चपल्लवम् रोचकं पद्मकं शहं कुङ्कमं रक्तचन्दनम् शुद्धस्फटिकतीर्थाम्बु-सितसर्पपगोकुलान् मधुकं देवदारं च विष्णुकान्तां शतावरीम् ॥ ८॥ वर्ता च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव व

एतत्सर्वे विनिच्चिष्य कुम्भेऽष्टाऽऽवाइयेत्सुरान् ॥ ६ ॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः द्यायान्तु यजमानस्य दुरितत्त्वयकारकाः ॥१०॥ योऽसौ वज्रधरो देव ब्यादित्यानां मञ्जूपतः । सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहवीडां व्यपोहतु ॥११॥ मुखं यः सर्वदेवानां सप्ताचिरमृतद्युतिः । चन्द्रोपरागसम्भूतां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१२॥ यः कर्मसाची लोकानां धर्मो महिषवाहनः । यमश्रन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीढां व्यपोहतु ॥१३॥ त्त्रोगसाधियः सात्ती नीलाञ्जनसममभः । खद्गहस्तोऽतिभीद्थ ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१४॥ नागपाश्रथरो देवः सदा मकरवाहनः । चन्द्रोपरामकलुपं बरुखो में व्यपोहतु ॥१५॥ प्राण्डियो हि लोकानां सदा कृष्णमृगिषयः । वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१६॥ योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गम्यूलगदाधरः चन्द्रोपरागदुरितं धनदो में व्यपोइतु ॥१७॥ योऽसाविन्दुधरा देवः विनाकी द्वपवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि निवारयतु शङ्करः ॥१८॥ त्रौलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्म-विष्एवके रुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् ॥१६॥ एवपावाहयेत् क्रम्भान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः । एतानेव तथा मन्त्राम् स्वर्णपट्टे विछेखयेत् ॥२०॥ ताम्रपट्टेड्यवा छेख्य नव्यवस्त्रे तथैवः च मस्तके यजमानस्य निद्ध्युस्ते द्विजोत्तमाः ॥२१॥

कलशान् द्रव्यसंयुक्तानानारूपसमन्वितान् गृहीत्वा स्थापयेद्गूढं भद्रपीठोपरि स्थितम् ॥२२॥ पूर्वोक्तरेव मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः । श्चभिषेकं ततः कुर्युर्भन्त्रीर्वरुणसूक्तकैः ॥२ ારિશા. ततः शुक्राम्बर्थरः शुक्रमान्याऽनुरुपनः श्राचार्यं वर्येत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेशयेत् ॥२४॥ श्राचार्यदिविणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः।.... गन्ध-मान्यै-धूप-दीपैः पूजये देवतृष्टये ાાયુષા होमं चैव पद्धवीत तिलैव्योहतिभिस्तथा निष्टत्ते ग्रहणे सर्वे ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ાારદાા दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् सूर्यप्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्व कीतयेत् ॥२०॥ चन्द्रपदस्थाने सर्वत्र सूर्यपदमूहनीयमित्यर्थः। श्चनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत्। न तस्य ग्रहरोो दोषः कदाचिदपि जायते ॥२८॥ श्रथ जलाशयवैकृतशान्तिः ।

गर्गः-नगरादुपसर्पन्ते समीप उपयान्ति च ।
नद्यो इदमस्रवणा विरसा वै भवन्ति च ॥ १॥
विवरणं कलुपं तप्तं फेनवज्जन्तुसङ्कलम् ।
चीरं स्नेहं ग्रुरां रक्तं वहन्ते व्याकुलोदकम् ॥ २॥
पणमासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं विदुः ।
जलाशया नदन्ते च पज्वलन्ति कथन्ति च ॥ ३॥
विग्रुश्चति तथा ब्रह्मन् ! ज्वाला धूमं रजांसि च।
प्रावाते वा जलोत्पत्तिः स-सत्त्वा वा जलाशयाः ॥ ४॥
सङ्गीतिशब्दा दृश्यन्ते जनमारभयं विदुः ।

दिव्यं महाभयं विद्धि मधुपात्राऽवसेचनम् ॥ ५॥ जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तेश्व होमो जले भवेत् । मध्त्राज्ययुक्तं परमात्रमत्र देयं द्विजानामयभोजनायम् । गावश्च देयाः सितवस्वयुक्तास्त्योदकुम्भाःसकलाश्च शास्त्ये ॥६॥ इति जलाश्यवैकृतशान्तिः ।

अथ वृष्टिवैकृतशान्तिः।

गर्गः---- त्रतिष्टष्टिरनाष्ट्रष्टिदुभित्तादौ भयं मतम् । श्चनृतौ तु दिवाऽनन्ता दृष्टिच्योधिभयाय तु ॥ १ ॥ श्चनश्चवैकृता मेघमन्तरे गर्ज्जितादयः । शीलोब्लानां विपर्यासे ऋतूनां रिपुजं भयम् ॥ २ ॥ शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत्। श्रक्नारपांशुवर्षेण नगरं तद्दिनश्यति॥३॥ मज्जा-ऽस्थि-स्नेह-मांसानां जनमारभयं भवेत्। फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणाऽतिभयाय तु ॥ ४ ॥ श्रांशु-जन्तूफलानां च वर्षता रागजं भयम्। छिद्रावात्र पवर्षेण सस्यानामीतिवद्धेनम् ॥ ५ ॥ विरजस्के रवौ व्यभ्ने यदा छाया न दृश्यते । दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशे भयं भवेत् ॥ ६॥ प्रतीपा = प्रतिकृताच्छाया, विपरीतछायैत्यथः। निरभ्ने वा तथा रात्री श्वेतं याम्यात्तरेख हु। इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उन्कापातं तथैव च ॥ ७॥ दिग्दाहा परिघानौ च गन्धर्वनगरं तथा। विन्दाहेशापद्रवमेव च ॥ ८॥ प्रचक्रभयं सुर्येन्दु-पर्कन्य-समीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद्दृद्विजेन्द्र !। धान्यानि गी-काञ्चन-दक्तिणाश्च देया द्विजानामघनाशहेताः ॥६॥ इति दृष्टि-वैकृतशान्तिः।

अथाऽग्निवैकृतशान्तिः।

गर्गः-अग्निः पदीप्यते यत्र राष्ट्रे भृशमनिन्धनः ॥ न दीष्यते वेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पोडयेन्तृप ! । ज्वलेदादेश वंशो वा तथाऽऽद्रीन्नं मृदः सुपा ॥ १ ॥ मासाद-तारणं द्वारं नृष-वेश्म सुरालयम्। प्तानि यत्र दहान्ते तत्र राजभयं बदेत्।।२॥ विद्युता वा पदहान्ते तत्राऽपि नृपतेर्भपम्। व्यनैशानि तर्गासि स्युविना पांशु रजांसि च ॥ ३॥ धूमश्राऽनिग्ने यत्र तत्र विद्यान्महाभयम् । तहिद्विनाऽभ्रं गगने भयं स्याद्दृष्टिवर्जिते ॥ ४॥ दिवा स-तारे गगने तथैव भयमादिशेत्। ग्रह-नत्तत्र-वैक्रत्ये ताराविकृतिदर्शने ॥ ४ ॥ पुत्रवाहनदारेषु चतुष्पदगृहेषु स्वभावाद्वाऽपि हीयेत घेतु-वत्सादिकं च यत्॥६॥ छे। हायुधविकारः स्यातत्र सङ्ग्राममादिशेत्। त्रिरात्रोपाषितस्तत्र पुरोधाः सुसमाहितः॥७॥ समिद्धिरर्फेटनाणां सर्षपेश्व घृतेन च। होमं कुर्याद्गिनमन्त्रैर्ज्ञाह्मणांश्चीव भेजियेत्।। 🖘।। दद्यात्सवर्ण च तथा द्विजे भ्या गारचैव वस्नाणि तथा भुवं च । प्वं कृते तत्समुपैति नाशं यदग्निवैक्कत्यभयं द्विजेन्द्र ! ॥६॥

इत्यग्निवैद्धत्यशान्तिः।

श्रथ प्रतिमादिवैकृत्यशान्तिः।

गर्गः देवताद्याः मनुत्यन्ति वेपन्ते मज्वलन्ति वा । आरदिनत च रोदन्ति मस्विद्यन्ति इसन्ति च ॥१॥ उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति रमन्ति चै।

भजन्ति विकृतिं भूम्ना मानुषाणां भयावहाः ॥ २॥

प्रवाङ्गुखावतिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च।

वमन्त्यग्नि तथा धूमं स्नेहरक्ते तथा वसाम् ॥ ३॥

एवमादीनि दृश्यन्ते विकाराः सहजोत्थिताः ।

लिङ्गायतनिवेत्रेषु तत्र वासं न रोचयेत् ॥ ४॥

राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति ।

देवयात्रामु चोत्पातान् दृष्टा देशभयं वदेत् ॥ ४॥

देवयात्रामु चोत्पातान् दृष्टा देशभयं वदेत् ॥ ४॥

देवयात्रामु चोत्पातान् तत्र वासं न रोचयेत् ।

पश्चनां सहस्रधर्मेण तत्र वासं न रोचयेत् ।

पश्चनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥ ६॥

रुद्रजम्=रुद्रप्रतिमास्त्पन्नं वैद्यत्यं पश्चभयदिमत्यर्थः। पर्वं सर्वं
शाऽपि कात्रव्यम्।

होयं सेनापतीनां च यत्स्यात्स्कन्द्विशाखजम् ।
लोकानां विश्वविस्वन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥ ७ ॥
विनायकोद्भवं होयं गणानां सेवकाय च ।
देवदूते च याः पेष्याः देवस्तीषु नृपस्त्रियः ॥ ८ ॥
वामुदेवेषु विह्नेयं गृहाणामेव नाऽन्यथा ।
देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥ ६ ॥
देवताऽर्चा तु गत्वा वै स्नातामाच्छाद्य भूषयेत् ।
पूजयेतां महाभाग ! गन्ध-माल्या-ऽन्नसम्पदा ॥१०॥
मधुवर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम् ।
तिद्वाङ्गेण च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ॥११॥
पुरोधा जुहुयाद्वहौ सप्तरात्रमतिद्वतः ।
विमाश्च पूज्या मधुरान्नपाजैः सन्दित्तिणैः सप्तदिनं नरेन्द्र ! ।
शाप्तेऽष्टमेऽहि चिति-गो-पदानैःसकाञ्चनैःशान्तिमुपैति पापम्॥१२॥

इरबद्धतशान्तिषु देवताप्रतिमा-वैकृत्यशान्तिः।

अथाऽऽकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः

गर्गः--प्रासाद-तोर्ग्णा-ऽहाल-द्वार-प्राकार-वेश्मनाम् श्रनिमित्तं तु पतनं दृढ(नां राजमृत्यवे ।। १।। रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः श्रादित्यश्रन्द्रतारोश्र विवर्णाभयदृद्धये ॥२॥ रात्तमा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः ऋ नवश्च विपर्यस्ता श्रपूज्यं पूजयेज्जनः ॥३॥ नत्तत्राणि वियोगोनि तन्महद्भयतत्त्रणम् केतृदयोपरागौ च छिद्रं वा शशि सूर्ययोः ग्रहर्नेविकृतियेत्र तत्राऽपि भयमादिशेत् स्त्रियथ कलहायन्ते वाला निघ्नन्ति बालकान् ॥ ४ ॥ क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र दृश्यते। श्रग्निर्यत्र न दृश्येत हृयमाने।ऽथ शाम्यति ॥ ६ ॥ क्रव्यादा वायसा वाहा यान्ति चे।त्तरतस्तथा। पूर्णेक्रम्भाः स्रवन्ते च वहया वा विद्यम्पते ॥ ७॥ मङ्गरूयध्वनया यत्र न श्रयन्ते समं ततः। त्त्वथुर्बाधते वाध्य मोत्साहे सित निन्दिताः॥ = ॥ न दैवतेषु वर्तन्ते यथा ब्रह्महरोषु च। मन्द्रघे।पाणि वाद्यानि वाद्यन्ते वि-स्वराणि च ॥ ६ ॥ गुरु-मित्र-द्विषे। यत्र शत्रुषुपारताः सदा। बाह्मणान् सुहृदे।ऽमात्यान् जने। यत्राऽवमन्यते ॥१०॥ शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र मन्यते। राजा वा स्त्रियते तत्राज्यवा देशो विनश्यति ॥११॥ राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निवेश्य मे। बाह्मणाम् मथमं द्वेष्टि बाह्मणांश्र विनिन्दति ॥१२॥

ब्राह्मणस्वानि चाऽऽदत्ते ब्राह्मणांश्व जिघांसति ।
नैतान् स्मरति कृत्येषु योऽन्वितश्चात्यस्यति ॥१३॥
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाऽभिनन्दति ।
श्रपूर्वे तु करं लेभात्तथा पातयते जने ॥१४॥
एतेष्वभ्यर्चयेत्सम्यक् सपत्नीकान् द्विजे।त्तमान् ।
भोज्यानि चैव कर्ज्ञिया सुराणां वलयस्तथा ॥१४॥
गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्या भुवं तथा काञ्चनमम्बराणि ।
होमं च कुर्याद् द्विजपूजन च एवं कृते शान्तिसुपैति पापम् ॥
श्रद्धते तु समुत्पन्ने यदि दृष्टिः प्रजायते ।
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमञ्चतं विफलं हि तत् ॥१७॥
इत्याकस्मिकपासादपतनादिशान्तिः ।

अथ वृत्त्विकारशान्तिः।

गर्भः-रुद्दता व्याधिरभ्येति इसता देशविश्रवः।
शाखाप्रवतने कुर्यात्मङ्ग्रामं योधवातनम्।।१॥
बालानां मरणं कुर्याद्वालानां फलपुष्वतः।
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्वमनात्त्रेवम्॥२॥
चीरं सर्वत्र गम्भीर-स्नेहं दुर्भित्तलज्ञणम्।
वाहनाऽपचयं मद्यो रक्ते सङ्ग्राममादिशेत्॥३॥
मधुस्नावे भवेद्वयाधिर्जलस्नावे च वर्षति।
अरोगशोषणं शेयं ब्रह्मन्! दुर्भित्तलज्ञणम्॥४॥
शुष्केषु सम्परोहत्सु वीर्यमन्तं च हीयते।
वत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत्॥४॥
स्थानात्स्थाने तु गमने देशभद्गं तथाऽऽदिशेत्।
अन्येषु चैव हत्तेषु हत्तोत्यातेष्वतन्द्रिनः ॥६॥
आन्येषु चैव हत्तेषु हत्तोत्यातेष्वतन्द्रिनः ॥६॥

हत्तोपरि तथा छत्रं कुर्यात्वापप्रशान्तये ॥ ७॥ शिवमभ्यर्चयेदेवं पशुं चाऽस्मै निवेदयेत् । मुळेभ्य इति हत्तेषु हुत्वा रुद्रं जपेसतः ॥ ८॥ मध्याज्ययुक्तेन तु धायसेन सम्पूज्य विमाश्च भ्रवं च दद्यात् । गीतेन हृत्येन तथाऽर्चयेत्तं देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥६॥

इति वृत्त्वोत्पात्तशान्तिः ।

अर्थोत्पातशान्तिः।

नारदसंहितायां चतुःह्विशेऽध्याये---

्बत्पाता विविधा लोके दिव्य-भौगाऽन्तरित्तगाः । तजा न मानि तां शान्ति सम्यक् वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥१॥ ्देवताद्याः प्रमृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति वा । मुहुर्गायन्ति रोदन्ति पश्चियन्ति इसन्ति च ॥२॥ वमन्त्यमि तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलाम्। श्रधी मुखं तु तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं त्रजन्ति वा ॥ ३ ॥ 🤙 ेषुवमाद्याव दश्यन्ते विकाराः मतिमादिषु 🎼 गन्धर्वनगरं चैव दिवा-नत्तत्रदर्शनम् ॥४॥ महे।च्कापतनं कष्टं नृष्णां रक्तपवर्षणम् गान्धर्वगेहं दिग्दाहं भूमिकम्पं दिवा निश्चि ॥ ५॥ अनमी च स्युरलिङ्गाः स्युर्ज्वलनं च विनेन्धनम्। निशीन्द्रचापं मण्डूकशिखरे श्वेतवायसम् ॥६॥ दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गा ये मो-गजाऽश्वोष्ट्रगास्ततः । जन्तवा द्वि-त्रि-शिरसा जायन्ते चाऽवियानिषु ॥ ७॥ प्रतिसूर्यात्र तिसृषु स्युर्दिन्तु युगपद्रवेः । जम्बूको प्रापसंवेशः केत्नां च पदर्शनम् ॥८॥

काकानामाकुलं रात्री कपोतानां दिवा यदि । एवयेते महोत्पाता बहवः स्थाननाशकाः ॥ ६॥ केचिन्मृत्युपदा केचिच्छत्रुभ्यश्र भयपदाः । देवालये स्वगेहे वा ऐशान्यां पूर्वतोऽपि वा ॥१०॥ कुण्डं लत्तणसंयुक्तं कल्पयेन्मेखलायुतम् युद्योक्तविधिना तत्र स्थापयेच हुताशनम् ॥११॥ जुहुयादाङ्यभागान्तमथवाऽष्टोशारं यत इन्द्र भयामहे स्वस्ति येन च मन्त्रकः ॥१२॥ समिदाज्य-चरु-ब्रोहि-तिलैव्यहितिभस्ततः कोटिहोमं तदर्खे वा लचहोममथायुतम् यथावित्तानुसारेण पादहोनमथापि वा । एकविंशतिरात्रं वा पत्तं पत्ताद्धीन वा ॥१४॥ त्रिरात्रमेकरात्रं वा होमकर्म समाचरेत । गरोश-त्तेत्रपाला-ऽर्क-दुर्गाख्या श्रह्नदेवताः ॥१५॥ तासां मीत्ये जपः कार्यः शेषं पूर्ववदाचरेत्। ऋत्विग्भ्या दिचाणां दचाइ वे।डशेभ्यः स्वशक्तितः ॥१६॥ इति नाने।त्पातशान्तिः।

श्रथ पल्लीसरटशान्तिः।

द्वर्गरी:-पन्न्याः प्रपातस्य फलं सरदस्य तथैव च । शोर्षे राज्यं श्रियः प्राप्तिभीन्छे चैश्वर्यवर्द्धनम् ॥१॥ कर्णयोर्भूषणावाप्ति-नेत्रयोर्बन्धुदर्शनम् । नासिकायां त सौभाग्यं वक् त्रे मिष्टात्रभोजनम् ॥२॥ कर्णदे नित्यं प्रियाऽऽश्लेषः स्कन्दयोर्विजये। ध्रुवम् । धनलाभा बाहुपुग्ने करयोर्प्यसंत्त्यः ॥३॥ जङ्कयोश्च निक्योगः पादयोश्च मर्णं भवेत् ।

एवं पन्याः मपातस्य फलं क्षेयं विचन्नर्णैः ॥ ४॥ एतदेव फलं विन्धाच्छरटस्य परीहरो परस्याः प्रपातने चैव सरटस्य प्रपातने ॥ ४ ॥ पश्चरात्रं भवेत्रास्य व्याधिपीटा विशेषतः । पतनाऽनन्तरं तस्य रेाहरां यदि जायते ॥६॥ पतने फलग्रुत्कृष्टं रे।इरो।ऽन्यफलं भवेत् । आरोहणं चे।ध्वेवक्रे अधो वक्त्रे निपातनम् ॥७॥ भवेद्यदि मुशीघ्रेण तत्फलं जायते ध्रुवम् । मृत्युयोगे दम्धदिने पाते च यमवएटके ॥ =॥ चन्द्राऽष्टमे नैधने च जन्मर्ते विषनादिके । कर्रलग्ने कर्युते करेण च निरीचिते ॥ ६॥ मष्टमेते कर्रयुते विष्टि-वैधृतिसंयुते । दुर्निभित्ते तयोः पाते निधनं जायते ध्रुवम् ॥१०॥ तयोः स्पर्शनमात्रेण सचैलं स्नानमाचारेत् । गन्यं पञ्चाविधं माश्य कुर्यादाज्याऽवलेकिनम् ॥११॥ शस्ते बाऽप्यथवाऽशस्ते यदीच्छेदात्मनः शुभम् । प्रयगहं वाचायित्वा तु शान्तिकर्म तत्रशारेत्।।१२॥ मतिरूपं तयाः कुर्यात्मुवर्णेन स्वशक्तितः । रक्तवस्रोण सम्बेष्टच गन्ध-पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥१३॥ कलशे बस्रयुग्मेन पूजयेद्विधिना ततः । अप्रिसंस्थापनं कृत्वा होमं कुर्याद्विधानतः ॥१४॥ मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण समिद्धिः खादिरैः शुभैः। तिलैव्योहृतिहोमं च अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १५॥ महान्याहृतिहोमं च सर्विः चीरेण कारयेत् । अभिषेक ततः कुर्याद्यजमानस्य मुर्द्धनि ॥१६॥ ٦X

पुण्यैर्वारुणसुक्तैश्च द्यौः शान्तादिकमन्त्रकैः । इत्थं मन्त्रविधानेन यः कुर्याच्छान्तिमुक्तमम् ॥१७॥ तस्याऽऽयुर्विजयो लक्ष्मीः कीर्तिः प्रष्टिश्च जायते । इति पन्यादिपतनशान्तिः ।

अथ श्रामारएयादिशान्तिः।

गर्गः-प्रविशन्ति यदा ग्राममारएया मृमपत्तिणः । श्ररपर्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जले। द्ववाः॥१॥ स्थलजा वा जलं यान्ति घोरं वा सन्ति निर्भयाः। राजद्वारे पुरद्वारे शिवाश्राप्यशिवपदाः ॥२॥ दिवा रात्रिश्चरा वाऽपि रात्री वाऽपि दिवाचराः। ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं वा तच्चोत्पातस्य निर्दिशेत् ॥ ३ ॥ उत्पातस्य लच्चगमिति शेषः। दीप्ता वा सन्ति सन्ध्यामु मण्डलानि च क्रुवेते । वासन्ते विस्तरं यत्र तदा मेतफलं लभेत् ॥ ४॥ पदोषे क्रुक्कुटो वासेद्धेमन्ते वाऽपि कोकिलः । अर्कोद्येऽकाभिमुखस्तदाऽमात्यभयं बदेत् ॥ ४ ॥ गृहे कपोतः प्रविशेत् क्रव्याद्य नुविलीयते मधु वा मित्रकाः कुर्यान्मृत्युर्ग्रहपतेर्भवेत् ॥ ६॥ प्राकार-द्वार-गेहेषु तोरखा-ऽऽपख-वीथिषु 🕩 🦥 केतुच्छत्रायुवाग्रेषु क्रव्यात्संश्रयते यदि ॥७॥ जायते वाध्य वन्मीको मधु वा दृश्यते यदि । स देशो नाशमायाति राजा च च्रियते तदा ॥ = ॥ मृषिकाः शलभान दृष्टा मभूतं जुद्धयं वहेत् 🍴 काष्ट्रीन्युकाऽस्थिशृह्मास्याऽश्वानो मरकवेदिनः ॥ ६॥

दुर्भित्तवेदिनो होयाः काकाधान्यज्ञुपे यदि।
जनाग्नभिभवन्तश्च निर्भया रणवेदिनः ॥१०॥
काको मैथुनयुक्तश्चेत् श्वेतः स यदि दृश्यते ।
राजा च श्रियते तत्र तदा देशो विनश्यति ॥११॥
उलुको वासते यत्र निपतेदा गृहे यदि ।
होयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्त्रथैव च ॥१२॥
वासते=शब्दं करोति ।
मगपन्निविकारेष कर्याद्रोमं सदन्तिणम् ।

मृगपित्तविकारेषु कुर्याद्धोमं सदित्तिणम् ।
देवाः कपोत इति च जप्तव्यं पश्चभिद्दिनैः ॥१३॥
मुदेव इति वैकेन देया गावस्तु दित्तिणा ।
जपेच्छाकुनसूक्तं च नमो वेदशिरांसि च ॥१४॥
देवाः कपोत इत्यादयो मन्त्रा ऋग्वेदे प्रसिद्धाः । नमो नमो
महायो नम इति । वेदशिरांसि उपनिषदः ।

गावश्च देया विधिवद्द्विजानां सकाश्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः। एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैद्विजविऽिप निवेदितं यत् १५ इति ग्राम्यारएयादिशान्तिः ।

अथ कपोतशान्तिः।

नारदः - आरोह्येद्गृहं यस्य कपोतो वा प्रवेश्येत् ।
स्थानहानिभवेत्तस्य यद्वाऽनर्थपरम्परा ॥ १ ॥
दोषाय धनिनां गेहे दरिद्वाय शिवाय च ।
तस्य शान्तिश्च कर्त्तव्या जपहोमविधानतः ॥ २ ॥
श्राह्मणान वर्यत्तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
पोडशाद्वादशाष्ट्रौ वा श्रौतस्मार्चिक्रयापराः ॥ ३ ॥
देवाः कपोत इत्यादि-ऋचाभिः पञ्चभिजपम् ।
तसं कृत्वा मयत्नेन स्व-गृह्योक्तविधानतः ॥ ४ ॥

ऐशान्यां स्थापयेद्वितं मुखान्तेऽष्टोत्तरं शतम् ।
प्रत्येकं समिदाच्यान्नेः प्रतिप्रणवपूर्वकम् ॥४॥
मुखान्ते श्र= न्निमुखान्ते ।
यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदेति त्रियम्बकैः ।
त्रिभिर्मन्त्रेश्च जुहुयाचिलान् व्याहृतिभिस्तथा ॥६॥
जयाहुतीस्ततो हुत्वा कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।
विभेभ्यो दिल्लां दद्यात् द्यौः शान्ति च ततो जपेत्॥ ७॥
बाह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुज्ञीत बन्धुभिः ।
एवं यः कुरुते सम्यक् तस्मादोषात्ममुच्यते ॥ ८॥
पिन्नलायाः स्वरेऽप्येवं मधु-वन्भीकयोरिष ।
सम्पूर्णे मन्दिरे हानिः शून्यसम्भनि मन्नलम् ॥६॥
पाकारे च पुरद्वारे रथ्यादिषु च वीथिषु ।
प्रामस्य तत्फलं चैव गुरुकल्पनया ततः ॥१०॥
शान्तिकर्माऽखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण त ।
इति कपोतादिशान्तिः।

श्रथ काकवैकृत्यशान्तिः।

गर्भसंहितायाम्—
काकस्य मेथुनं परयेत् काकः शिरसि चेद्विशेत्।
शिरस्युरसि वा कुर्यात्पत्तघातं नखैस्तथा ॥१॥
विदारणं च कुरुते शयानं च स्पृशेद्यदि ।
तदा वदेतु मरणं महाऽरिष्टमथापि वा ॥२॥
मध्यरात्रे यदा काको वासते हेतुना विना ।
तद्दग्रहारिष्टमाचष्टे ग्रामारिष्टमथापि वा ॥३॥
शान्ति तत्र मकुर्वति विधानेन यथोदिताम् ।
विदश्याऽरिष्टशमनं कुर्यात्सङ्करूपमादितः ॥४॥

शुचौ देशे रिक्रमात्रे स्थिएडळेऽग्नि निधाय च । तदीशानेऽष्टदळे कुम्भोपरि स्वशक्तितः ॥ ४॥ हिरएयनिर्मितं त्विन्द्रं लोकपालसमन्वितम् पूजियत्वा स्वशाखोक्तविधिना अपयेश्वरम् ॥६॥ कुत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं जुहुयात्क्रमशो हविः पालाशीः समिधो बीहीश्वरुपाज्यमिति क्रमात् ॥ ७॥ **अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।** यत इन्द्रेति मन्त्रेण लाकपाळेभ्य एव च ॥ ८॥ शक्त्या हुत्वा स्वशाखोक्त-भायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् । लोकपालबर्लि दत्वा इन्द्राग्रे चरुशेषतः ॥ ६॥ वायसेभ्याे बलिं दद्यादैन्द्रवारुणमन्त्रतः। पेन्द्रवारुणवायन्शं याम्यां वै नैर्ऋताश्च ये ॥१०॥ ते काकाः प्रतिगृह्धन्तु भूम्यां पिएडं मयाऽर्पितम् । पूर्णाहुति ततो हुत्वा आचार्य पूजयेरातः ।।११॥ कुम्भे।दक्षेनाऽभिषेका यजमानस्य विस्तरात् । आवार्यायेन्द्रपतिमां दद्यात्सोपस्करां ततः ॥१२॥ शक्तया च भूयसीं दद्यात् द्विजानां भोजनं दिश्रेत्। , शतं तदर्दमर्द्धे वा शतयभावे दशाऽवि वा ॥१३॥ सर्वशान्ति पाठियत्वा गृह्वीयाच द्विजाशिषः। एवं कृते भवेच्छान्तिः काकारिष्टविनाशिनी ॥१४॥ इति काकमैथुनदर्शनादिशान्तिः।

अथ प्रकारान्तरेण काकमैथुनदर्शनशान्तिः। मारदः-दिवावा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम्। स नरो मृत्युमामोति ब्रथवा स्थाननाशनम् ॥१॥

काकघातवतं यद्वा विदधीताऽथ वत्सरम् पितृबद्दै दिजान भक्त्या प्रत्यहं चाऽभिवादयेत् ॥ २ ॥ जितेन्द्रिया जितकोधः सत्यधर्मे १रायणः । तदोषशमनार्थाय शान्तिकर्म समारभेत् ॥ ३॥ गृहस्येशानदिग्भागे होमस्थानं प्रकल्पयेत् पृत्तोक्तविधिना तत्र पतिष्ठाप्य हुताशनम् ॥ ४ ॥ मुखान्ते समिदाज्यान्नैहुनेदष्टोत्तरं शतम्। प्रतिमन्त्रं त्र्यम्बकेन श्रथं मृत्युद्धयेन च ॥ ४ ॥ व्याहृतिभित्रीहितिलैर्जपाद्यं तं मकन्पयेतु पूर्णाहुति च जुहुयात्कर्ता शुचिरलङ्कृतः ॥६॥ स्वर्णशृक्षी रौप्यखुरां कृष्णां धेतुं पयस्विनीम् । वस्त्रालङ्कारसंयुक्तां निष्कद्वादशसंयुताम्ा। 🤟 ।। तर्डेन तदर्डेन दचाइनियाया युतम् ा यथाविशाञ्जसारेण न्यूनाधिकयस्य कल्पना ॥ 🖘॥ श्राचार्याय श्रोत्रियाय तो गां दद्यात्कुटुम्बिने 🎉 यस्मान्वं पृथिवी सर्वा धेना ! वै कृष्णसन्त्रिभे ! ॥ ६ ॥ सर्वमृत्युहरे ! नित्यमतः शान्ति अयुच्छ मे ा बाह्मसोभ्यो विशिष्टेभ्या यथाशस्या च दक्तिसाम्॥१०॥ बाधाणान् भेाजयेत्यथाच्छान्तिवाचनपूर्वकम् 📄 👉 ्ष्यं यः कुरुते सम्यक् तस्यादीकारमञ्जूच्यते ॥११॥ इति काकमैथुनुमान्तिः।

अथ काकस्पर्शशान्तिः। नारदः-सूर्यास्त्रमनवेतायां वायसः संस्पृशेद्यदि। : : : : निःशन्दे। वा संशन्दे। वा पुंसी मृत्युवदायकः॥ १४॥ अङ्गनां च स्पृशेत्काको चैधव्यं तत्र निर्दिशेत्। नदीवीरे गवां गोष्ठे जीरहचे सुराजये॥२॥ नरी वायससंस्पृष्टो वधवन्धनमाप्तुयात् । प्रतिचन्द्रं प्रतिसूर्ये वायसः स्पृशते यदि ॥ ३॥ स्रर्थहानि तथा मृत्युं शस्त्रेण च विनिर्दिशेत्। पासैः प्रश्वभिरेवाऽस्य निशाभिः फलमादिशेत् ॥ ४ ॥ तद्दिनादि फलं सद्भिः पोक्तपत्र शुभाऽशुभम् शान्ति तत्र प्रकृतीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।। ५।। महानद्यम्भसि स्नारवा शिवलिङ्गं निरीत्तयेत्। नत्वा सम्पूज्य लिक्नं तु स्तुत्वा च दिक्पतीनपि ॥ ६ ॥ आरभ्य तद्दिनादेव वायसेभ्या वर्लि जिपेत्। शनैश्वरदिने प्राप्ते एकान्ते शुभमन्दिरे ॥ ७॥ कुष्णानि नववस्राणि अन्हतानि नवानि च पूर्वदिक्कमग्रेगिन स्थापयेच पृथक् पृथक् ॥ = ॥ मान्यस्थममाणेन स्थापयेत्तत्र वायसान्। पूर्वस्यां कपिलं तत्र स्थापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ ६॥ नीलग्रीत्रमथाऽग्नेय्यां याम्यां च विकृतस्वरम् । नैऋत्यां च न्यसेत्क्रीङचम्रपमृत्युविनाशतम् ॥१०। विद्यानिहं च वारुएयां वायञ्यां कृष्णकर्षुरम्। कौबेंदर्या कालनामानमीशान्यां श्वेतमेव च ॥११॥ श्च-हते कुष्णवस्त्रे तु यमं मध्ये प्रपूजयेत्। महिषं कृष्णवर्णे च यमं मापैश्र पूजयेत्।।१२॥ स्कोत्तमात्रं सर्वत्र आयुर्वेश्र समन्वतम् । के।हद्दर्द चतुर्वाहुं पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥१३॥ मस्यान हुने परेपि वासं सुगनः पन्थानमेव च ।

एते मन्त्राः समाख्याताः शुद्धाणां नाम-मन्त्रतः ॥१४॥ श्रकालकल्यां तत्र स्थापयेत्तस्य सन्निधौ। जलपूर्ण रत्नगर्भ पूर्णपात्रसमन्वितम् ॥१४॥ स्थापयेत्तत्र देवेशं शृताणि महेश्वरम्। प्रतिष्ठाप्य च तान् सर्वानय मन्त्रैः प्रपूजयेत्,॥१६॥ कपिलस्त्वं च वर्णेन शुभाऽशुभनिवेदकः। मृहाणाऽद्यं मया दत्तं भवाऽश्चभविनाशनः ॥१७॥ नीलग्रीव ! गृहाणाऽध्ये मया दत्तं खगेश्वर ! श्रम्पमृत्युविनाशाय ददामि वित्तमुत्तमम् ॥१८॥ क्ररस्त्वं पापिनां नित्यं सौम्यस्त्वं धार्मिके जने । विकृतस्वर ! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं शुभाय नः ॥१६॥ ऋरूस्तवं पापिनां नित्यं वध शुम्भं न ऋच्छसि । गृहाणाऽर्घ्य मया दत्तं क्रौश्च ! सौम्यपदो भव ॥२०॥ विद्युज्जिह ! नमस्तेऽस्तु शोकन्याधिविनाशन !। बलिपूजां मया दर्श ग्रहाण सुखदे। भव ॥२१॥ कुष्णकर्बुरनामा त्वं भूतभव्यनिवेदक ! गृहाखाऽर्ध्य मया दत्तं भव वैधन्यनाशन ! ॥२२॥ काक ! त्वं कालनामाऽसि दुष्टकालनिवेदक ! गृहाय बिलपूनां में दत्तां दुःखविनाशिनीम् ॥२३॥ श्वेतस्त्वं सितपर्णोऽसि मृत्युभावस्य स्चक !। गृहाणाऽर्ध्य मया दत्तं भव मृत्युविनाश्नः ॥२८॥ तन्मध्ये ूपूजयेदेवं धर्मराजं चतुर्श्वजम् । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चाऽन्तकाय च ॥२५॥ वैवस्त्रताय कालाय सर्वभूतज्ञयाय जा श्रौदुम्बरायः द्रशायः नीलायः प्रमेष्ठिने ॥२६॥

ट्टकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः। नीलग्रीवाय लेकिश ! दएडहस्ताय ते नमः॥२७॥ पाशहस्ताय सायुधाय सपरिवाराय ते नमः। चन्दनैश्र सुगन्धैश्र वासे।भिः पूजयेद्यमम् ॥२८॥ आदौ ज्यम्बकमन्त्रेण ईश्वरं च प्रपूजयेत्। मृत्युविनाशिनीं विद्यां कुम्भे चैव नियाजयेत् ॥२६॥ शतमष्टोत्तरं चैव श्राचार्यो हृष्टमानसः। खगृह्योक्तविधानेन चर्र च यमदैवतम् ॥३०॥ संश्रय्य जुहुयाद्वद्वौ समिदाज्यचरूंस्तिलान् । तद्देवत्या समित्कार्या शतमष्टोत्तरं तथा॥३१॥ समित्क्रमेण जुहुयात्प्रतिद्रव्यं शतं हुनेत्। **सुगन्तुपन्थामन्त्रे**ण होतव्यं सर्वमत्र हु।।३२॥ भदासनं प्रकर्नाच्यं पश्चवर्णकसंयुतम्। तस्यापरि न्यसेत्पष्टं यजमानमथाह्वयेत् ॥३३॥ निवेश्याऽऽच्छादिते पट्टे श्रभिषेकं च कारयेत्। पावमानीभिस्तु तिन्तिङ्गैर्भन्त्रैर्वारुणसम्भवैः ॥३४॥ तिम्निङ्गेः = सुगन्तुपन्थामित्यादिभिः।

तत्र स्नानं प्रकर्त्वयं तीर्थाऽऽनीतेन वारिणा।
सहस्राचादिभिमेन्त्रेः स्नानं कार्यं द्विजात्तमेः ॥३५॥
तते।ऽन्यद्वस्रमादाय धर्मराजं तु पूजयेत्।
छक्तैः पोडशभिमेन्त्रेः सुगन्वित्यर्धे प्रदापयेत् ॥३६॥
ततः उत्थाय सम्प्रार्थ्य भक्तिभावसमन्वितः।
रत्त मां पुत्र-पौत्रांश्च रत्त मां पशु-वान्धवान् ॥३७॥
रत्त पत्नीं पति चैव पितरं मातरं धनम् ।
अप्रितो मे भयं माऽस्तु रोगाच्त्र व्याधिवन्धनात्॥३८॥

शस्त्रते। विषते।ऽघीधाद्धयं नाश्य मे सदा।
प्रार्थना च पक्तिच्या नमस्कारसमन्त्रता ॥३६॥
काकस्पृष्टं च यद्धः स्नानक्षिकः च यद्भवेदः।
सिंहरण्यं च तत्कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥४०॥
मन्त्रः-यिकिञ्चितस्पर्शदोषोक्तः दुष्कृतमि विद्यते ।
तत्सर्व नाशमायातः वस्त्रदानेन सूर्यज्ञ ।॥४१॥
वायसांस्तान यमं चैतमाचार्याय निवेदयेत् ।
माषान् वासांसि कृष्णां तु धेन्नं चैव पयस्विनीम् ॥४२॥
शनिवारे च तत्कार्य रिववारेऽथवा पुनः।
घृतपात्रे स-सौवर्णे दश्यदात्मनस्तन्नम् ॥४३॥
बाह्मणेभ्यो ददेदकं भूयसी चैव शक्तितः।
यभाक्तां दिच्चणां दद्यात् वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥४४॥
स्थाने यत्र स्पृशेत्काकस्तत्स्थानं पूजयेत्तदा।
प्रवं क्रुर्यात्प्रदानेन ध्वांच्योषः प्रशाम्यति ॥४४॥
इति काकस्पर्शशान्तिः।

अथ सिंहादौ गवादिपसृतिशान्तिः।

श्रद्धतसागरे नारदः-

भानौ सिहगते चैव यस्य गौः सम्भस्यते।

गरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिमिसैन संशयः ॥ १॥

ततः शान्ति मवश्यामि येन सम्भयते शुभम्।

पस्तां तत्त्वणादेव तां गां विभाय दापयेत् ॥ २॥

तते। होमं मकुर्वीत घृताक्तै राजसप्तेः ।

आहुतोनां घृताक्तानामयुतां जुहुयात्ततः ॥ ३॥

सेश्यवासः मयत्नेन दद्याद्विभाय दिविणाम् ।

वस्त्रपुरमं यवं चैव समवर्गी प्रदापयेत् ॥ ४॥ इष्टदैवत-मन्त्रेण ततः शान्तिभवेद्दिज ! गर्भः-दिवामसूता वहवा श्रावणे च विशेषतः॥५॥ माघमासे बुधे चैव पसवेन्महिषी यदि । सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिना मृत्युदायकाः ॥ ६॥ जङ्गमे स्थावरं जातं स्थावरे वाऽथ जङ्गमम्। तस्मिन् योनिविषर्यासे परचक्रागमे भवेत् ॥ ७॥ त्यागा वित्रासा दानं वा कृत्वाऽप्याशु शुभं लभेत्। वडवा इस्तिनी गौर्वी यदि युग्मं प्रसूपते ॥ = ॥ विजात्यं विकृतं वाऽि पड्भिर्मासैर्म्चियेत वा। वियोनिषु च गच्छन्ति मैथुने देशनाशनम्॥६॥ श्रन्यत्र वेसरे।त्वरोर्नुणां वा जातिमैथुनात् सर्पन्मुषक-मार्जार-मत्स्य-श्वान-विवर्क्तिताः ॥१०॥ क्षेया[े] दुर्भिचकर्त्तारः स्वजातिपिशिताशनाः ।। ह्मकालजे। मदो ्घेरिश्र पुष्पानमृगपत्तियाः ॥११॥ अन्यजातिभयं तस्मात् धेनु-श्वानौ विशेषतः। श्रथाऽनद्वाननद्वाहं घेतुर्घेतुं पिवेयदि ॥१२॥ शुनी बायमते घेतुं शुनी घेतुरथाऽपि वा । तिर्थभ्यानौ मानुषी वा परचक्रागमे। भवेत् ॥१ ३॥ श्रमाञ्जूषा माञ्जूषाणि जन्पन्ति पाणिने। यदि । विकृतं वा असूयन्ते परचक्रागमं बदेत्।।१४॥ त्यागा विवासा दानं वा तेषां कार्य्य विजानता। तर्पयेद्वासार्णाञ्चेत जप-होमांथ कारयेत् ॥१५॥ मृदङ्गवाद्यैः पटहेः सुशोभनैः 🕮 पूजा च कार्या त्रिदिवीकसानाम् । 📑

धातुस्तथेष्या विधिना च कार्या देयं तथाऽत्रं बहु च द्विजेभ्यः ॥१६॥ गर्गः-वृत्तं वा ग्रुशलं वाऽपि स्फुटते वाऽप्युल्लाम् । वृत्तम्=दलनयन्त्रम् ।

भूतानां चैव विभ्येत गृहे देवकुळेऽथवा ॥१७॥

हषद्वा भद्रपीठं वा श्रासनं शयनं तथा ।

श्रकस्मात्स्फुटते यत्र कम्पते वा वसुन्धरा ॥१८॥

हत्यादीनि निमित्तान्युक्त्वा शान्तिर्ण्युका तेनैव ।

श्रश्वत्थ-समिधा हुत्वा घृताक्तमधुसंयुताः ।

साविज्यष्टसहस्रेण पाजापत्यास्तु मन्त्रयेत् ॥१६॥

पाजापत्याः=प्रजापतिवैवत्याः ।

पायसं भोजयेद्विद्वान् हुतान्ते भूरिदिचिणा ।
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ॥२०॥
स एव कृष्णाः पिपीलिका यत्र ग्रामेषु नगरेषु वा ।
ध्रतिमात्रं तु दृश्यन्ते ऊर्ध्ववंशकृतालयाः ॥२१॥
शान्तिगृहे व्यष्टे तथा नरपतेगृहे ।
उपप्रपरिमात्रं तु दृश्यते वेशमत्त्वदा ॥२२॥
मिचका मशका दंशा ध्रतिमात्रं भयावहाः ।
ईृश्येर्वचिणोत्पातिमहाचौरभयं भवेत् ॥२३॥
दृज्याणां हरणं श्रूयात्परचक्रस्य चाऽऽगमम् ।
तत्र शान्ति पवस्यामि विश्वामित्रोपदर्शिताम् ॥२४॥
ध्रम्वत्यसमिधश्चैव हुत्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
पूर्णपात्राणि दात्व्या हुतान्ते भूरि दिच्चणा ॥२४॥
दासीन्दाससमायुक्तं यहं द्वाद्दिजात्रे ।
तिज्ञपाई प्रदात्व्यं तिज्ञान जुद्दीत संमतः ॥२६॥
तिज्ञपाई प्रदात्व्यं तिज्ञान जुद्दीत संमतः ॥२६॥

मृतः रमशानं यो नीतः पुनर्जावति मानवः ।

गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥२७॥

श्राचिराच्छून्यतां याति हृतदारपरिग्रहः ।

तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥२८॥

सत्तीराणां घृताक्तानामग्नौ हुत्वा मुखं बुधः ।

खदुम्बरीणां विविधवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥२६॥

साविष्यष्टसहस्रेण चीरशान्तिः च कारयेत् ।

रक्तानामेकेत्यादिवच्यमाणा चीरशान्तिः ।

किपत्तं च तथा कांस्यं हुतान्ते भूरि दिचिणा ॥३०॥
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ।
स एव—श्रनारेग्यमनाष्टृष्टिर्दुभित्तं जनमारकम् ॥३१॥
ज्वरः कासस्तथा श्वासः कण्डूदेद्वृर्विकोचिकाः ।
शिरोरोगोऽचिरोगश्च पाण्डुरोगो गलग्रहः ॥३२॥
व्याधयश्च मवर्तन्ते दुर्दृष्टुः स्वमलच्चणः ।
तत्र शान्तिं मवक्ष्यामि बृहस्पतिमतं यथा ॥३३॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा हविष्याशी पुराहितः ।
सचीराणां घृताक्तानां समिधानां शतं दहेत् ॥३४॥
पत्ताश्चरेति शेषः।

ततस्तच्छाम्यते पापं वृहस्पतिमतं यथा ।
स एव — वज्रमिन्द्राऽशनिर्वाऽपि ज्वलन्नापतते यदि ॥३५॥
पुरे जनपदे वाऽपि तत्र विद्यान्महद्भयम् ।
संवत्सरे तते। घोरे विन्धाचैव जनन्नयम् ॥३६॥
राजाऽमात्यविमाशं च निर्दिशेन्नाऽत्र संशयः ।
तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि इन्द्राग्निवचनं यथा ॥३७॥
स्रापामार्गस्य समिधां सहस्राष्ट्रोत्तरं भवेत् ।

पायसं भे।जयेदिमान चीरशान्ति च कारयेत् ॥३८॥
रक्तानामेकवर्णानां गवां चीरं समादिशेत् ।
समादिशेद्धोमार्थं सम्पादयेत् ।
हुत्वाऽऽहुतिशतं विभो महेन्द्रेखेव मन्त्रवित् ॥३६॥
महेन्द्रेण महान् इन्द्रो य श्रोजसेत्यादिना ।
सुवर्णमिखसङ्काशा हुतान्ते भूरि दिच्छा ।
गौरिति शेषः ।
ततस्तच्छाम्यते पापमिन्द्राग्निवचनं यथा ॥४०॥

शौनकः-श्रथ यदाऽस्य मणिककुम्मस्थालीद्रणमायास्रो राज-कुलविवादो वा यान-छत्र-श्रच्या-ऽऽसनावसथभ्वजगृहैकदेशप्रमञ्जने । गजवाजिमुख्याः प्रमीयन्ते वा हस्तिनो बा माद्यन्ति । इश्येत्रमादीनि । तान्येतानि सर्वाणि इन्द्रदेवत्यान्यद्भतानि प्रायश्चित्तानि सवन्ति इन्द्रो देवता कत्ता हत्तां च येषां तानीन्द्रदेवत्यानि श्रद्धतानि तेषु प्रायश्चित्तान्यपीनद्वदैवत्यानि भवन्ति । इन्द्रं विश्वेति स्थालीपाकं हुत्वा पश्चभिराज्याहुतीर्जुहोति इन्द्राय स्वाहा । शचोपतये स्वाहा । सर्वपापशमनाय स्वाहिति ज्याहतिभिश्च पृथक् पृथक् । स एव गृहद्व रेण वा सर्पो गच्छ त कपोतं प्रविश्वति शरीरे रोहति कृष्णुस्त्रीदर्शनमेवमादानि तान्येत नि सर्वाणि यमदैवत्यानि श्रद्धतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । नाके सुपर्णमिति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चिम-राज्याहुतीर्जुदुयात्। यमाय स्वाहा। प्रेताधिपतये स्वाहा। वरस्यागुये स्वाहा । सर्वपापनाशनाय स्वाहेति व्याहितिभिश्च पृथक् पृथक् जुहोति स पव । दिशो दश दहान्ति । केतवश्चोत्तिष्ठन्ति । सवां श्रृङ्गादुधिरं झ-वति अत्यर्थं हिमांग्रस्त एति । इत्येवमादीनि सर्वाणि सोमदेवत्याम्य द्धतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति, सोमं राजानिर्मात स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिर्राभजुद्दोति । होमाय स्वाद्दा । नज्जञाणां पतये स्वाहा। सीरपाणये स्वाहा । ईश्वराय स्वाहा । सर्वपापणमनाय स्वादा । स्याहतिभिश्च पृथक् पृथक् जुहोति ।

अथाऽरवशान्तिः।

गर्भः-श्रश्वशान्ति प्रवक्ष्यामि शृणु शौनक! यत्रतः । अरवशालासमीपे तु कुण्डं कुर्वाद्विधानतः ॥१॥ उत्स्वातं हस्तमात्रं च त्र्यायामं च तथा भवेत् । मेखलात्रयसंयुक्तं योनिरश्वत्थपत्रवत् ॥२॥ कुएदस्यात्तरपूर्वे तु वेदि कुर्यात्सरोाभनाम् सार्द्धहर्तं तथाऽऽयाममुत्सेधं हस्तमात्रकम् ॥३॥ वसुलां चतुरस्रां च देवानां स्थापनाय च। कुर्यादष्टदलं पद्मं तरहलैर्वेदिकोपरि ॥४॥ सन्मध्ये पूजयेदेवं सुवर्शीन प्रकल्पितम् । व्यश्वारुढं महातेजः सप्तहस्तं महावलम् ॥५॥ श्वरवारिष्टहरं शूरं देवं तं हयवन्तभम् । देवेन्द्रं च धराधीशं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ॥६॥ वक्षां च तथेशानं रजतेन पकल्पितम् यमं च कालले।हेन ताम्रेणाऽपि तथैव च ॥ ७॥ ि निऋर्ति च**ंतथा वार्युं नागेनैव मकल्पयेत्** । सोमं च रजतेनैव कल्पयेत्म्रुममाहितः ॥ =॥ क्रिविं लेक्पालांश स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत्। आवाहनार्घपात्राचैर्गन्ध-पुष्पादिकैः शुभैः िधूप-दीपेश्वः नैवेद्यैः पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम् पञ्चामृतेन स्नपनं कुर्यादेव स्वमन्त्रकैः ॥१०॥ ह्यमृषुवाजिनमिति मन्त्रेणाऽऽवाहनं चरेत् । अश्वस्तूवरागविति कुर्यात्संस्थावनं बुधः ॥११॥ मानस्तोकेति मन्त्रेण स्नानं सम्यक् प्रकल्पयेत् । युवं वस्त्राचीति तथा वस्त्रं चैत्र प्रदापयेत् ॥१२॥ यज्ञोपवीतं दातन्यं देवस्य त्वेति मन्त्रतः । विरादायेति मन्त्रेण अचेयेत्स्रुसमाहितः ॥१३॥ गन्धद्वारेति वै गन्धं पुष्पं श्रीश्र तथैव च। धूरसीति तथा धूपं दीपं चाऽपि विशेषतः ॥१४॥ श्रेन्नपतेति मन्त्रेण नैवेद्यं बहुकण्पयेत् एनं सम्यूड्य विभेन्द्र! स्विपुत्रं ह्याधियम् ॥१४॥ ततः सम्पूत्रयेद्धीमान् लेकिपालान् स मन्त्रतः । इन्द्रं वे। विश्वतः शक्रं ऋग्नि दृतेति पावकम् ॥१६॥ यपाय सोमेति यमं निऋति मेाषुरोति च। त्वन्नो अग्नेति वरुएां तव वायेति चाउनिलम् ॥१७॥ सोमा घेतुं तथा सोमं कदुद्देति तथा शिवम्। पूजयेड्गन्ध-पुष्वाचैर्घूप-दीपनिचेदनैः ।।१८।। क्रमेण पूजयेदित्थं देवान्सम्पूजयेत्ततः। श्रश्वारूढ महावीर ! तुरङ्गेश ! महाबल ! ॥१६॥ श्रश्वारूढं च रेवन्तं शक्त्या चाऽऽशु विनाशय । श्राखण्डल गजारूढ ! वज्रहस्त सुरेश्वर !।।२०।। वज्रेण तुरगारिष्टं भिन्नं कुरु शनीपते ! मेपारुढ ! महातेजो ज्वलज्ज्वालाविभूषितः ॥२१॥ तीक्ष्णाऽसिना हुतवह ! अश्वारिष्टं विनाशय । कालदण्डधरा देव! महामहिषवाहन!॥२२॥ कालदण्डेन दण्डेत्थमश्वारिष्टं विनाशय। खड्गहस्त महाभीम ! निऋते प्रतबाहन !।।२३॥ बिनं कुरु हयारिष्टं तीक्ष्णखद्गेन शीघतः। पाशहस्त ! जलाधीश ! स-दामकरवाहन ! ॥२४॥ पाश्चेन च इयारिष्टं भिन्नं कुरु जलाधिय ! ।

ध्वजहस्त महाकाय! मृगास्ट ! महाबल ! ।। रातिहरूत ! महाराज ! कुवेर ! नरवाहन ! ।। रहा। श्राक्तिहरूत ! महाराज ! कुवेर ! नरवाहन ! ।। रहा। श्राक्तिहरूत ! महाराज ! कुवेर ! नरवाहन ! ।। रहा। श्राक्तिहरूत ! महाराज ! श्राक्ति चाऽऽश्रु विनाशय । श्राक्तहरूत ! महाराद ! पिनाकिन ! हपवाहन ! ।। रखा नाश्याऽऽश्रु हयारिष्टं त्रिश्रुलेन त्रिलोचन ! । एवं सम्मार्थ्य विभेन्द्र ! लोकपालकमेण च ।। रदा। श्राप्तेः संस्थापनं कृत्वा कुण्डे होमं च कारयेत् । तिल न्नीह-यवैश्वेव मत्येकं चाऽऽहकाऽऽहकम् ।। रहा। होमं कुर्यादश्वकामश्वरूणा छुतपूर्वकम् । स्थापयित्वाऽऽष्यसंस्थालीं तत्स्थेनाऽऽष्यंन यन्नतः। ३०।। इत्यं सवैश्व मन्त्रेश्च देवसुहिश्य कारयेत् ।

श्रानये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । वायवे स्वाहा । विष्णवे स्वाहा । सर्वेद्वाय स्वाहा । सर्वेदुरितनाशाय स्वाहा । रेवन्ताय स्वाहा । सर्वेकामप्रदाय खाहा । प्रजापतये स्वाहा । सर्वेत्र होमा कार्य्यः । श्रीक्ररकादोऽल्लपतिरकाद्यमस्मिन् यत्रे यजमानाय ददातु स्वाहा । सोमो राजा राजपति एवं सर्वेत्र होमविधिः ।

इत्थं कृत्वा होमकर्म आचार्यो विधिवत्ततः।

शक्तो भवन्द्व मन्त्रेण अश्वशालां भवेश्येत् ॥१॥

पवित्रं तेति मन् ण अश्वान् सम्भोत्त्रयेद् द्विजः ।

एष वाजीति मन्त्रेण तथाऽश्वांश्र विसन्त्रयेत् ॥२॥

मा नो मित्रेति मन्त्रेण तुरुद्वान् स्थापयेत् सुधीः।

पूर्णाद्वति च जुहुयादिच्छत्रघृतथारया ॥३॥

भूतेभ्यश्र विलं दद्यात् छिन्नां तं मन्त्रपूर्वकम्।
असुराः पद्मा यत्ता यातुधानाश्च रात्तसाः ॥ १॥

पिशाचाः सिद्धमन्धर्वा वेताला योगिनी शिवा।

इप्रकिनो लाकिनी चैव शाकिन्या जम्बुकादयः ॥ ५ ॥ श्ररवारिष्ट-प्रशान्त्यर्थे वर्ति गृह्णन्त्वमी ग्रहाः । इत्यंदत्ता वर्लि सम्यक् भूतेभ्यश्च विधानतः ॥६॥ अश्वं च दिच्चिणायुक्तं भितमां वत्ससंयुताम् । उद्दिश्य भास्करं देवमाचार्याय मदापयेत् ॥ ७॥ आकृतीर्देवतानां च दिजेभ्या वस्त्रसंयुताः । द्याचा द्विणायुक्ताः श्रद्धापूतः समाश्रितः॥ दै॥ षाहतीः = प्रतिमाः। देवानाम् = इन्द्र।दीनाम्। श्रनेन विधिना कृत्वा हयानां शान्तिकं महत्। श्रश्वानां नौरुजत्वं च बत्तं पुष्टिबत्तं तथा ॥ ६ ॥ लक्ष्मी स्थिता मननां च सङ्ग्रामे विजया भवेत । ब्राह्मणान भोजयेत् पथात्ततः शान्तिभैनिष्यति ॥१०॥ इत्यश्वशान्तिः। स्रथं गजशान्तिः ।

सनस्कुमार हवाच-अथ राजा प्रकुर्वीत चतुथ्यों गज-वाजिनाम् । शान्तिमामयतप्तानां तदुत्पातीदये सति भार ॥ कवलाति च नाऽऽदत्ते यदा लश्रुणि मुश्राति । 🚟 इतब्धः प्रशान्तो निर्वेदो स्यान्मदेन विवर्जितः ॥ ऋ॥ परिचीखतनुद्धिर्पः ार्क । 💯 विहीनमविरत्पर्थ विमानात् स्मस्तसर्वाङ्ग-गुप्तो नष्टपराक्रमः ा। र ॥ नष्टशोभः सदाहीना नष्टसंज्ञो रुपान्वितः । नानान्याधिसम्रत्याभिः पीडाभिः पीड्यते यदा ॥ ४ ॥ अरिष्ठोपनिपातेषु तथोत्पातभयेषु च बदा शार्टित प्रकृषीत गजरचापरे। चुपः ॥ ५ ॥ अरिष्टायशुभं त्वेवं वाजिनां सङ्यते यदा ।

युद्धारम्भेषु च तथा तेषां शान्ति च कारयेत् ॥ ६ ॥ शान्त्यर्थे गज-वाजीनां मण्डपं चतुरस्रकम् । द्वादशाऽरिवमानेन सम्मितं कार्येत् सुधीः ॥ ७॥ बाहुममार्खं मध्ये तु योनि नाभिसमुज्ज्वलम् । कुएडं त्रिमेखलं कुर्यात् इतं वाः चतुरस्रकम् ॥ ८॥ तत्पुरस्ताद्दत्तिरातः पश्चिमे चोत्तरे तथा । चतुरस्रं ततः कुर्यात् कुएडं इस्तममाणकम् ॥ ६॥ कोरोषु च तथा कुर्याद्द्वतं चाऽष्टत्रिकारणकम् । श्चर्क-खादिर-पालाश-बिन्वा-ऽश्वत्थ-बुटैरपि श्रौदुम्बर-श्रवामार्ग-समिद्धिस्तत्र तत्र मध्ये सर्वसिमिद्धिर्वा पालाशैर्वाऽऽज्य विन्वकैः ॥११॥ तिल-तरहुल-लाजाभिः सक्तसिद्धार्थशालिभिः यवैरेभिस्त्रिमध्वक्तमध्ये सर्वेमिति स्थितिः ॥१२॥ दत्वा च पयसा चैव घृतेन मधुनाऽभि वा को छोषु च तथाऽऽज्येन मध्ये तु कलशैरपि ॥१३॥ स्थापयेत ततः कुम्भानष्टावष्टासु दिच्च च वस्त्रयुग्मेन सञ्बन्नान् सर्वौषधि-समन्वितान् ॥१४॥ सर्वरत्नयुतान् युग्मान् गन्ध-पुष्पोदकरिष् । इस्तावरमगार्गं तु बृहत्कुम्भं तु सध्यमे ॥१४॥ तीर्थोदकीन सम्पूर्ण सर्वरत्नीपथैरपि चतुरः कलशास्तत्र चतुर्थस्य समं ततः ॥१६॥ कीरोषु च यथान्यायं जंत-वस्नादिक्षेयुंतान् । स्मरेत् प्रधानं कुम्भे तु नरसिंहाकृति हरिम् ॥१७॥ शङ्क-चक्र-गदा-पद्म-चर्मा-ऽसि-शर-शक्तयः । पूर्वीदिक्रमयोगेन ध्यातव्यं कलशेष्वपि ॥१८॥ पहिः शकादि-दिक्पालाँस्तत्र तत्र च संस्मरेत्।

प्रधानकुम्भात्पुरतः कुर्याचकं तु मण्डकुम् ॥१६॥ तत्र सम्पूज्य देवेशं पश्चाद्धोमोदि साध्येत् । मएडलाम्रे तदा कुम्भं कुम्भाग्रे कुएडमेव च ॥२०॥ सर्वत्राऽनलसंस्कारान् स्वयृक्षोक्तेन कर्मणा जुहुयादग्निसिध्यर्थमाज्याऽऽहुतिसहस्रकम् श्रानुष्टुभेन मन्त्रेण गुरुर्वाऽस्य पुरोहितः श्रानुष्टुभा वृसिंहमन्त्रा दशसाहस्रमिष्यते ।।१२॥ समिद्द्रव्यचरूएयेवं हुत्वा मन्त्री समाहितः। सम्पत्न्याऽऽज्याऽःहुतीनां च सहस्रं वाऽयुतं चरेत् ॥२३॥ ततः स्विष्टकृदित्यादि-समापनविधिः क्रमात् । एवं समाप्य विधिवद्धोर्म तत्र पुरोहितः ॥२४॥ संस्पृशेदुदकुम्भं च जपेदशसहस्रकम् । पर्यन्तकलशान स्पृष्टा जपेत्तव सहस्रकम् ॥२४॥ श्चनन्तरेषु कुएडेषु गायत्र्या प्रणवेन वा । क्र**ट्रंत्विभि युँगपत्कार्य होमत**न्त्रं तु पूर्ववत् ॥२६॥ प्रतिक्रुम्भं सहस्रं च जपेचानप्युपस्पृशन् । पूजयेन्लोकपालादीन् गन्धादिभिरलङ्कतः ॥२७॥ अथ राजानमाकाये-स्वास्तीर्ये सिंहविस्तरे । समाप्य च शुचिस्नानं सर्वोऽलङ्कारमंयुतम् ॥२८॥ कुम्भादकेन देवाग्रे तन्मन्त्रेखाऽभिषेचयेत्। पर्यन्तकसरीथाऽपि नृपं पथाइगजादिकम् ॥२८॥ श्चन्यांश्र वाहनान पूज्य दिव्यलन्नणसंयुतान्। गुजादिनाऽवशिष्टेन तोयेन स्नापयेद् बुधः ॥३०॥ अत्यवाहान् द्विपायातान् सर्वानेव समाहितः। बाह्यक्रमभादकेनैव स्नापयेडछत्रसाधकः ॥३१॥

राज्ञो नीराजनं कुर्याद्वाहनेषु च मन्त्रवित्। श्चन्येष्वेवं विधिः कार्य्यः सहिरत्नकरः परः ॥३२॥ राजानं वाहनादींश्व तथाऽन्यांश्व पुरेाहितः । सर्वाऽलङ्कारसंयुक्तान् सर्वमङ्गलसंयुतान् ॥३३॥ कृत्वा तु वाचयेत् पथाइब्राह्मर्णैराशिषा बहु । दित्तिणामप्यलं दत्वा ऋत्विग्भ्या गुरवे नृषः ॥३४॥ बाहनं बस्त-भूषाणामाचार्याय निवेदयेत्। दास-दासीषु भृत्येषु ब्रामादिषु च सर्वशः ॥३४॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तं राजवाहोपरि स्थितम्। मन्त्रद्वीर्पैर्ध्येश्चैव ब्राह्मर्णैः स्वस्तिवाचनैः ॥३६॥ साऽऽनन्दश्चैव ऋत्विग्भिवृद्धैमन्त्रवरैस्तथा। द्याचार्यो राजभवने हुएं संवेशयेत्स्वयम् ॥३**०॥** पूर्व स्नानाऽविशिष्टेन कुम्भतायेन मन्त्रवित्। गजशालां च सम्प्रोक्ष्य वाजिशालां तथैव च ॥३८॥ सिद्धार्थतगडुल-तिलैः पुष्पैर्वोऽप्यवकीर्यः च । शालामध्ये हुपः सिंहं सुदर्शनमनामयम् ॥३६॥ पूजयेद् गन्ध-पुष्पाद्यैः सर्वाऽलङ्कारसंयुतैः। सक्तुभिः क्रसरान्नेन क्रुयीद्भृतवर्ति वहिः॥४०॥ ततः शालासु सर्वासु ब्राह्मणान् भाजयेद्वलिम् । ततः संवेशनं कुर्यादाचार्यो गज-वाजिनाम् ॥४१॥ एवं शान्ति मकुर्वीत निमित्ते सति तद्गुरुः। सपरिश्वदस्य नृपतेर्भन्त्रवित् सुसमाहितः॥४२॥ सर्वेकन्याणसम्पूर्णः सर्ववाधाविवर्ज्जितः। सपुत्रो राजमन्त्रस्त चपस्तेन महीयते । ४३॥ ् इति गजशास्तिः।

श्रथ महाशान्तिः ।

श्रीकृष्ण उवाच-

महाशान्ति प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषितम् ।
पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिखीम् ॥ १ ॥
नृपाऽभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु ।
दुःस्वप्ने दुनिमित्ते च प्रहवैगुण्यसम्भवे ॥ २ ॥
विद्युद्वकानिपाते च जन्मर्ते ग्रहभेदने ।
केतृद्वये च निर्धाते चितिकम्पस्य सम्भवे ॥ ३ ॥
प्रस्तौ मृलगण्डान्ते यमलस्य च सम्भवे ।
ह्वत्राखां च ध्वजानां च स्वस्थानात्पतने सुवि ॥ ४ ॥
काकोल्क-कपातानां प्रवेशे वेश्मनस्तथा ।
क्रूप्प्रहाखां चक्रेषु जन्मादिषु विशेषतः ॥ ४ ॥
जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाऽष्टमे तथा ।
यदा स्युर्गुरु-मन्दा-ऽऽराः सूर्यश्चैव विशेषतः ॥ ६ ॥
मन्दः=शनः । श्रारो=भौमः ।

युद्धे प्रहाणां सर्वेषां सूर्य-शोतांशु-कीलके ।

यद्या-ऽऽयुध-गवा-ऽश्वेषु संस्मिते शयनासने ॥७॥

यद्यानः परिदृश्येत रात्राविन्द्रधनुस्तया ।

वेश्मनश्च तुलाभक्को गर्भेष्वश्वतरीषु च ॥ द ॥

रिविषम्बद्धये दृष्टे महाशान्तिः प्रशस्यते ।

सर्वाणि दुर्निमित्तानि प्रशमं यान्ति सर्वशः ॥ ६ ॥

सां कुर्युद्धोद्धणाः पश्च कुल-शोल-समन्विताः ।

चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च दिवेदाश्चापि पाण्डव ! ॥१०॥

प्राथर्वणा विशेषेण वहृत्वास्तु सुन्यताः ।

श्वाथर्वणा विशेषेण वहृत्वास्तु सुन्यताः ।

श्वाथर्वणा विशेषेण वहृत्वास्तु सुन्यताः ।

कुष्छ्रोपवासनकाद्यैः कृतकायविशोधनाः । पूर्वमाराध्य मन्त्रांस्तु प्रार्थेत ततः क्रियाः ॥१२॥ मन्त्रान् विविधोच्यमः णान् ।

दश-द्वादशहरतं वा मण्डपं कारयेच्छुभम्।
तन्मध्ये वेदिकां कुर्याचतुर्हस्तप्रमाणतः ॥१३॥
श्राग्नेथ्यां कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशे।भनम्।
मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चाऽिष समन्वितम् ॥१४॥
रवीन्द्रोरुपरागेषु महे।न्कापतनेषु च।
उत्पातेषु तथाऽन्येषु निमित्तेषु च सर्वशः ॥१४॥
सर्वारिष्टोपशमना महाशान्तिः पशस्यते।
चारुचन्दन-माले च तारणाऽलङ्कृते तथा ॥१६॥
गोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे ते द्विजातयः।
शुक्राम्बरधराः स्नाताः शुक्रमान्याऽनुलेपनाः ॥१७॥
कर्म कुर्युस्ति शेषः।

ततश्च पञ्चकलशाँस्तस्यां वेद्यां निवेशयेत्। श्चाग्नेयादिषु के। ऐषु पञ्चमं मध्यतस्तथा ॥१८॥ श्चष्टपत्रकृते पश्चे चूनपन्तवधारिसम् । ब्रह्मकूचेविधानेन पञ्चगव्यं तु कारयेत् ॥१६॥ ब्रह्मकूचेविधानं गामूत्रं ताम्रवर्णाया इत्यादिना ब्रह्मकूचप्रकरसे चोक्तम् ।

त्रीषधीः पञ्चरत्नानि रेश्चनां चन्दनं तथा।
सिद्धार्थकान शमीं द्वीं कुशान ब्रोहि-यवाँस्तथा॥२०॥
स्रापामार्गे फलवती न्यग्राधे।दुम्बरी तथा।
सत्ता-ऽश्वत्य-कपित्थांश त्रियकूंश्चृतपद्मवान ॥२१॥
हस्तिदन्तमृदं चैव कीएकुम्भेषु विन्यसेत्।
फलवती = गन्धित्रयङ्गुः। त्रियकुः = कदुः।

पुष्यतीर्थोदकोपेतं पञ्चगन्यं च मध्यमे ॥२२॥

न्नाः वाचिमितीदं च विद्वकुम्भाऽभिमन्त्रणम् ।

श्राशः शिशानं नैत्रां त्ये यद्देवा वायुगोचरे ॥२३॥

ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य त्वभिमन्त्रणम् ।

मध्यमे त्वथ जप्तन्या रुद्राः कुम्भे यजुर्भवाः ॥२४॥

गन्ध-पुष्पा-ऽचतिर्वस्त्रेनेवेद्येष्ट्रं तपाचितैः ।

फलीश्र नालिकेराद्यदीपकैः कुम्भपूजनम् ॥२५॥

स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत्तदनन्तरम् ।

क्रमेणाऽनेन शनकैरिनकार्यं च योजयेत् ॥२६॥

श्रतेन वच्यमाणेनाऽग्निं दूतिमहाग्निं च पूर्वमेव निधापयेत्। पूर्वं

कलशस्थापनात् ।

हिरएयगर्भः समिति ब्रह्मासनिनयोजने ॥२७॥
कयानसा प्रणीताश्च मन्त्रेण विनिवेशयेत् ।
कृत्वा चास्तरणं वहेराज्यसंस्कारमेव च ॥२८॥
श्चथवाऽऽसादयेदन्नं द्रव्यं यस्य प्रयोजनम् ।
ततः पुरुषसक्तेन पायसश्चरणं भवेत् ॥२६॥
श्चभिघार्याऽथ संसिद्धं पायसं स्थापयेद्धुनि ।
श्चश्चदश प्रमाणेध्मान् दद्यादथ श्मीमयान् ॥३०॥
पालाशीः समिधः सप्त सप्त ते इति दापयेत् ।
श्चाघारावाज्यभागौ तु हुत्वा पूर्वक्रमेण तु ॥३१॥
जुहुयादाहुतीः सप्त जातवेदस इत्यृचा ।
स्थालीपाकस्य जुहुयातपुनर्वे जातवेदसे ॥३२॥
तरत्समन्दीसक्तेन चतस्रो जुहुयात्ताः ।
यमायेति सप्ताऽन्याः स्वाहान्ता जुहुयात्ताः ॥३३॥
स्वाहान्ता इति सर्वत्र योज्यम्।

इदं विष्णुस्ततः सप्त जुहुयादाहुतिर्हेष ! । नत्त्रत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविंशतिराहुतीः ॥३४॥

नत्त्रबाहुतयश्च कृतिकाभ्यः स्वाहेत्यादिभिर्मन्त्रैः कार्याः । तत्र रोहिशीद्धयःपुष्यहस्तादित्रया ऽनुराधादित्रया ऽभिनिदुद्धयशतभिषक्-रेवतीष्वेकवचनम् । पुनर्वसु-फाल्गुनीद्धयः विशाखाः ऽश्विनीषु द्धिव-चनं शेषेषु बहुवचनम् ।

यत्कर्मणेति जुहुवासतः स्विष्टकृतं पुनः ।
ग्रहहोमस्ततः कार्यस्तित्तैराज्यपरिष्जुतैः ॥३५॥
ग्रहहोमस्ततः कार्यस्तित्तैराज्यपरिष्जुतैः ॥३५॥
ग्रहहोमस्ततः वैकलिपका यवादिनिवृत्त्यर्थम् ।
गायश्चित्तं ततो हुत्वा होमकर्म समापयेत् ।
ततस्तु तूर्यनिर्घोपैः काहला-शङ्खनिस्वनैः ॥३६॥
यजमानस्य कर्त्तव्यों ह्यभिषेको द्विजोत्तमैः ।
काश्मर्यद्वत्तसम्भूते समे भद्रासने स्थितम् ॥३७॥
काश्मर्यद्वत्तः=श्रीपर्णी । सद्रासनम् ।

वेदोमध्यगतं कृत्वा दुनिमित्तपशान्तये ।
पश्चिमिः कलशैः पूर्णैमेन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम् ॥३८॥
सहस्रान्नेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा ।
सजीपसा इन्द्र इति च विश्वानि वरुणेति च ॥३६॥
दुपदा दिवेति च ततः स्नापयेयुः समाहिताः ।
ततो दिशां विल द्याद् विचित्राऽत्रसमाश्चितान् ॥४०॥
नमोऽस्तु सर्वत्रद्धनेभ्य इति मन्त्रमुद्दाहरेत् ।
स्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुः शान्तिमुत्तमाम् ॥४१॥
शान्तितोयेन धारां च पातियत्वा समन्त्तः ।
पुर्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ॥४२॥
तीर्थे देवालये वाऽपि गोदोहं कारयेद् चुधः ।
चित्ति हिर्एयं वासांसि शयनान्यासनानि च ॥४३॥

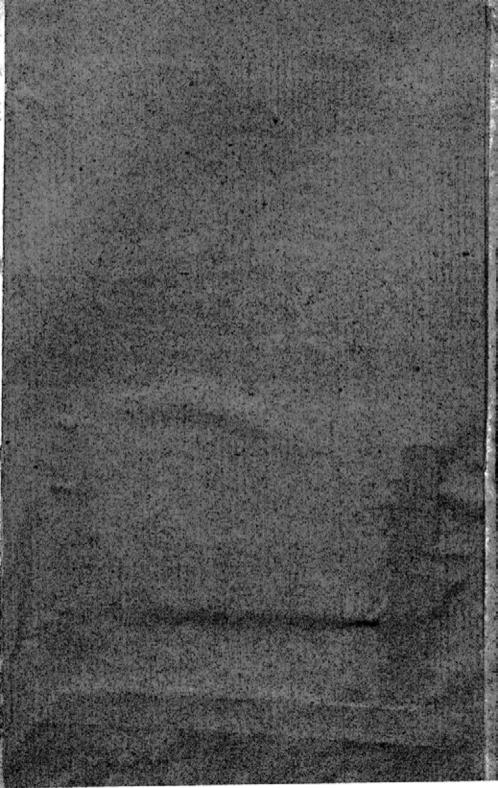
New Delbi ?

विमेश्यो दिल्ला द्यायथाशक्या विमत्सरः ।
दोनानाथविशिष्टेश्यो द्याच्चैव युधिष्ठिरः ! ॥४४॥
भोजनं चाउनिशं दत्वा ततः सर्व मसिद्ध्यति ।
स्रामुश्च लभते दोर्घ शत्र्व् विजयते च्रणात् ॥४४॥
दुर्गाणि चाउन्य सिद्ध्यन्ति पुत्रांश्च लभते युभान्।
यथा शक्त्रपहाराणां कवचं वारणं भवेत् ॥४६॥
तथा देवोपघातानां शान्तिभवति चारणम् ।
स्रिहंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितथनस्य च ॥४०॥
दया-दाचिण्ययुक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ।
स्रार्थान् समद्ध्यति वर्द्धयते च धर्म
कामं प्रसाथयति तस्य पिनष्टि पापम् ।
यः कारयेत् सकलदोपहरीं महार्या

शान्ति प्रशान्तहृदयः पुरुषः सदैव ॥४८॥ इति महाशान्तिः

चर्मण्वती-तरणिजाशुभसङ्गमस्य सामिष्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे । ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥४९॥ इति श्रीसँगरवंशावतंस-महाराजाधिराज-श्रीभगवन्तदेवोद्योजिते मीमांसकभद्दशङ्करात्मज-भद्दनीलकण्ठकते भगवन्तभास्करे शान्तिमयुखो द्वादशः समाप्तः ।

> में स्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत नुकडियों, कचौड़ीगली, बतारस सिदी।



D.G.A. 80.

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY NEW DELHI

Issue Record.

Call No .-

Sa3S/Nil/M.M.-5356

Author-

Nilkanthabhatta.

Title- Santimayukha.

Borrower's Name	Date of Issue	Date of Return
DEY Kirken	23-4-83	26 483
		Tues de la composición de



